

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान उज्जैन के द्वारा प्रायोजित ग्रन्थमाला

वैष्णव आगम के वैदिक आधार

सम्पादक

प्रो० ओम्प्रकाश पाण्डेय



लेखिका

श्रीमती डॉ. चन्द्रा चतुर्वेदी



नाग पब्लिशर्स

वैष्णव आराधन वैष्णव आराधन

संस्थापक

प्रो० ओमप्रकाश पाण्डेय

लेखिका

श्रीमती डॉ. चन्द्रा चतुर्वेदी



प्राचीन सान्दीपनि राष्ट्रीय वैद्यकीय प्रतिष्ठान उत्खनन के द्वारा प्रायोगिक सम्पादन

वैष्णव आगम के वैदिक आधार

सम्पादक

प्रो० ओम्प्रकाश पाण्डेय

लेखिका

श्रीमती डॉ. चन्द्रा घतुर्वेदी



नाग पब्लिशर्स

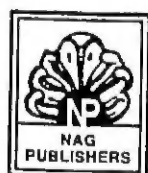
中國經濟史綱

—— 中國經濟史綱 ——



वैष्णव आगम के वैदिक आधार

सम्पादक
प्रो० ओम्प्रकाश पाण्डेय
लेखिका
श्रीमती डॉ० चन्द्रा चतुर्वेदी



नाग पब्लिशर्स

११ ए / यू० ए०, जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७
(भारत)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान के द्वारा प्रायोजित ग्रन्थमाला

नाग पब्लिशर्स

- (१) ११ए/यू. ए. जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७
टेलिफोन-०११-२३८५५८८३, २३८५७९७५
(२) जलालपुर माफी (चुनार-मिर्जापुर) उ० प्र०

© महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

ISBN :81-7081-621-1

प्रथम संस्करण : २००५

मूल्य : २००.०० रुपये

श्री सुरेन्द्र प्रताप द्वारा नाग पब्लिशर्स ११ ए०/यू० ए०, जवाहर नगर, दिल्ली ११०००७ द्वारा प्रकाशित तथा जी. प्रिंट. प्रोसेस, ३०८/२ शहजादा बाग, दयाबस्ती दिल्ली ११००३५ द्वारा मुद्रित। अक्षरयोजक ए० आर० प्रिंटर्स, डी-१०२ न्यू सीलमपुर, दिल्ली-११००५३

प्राक्कथन

श्रीमती डॉ. चन्द्रा चतुर्वेदी जी के द्वारा प्रणीत 'वैष्णव आगम के वैदिक आधार' शीर्षक ग्रन्थ को प्रतिष्ठान के द्वारा प्रायोजित ग्रन्थमाला में सम्मिलित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। इस ग्रन्थ का प्रणयन प्रतिष्ठान की अध्येतावृत्ति के अन्तर्गत हुआ है, यह तथ्य भी हमारे परितोष का एक बड़ा कारण है।

ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण में विष्णु को वैदिक देवमाला में शिखरस्थ स्थान प्रदान किया है। कहा गया है कि अग्नि प्रथम देव हैं और विष्णु परम -

अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण अन्याः सर्वा देवताः।

वैदिक वाङ्मय में वैष्णव तत्त्वज्ञान का अपना विशिष्ट महत्त्व है। ऋग्वेद के विष्णु सूक्तों में ही विष्णु के वैशिष्ट्य का प्रकटीकरण प्रारम्भ हो गया है। विष्णु का अपना विशिष्ट धाम (लोक) है, जिसकी महिमा-गरिमा स्वर्ग से भी अधिक है। आगे चलकर पुराणों में यही धाम वैकुण्ठ धाम के रूप में प्रतिष्ठित दिखलाई देता है। वैखानस अथवा औरवेय शाखा का विकास वैष्णव दृष्टि का ही परिणाम है, जिसका अपना सम्पूर्ण कल्प-साहित्य है। यजुर्वेदीय काण्वशाखा की परम्परा भी वैष्णव-समाज में ही बद्धमूल हुई। आगम-साहित्य में पाञ्चरात्र आगम भी वैदिक विष्णु की विशेषताओं से ही ओतप्रोत है। वैदिक तत्त्वचिन्तन में वैष्णव जीवन-दृष्टि का सबसे बड़ा योगदान यज्ञों में अनावश्यक पुशर्हिंसा का निवारण है। वास्तविक पशु के आलभन के स्थान पर पिष्ट पशु (आटे के पशु) का समावेश वैष्णवों के ही प्रयत्न से सम्भव हो सका। ऐसी स्थिति में किसी का यह कथन कि विष्णु अथवा नारायण अवैदिक देव हैं, उसकी अल्पज्ञता का ही द्योतक है।

श्रीमती डॉ. चतुर्वेदी का यह ग्रन्थ वैष्णव परम्परा के वैदिक आधार की गहन गवेषणा का प्रस्तावक है। लेखिका ने अत्यन्त मनोयोग और अध्यवसाय से इस कार्य को सम्पन्न किया है। वैष्णव

कर्मकाण्ड, सदाचार और तत्त्वज्ञान तीनों के ही वैदिक आधारस्तम्भों का भलीभाँति निरूपण इस ग्रन्थ में किया गया है। श्रीमती डॉ. चतुर्वेदी यद्यपि स्वयं पूर्ण वैष्णव हैं, लेकिन इस ग्रन्थ में उन्होंने केवल अपनी श्रद्धा को आधार न मानकर अनुसन्धानप्रसूत तथ्यों को प्रमाणों और तर्कों की शक्तिशाली पीठिका पर प्रतिष्ठित किया है। इस श्रेष्ठ ग्रन्थ के प्रणयन के लिए मैं उन्हें हृदय से बधाई देता हूँ।

मेरा विश्वास है कि यह ग्रन्थ वैष्णव वैदिक परम्परा के सन्दर्भ में सम्प्रति विद्वद्वर्ग में व्याप्त भ्रमों का अपनयन करके सही दृष्टि का निर्माण करने में अत्यन्त उपादेय सिद्ध होगा।

प्रतिष्ठान में कार्यरत डॉ. अमलधारी सिंह जी, डॉ. जितेन्द्र कुमार तिवारी, डॉ. अनूप मिश्र ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जो योगदान किया है, तदर्थ मैं उन्हें साधुवाद देता हूँ।

— ओम्प्रकाश पाण्डेय
(सदस्य-सचिव)

पुरोवाक्

भारतीय संस्कृति और परम्परा का मूल आधार एवं आदि स्रोत वैदिक वाङ्मय ही है। यह अति प्राचीन विशाल वाङ्मय अपनी विषयगत, कालगत देशगत तथा प्रभावगत विशेषताओं के कारण विभिन्न अन्वेषणों की आधार भूमि भी है। यही कारण है कि भारतीय परम्परा में इतिहास और पुराण को वेद के उपबृंहण का साधन माना गया है। 'इतिहासपुराणाभ्याम् वेदं समुपबृंहयेत्।' उपवेद, वेदाङ्ग एवं वेदानुकूल शास्त्र-विकास, वैज्ञानिक-साहित्य का वेदाधारत्व आदि ऐसे बिन्दु हैं; जो वैदिक वाङ्मय के मूल भाग के साथ-साथ अन्य वैदिक वाङ्मय के अतिवृहत्तर क्षेत्र को व्याप्त करते हैं। वैदिक वाङ्मय के मुख्यतः चार भाग-मन्त्र संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् हैं। इनमें मन्त्र एवं ब्राह्मण की प्राचीनता निर्विवाद है, तथापि मन्त्र ही मूल हैं, ब्राह्मण उसके उपाख्यान हैं। आरण्यक और उपनिषद् ब्राह्मण के अन्तर्गत आरण्यक के भाग हैं, यही कारण है कि सापेक्ष दृष्टि से प्रारम्भिक होने के कारण मन्त्र की तुलना में ब्राह्मण ग्रन्थ गहन एवं दुरुह हैं। उपनिषद् वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग होने के कारण अपेक्षाकृत अधिक भाव-ग्राही, सहज और सुबोध हैं।

स्पष्ट है कि वैदिक ज्ञान और कर्म का लक्ष्य आत्म-चेतना को एक लोकोत्तर आध्यात्मिक चिन्मय धरातल पर प्रतिष्ठित करने का रहा होगा, जिसे स्वर्ग अर्थात् स्वः-एक ज्योतिर्मय अनूभूति की अवस्था का अवतरण माना जा सकता है, यही कारण है कि वैदिक दृष्टि में समस्त कर्मों का परिपाक एवं सार्वभौम तत्त्वग्राही चिन्तन की प्राप्ति रही होगी। इसीलिए वैदिक परम्परा में 'यज्ञ' क्रियात्मकता केन्द्रीय आधार के रूप में ग्रहीत है। आगम परम्परा इस वैदिक दृष्टि-बोध को अपना महनीय आश्रय और गन्तव्य मानकर काल के अन्तराल के बाद भी स्वतःस्फूर्त, जीवन्त और

लोकग्राह्य बनाने के लिए 'समर्पण' की पुष्ट भाव-भूमि का निरन्तर आश्रय लेती रही है।

वैष्णव आगम पर वैदिक वाङ्मय के आधारों को स्पष्ट देखा जा सकता है। इन आगमों के आराध्य देव उनका स्वरूप, उपासक से उनके सम्बन्ध, उपासना का आश्रय एवं विधि, जड़ अथवा जगत् के साथ परतत्त्व का सम्बन्ध आदि विषयों का आधार न केवल वैदिक वाङ्मय है, अपितु उनकी तात्त्विक आधारभूमि भी स्पष्टतः वैदिक वाङ्मय दृष्टिगोचर होती है।

वैष्णव आगम मुख्यतः विष्णु और नारायण को केन्द्र में रखकर प्रवर्तित हुआ है। उसमें विष्णु-नारायण की सर्वेश्वर एवं विराट् पुरुष के रूप में मान्यता स्थापित है। ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त^१ में वर्णित विराट् पुरुष, वैष्णव आगमों के आधार नारायण हैं जो वैष्णव आगम के प्रमुख केन्द्र-बिन्दु हैं। विद्वानों ने परवर्ती काल में एकेश्वरवाद की बहुदेववाद के रूप में परिणति मानी है।

वस्तुतः मूल वेद की एकायन शाखा जिसे एकायन-विद्या भी कहा गया है, जो पाञ्चरात्र आगम का मूल आधार है। महाभारत के नारायणोपाख्यान में पौराणिक रूप में विस्तार पाता है। वही बाद में पाञ्चरात्र आगम का रूप ले लेता है। पाञ्चरात्र आगम पर अध्ययन करने वाले विशिष्ट दृष्टि से बंधे कुछ विद्वानों ने परम्परा के सातत्य का अनुभव न करते हुए उन्हें वेद विरोधी के रूप में मान कर उसी दृष्टि से उनकी समीक्षा की है। इन विद्वानों ने अनेक प्रकार के अर्थ-हीन भ्रम भी फैला दिये हैं। उदाहरण के लिए पाञ्चरात्र आगम पर केन्द्रित ग्रन्थ 'वैष्णवधर्म का उद्भव और विकास' की लेखिका सुवीरा जायसवाल ने विष्णु और नारायण को क्रमशः वैदिक और अवैदिक के रूप में अलग-अलग माना है। वे कहती हैं कि 'हमारा विचार है कि चरित्र एवं विशेषताओं की समानता

जिस प्रकार अवैदिक शिव-शङ्कर के साथ वैदिक रुद्र के ऐकीकरण का कारण बनी, इसी तरह विष्णु और नारायण के सम्बन्ध में समझना चाहिये। आगे वे कहती हैं, कि वैदिक लोग भागवत और पाञ्चरात्र दोनों की ही भर्त्सना करते थे, क्योंकि दोनों ही अवैदिक देवताओं की पौराणिक उपासनाओं पर आधारित थे।^१ नारायण के कुछ लक्षण सुमेरी देवता 'ए अ' अथवा 'एन्कि' से मिलते जुलते हैं, जो उसी प्रकार जल के बीच प्रकोष्ठ में शयन करते हैं, जिस प्रकार शेषनाग के ऊपर नारायण विष्णु।^२ इसी तारतम्य में पाञ्चरात्र संहिताएं सङ्कर्षण को प्रायः वैदिक रुद्र के साथ अभिज्ञापित करती हैं। पेरी ने कहा है - आदिम सभ्यता में नरबलि का संस्कार कृषि से सम्बद्ध था।^३ और इस संस्कार के साथ नारायण के असंदिग्ध सम्बन्ध की चर्चा हम पहले ही विस्तार पूर्वक कर चुके हैं, इसके अतिरिक्त महाभारत में नारायण का सम्बन्ध श्राद्ध संस्कार (मृत सम्बन्धियों की दिवङ्गत आत्माओं के लिये किया जाने वाला अन्त्येष्टि कर्म से जुड़ा है।^४ इन दोनों संस्कारों में तिलाञ्जलि (तिल का अर्घ्य) देना एक आवश्यक कर्मकाण्ड है और हमारी राय में तिल से सम्बद्ध सारे संस्कार हड़प्पा संस्कृति के रिक्त हैं।^५ बहरहाल यह मत कि भगवत पाञ्चरात्र धर्म अवैदिक था, बहुत पहले व्यापक प्रचार पा चुका था, इसलिये यामुनाचार्य को अपने 'आगमप्रामाण्य' में दृढ़ता-पूर्वक खण्डन करना पड़ा।^६ सुवीरा जायसवाल ने केवल यही नहीं अपितु वैष्णव देवताओं, एवं उपासनागत उपकरण और प्रक्रियाओं तथा पाञ्चरात्र संहिताओं के उपलब्ध रूप में भी अवैदिक और वैदिक दो अलग-अलग, कहीं समानान्तर और कहीं विरुद्ध, धाराएं मानते हुए अपने निष्कर्षों को प्रस्तुत किया है।

१ वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास पृ.सं. ४४

२ इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ इन्डियन हिस्ट्री पृ. सं. ३ कोशाम्बी

३ डब्लू जे. पेरी 'द ओरिजन ऑ मैजिक एण्ड रेलिजन पृ.सं. १२१-१२२

४ महाभारत १२, ३३३ और १२, ३२३

५ वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास पृ.सं. ४४

भारतीय परम्परा की निरन्तरता एवं सुसंहतता को आत्मसात् किए बिना एक काल्पनिक वैदिक-अवैदिक द्वन्द्व संघर्ष के दर्शन करने की वृत्ति के कारण ही इस तरह के अविश्वसनीय निष्कर्ष निकाले गए हैं, जो व्यक्तिनिष्ठ होने के कारण आधारहीन एवं तर्क-विरुद्ध है। वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास का एक और सन्दर्भ दृष्टव्य है जिसमें लेखिका का कथन है- 'छान्दोग्य उपनिषद् में नारद यह उपालम्भ देते हैं, कि एकायन के ज्ञान से उन्हें अपनी समस्याओं के समाधान में पर्याप्त सहायता नहीं मिल सकी, जबकि सर्वसम्मत परम्परा के अनुसार नारद इस सम्प्रदाय के प्रबल समर्थकों में से हैं।^१ महाभारत के एक अवतरण के आधार पर यह माना गया कि पाञ्चरात्र धर्मग्रन्थ मूलतः अवैदिक थे,^२ और इस सम्प्रदाय को बाद में वैदिक शिक्षाओं के अनुरूप बनाया गया। इस प्रकार उपर्युक्त कथन वैदिक, अवैदिक द्वन्द्व की वृत्ति से ओत-प्रोत होकर पाञ्चरात्र धर्म की आन्तरिक एकान्विति को आहत करता है।

आगम ग्रन्थों के अपने स्रोत को केन्द्र में रखकर पुनः अध्ययन की महती आवश्यकता है, जिसमें वैदिक वाङ्मय की अविच्छिन्न व्यापक परम्परा के विकास और प्रभाव को परवर्ती वाङ्मय को समझने के आधार के रूप में सुस्थिर किया जाए। आगम परम्परा को अवैदिक, वेद-निन्दक अथवा वेद-विरोधी न मानकर उनमें आन्तरिक एकान्विति के सूत्र खोजने के प्रयत्न के रूप में वस्तु तथ्यात्मक वैचारिक चिन्तन अपेक्षित है, जिस को आधार मान कर वैष्णव संहिताओं में उपलब्ध वैदिक स्रोतों के कतिपय बिन्दुओं पर यहाँ चिन्तन किया गया है।

१ अ. 'पञ्चरात्र शास्त्र एण्ड द उपनिषद्' न्यू इंडियन एंटिक्वोरी ८, १९४७ पृ. सं. के. सी. वरदाचारी, ब. २७ वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास पृ. सं. ४५, सुवीरा जायसवाल

२ स्टडीज इन द पौराणिक रिकार्ड पृ. १९९, हाजरा

पाञ्चरात्र का आधार शुक्ल यजुर्वेद की एकायन शाखा है जिसकी बहुत प्रशंसा वैष्णवआगम में की गई है। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेखित है कि

‘पुरुषो हि नारायणोऽकामयत् ॥

अतिष्ठेयं सर्वाणि भूतान्यहमेवेदं सर्वस्यामिति ।

स एतं पुरुषमेधं पाञ्चरात्रं शतक्रतुमपश्यत्तमाहरतोनायजत तेनेष्ट्वाऽत्य-
तिष्ठत्सर्वाणि भूतानीदं सर्वमभवत् । अतितिष्ठति सर्वाणि भूतानीदं सर्वं
भवति य एवं भवति य एवं विद्वान् पुरुषमेधेन यजते यो वैतदेवं वेद ।^१
‘यवमध्यः पाञ्चरात्रो भवति’, यज्ञारम्भ में अग्निष्टोम के प्रथम और पाँचवे
दिन अग्निष्टोम वर्ग के अतिरिक्त दूसरे और चौथे दिन उक्थ्य किये जाने
के कारण उभयतः उक्थ्य भी कहते हैं ।^२ तीसरे दिन अतिरात्र होता था । इस
कर्मकाण्ड के अवधि क्रम को ध्यान में रखते हुए पाञ्चरात्र को यव-मध्य
कहा गया जिस तरह यव-मध्य में अधिक एकत्रित एवं दोनों छोरों पर
सिमटा होता है । यव-मध्य के समान अतिरात्र भी अधिक विस्तृत होता था ।
इसमें यज्ञ-प्रक्रिया पुरुष-सूक्त के माध्यम से होती थी, जिसके ऋषि
नारायण हैं और पाञ्चरात्र सत्र के अधिष्ठाता देव भी नारायण हैं । इस दृष्टि
से शतपथ ब्राह्मण के पुरुष नारायण, ऋग्वेदीय पुरुष सूक्त और पाञ्चरात्र
परम्परा के स्रोत परमब्रह्म नारायण एक ही हैं । जहाँ पाञ्चविध अध्यात्म एवं
अधिदेवोपासना निर्दिष्ट है । पञ्चकालिक इज्या^३ के रूप में जिसे वैष्णव
संहिताओं में निर्देशित किया गया है ।^४ पाञ्चरात्र वैष्णव आगम के वैदिक
आधारों की दृष्टि से पाञ्चरात्रागम में मान्य सर्वेश्वर-विष्णु-

१ शतपथ ब्राह्मण १३.६.१.९.

२ शतपथ ब्राह्मण १३.६.१.८.

३ लक्ष्मी तन्त्र - पृ. सं. २०९

४ पञ्चकालिक-इज्या अर्थात् अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय, और योग । दूसरी संगति में सम्पूर्ण अहोरात्र को पाँच भागों में बाँटे गये काल को पाञ्च-कालिक-इज्या कहा गया ।

नारायण-वासुदेव की संज्ञा से एक विराट् सत्ता को स्वीकार किया गया, वही एकायन विद्या है। पाञ्चरात्र का मूल आधार एकायन विद्या के रूप में अधिकांश पाञ्चरात्र संहिताओं में इसको स्वीकार किया गया है। नागेश ने अपने ग्रन्थ 'काण्व-शाखा महिमा संग्रह' में कहा है कि एकायन शुक्ल यजुर्वेदीय काण्व शाखा है।

काण्वी शाखामधीयानान् वेदवेदान्तपारगान्।

संस्कृत्य दीक्षया सम्यक् सात्वताद्युक्तमार्गतः ॥ १

वेद वेदान्त के अधिकृत विद्वान् और काण्वी अर्थात् एकायनी शाखा में अधीत होकर सम्यक् वैष्णव दीक्षा से संस्कार प्राप्त करके ही मनुष्य सात्वत धर्म के युक्ति संगत मार्ग को प्राप्त कर सकता है।

पाञ्चरात्र आगमों को देखने से ज्ञात होता है कि एकायन शाखा और काण्वशाखा में बहुत अंश तक साम्य रहा होगा। यजुर्वेद की तापनीय शाखा को भी एकायन शाखा कहा गया है।^१ निश्चय ही एकायन वेद में यजुर्वेद के मन्त्र थे, यह यजुर्वेद की शाखा अथवा मन्त्रों का संग्रहरूप ग्रन्थ रहा होगा। सात्वत संहिता में उल्लेख है।

एकायनान् यजुर्मयानश्रावि तदनन्तरम्।^२

शाखाविभागे च तापनीयेति अस्या एव नामभेद उत्कीर्तितस्स्यात्।^३

परन्तु प्रकाशित और अधिकांश अप्रकाशित चरणव्यूहों में एकायन शाखा का कहीं उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

यद्यपि लक्ष्मी तन्त्र में शुक्ल-यजुर्वेद की मूल शाखा एकायन ही है। ऐसा उल्लेख है कि एकायन वेद को रहस्य आम्नाय भी कहा गया है। पाञ्चरात्र आगमों में दोनों शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त किये जाते हैं।

१ ईश्वर संहिता २५/९४

२ हयशीर्ष उपाख्यानम व्याख्या, पृ. सं. ११, १२

३ सात्वतसंहिता २५/९४

४ चरण व्यूह

आद्यमेकायनं वेदं रहस्याम्नायसंज्ञितम् ।^१

इसी क्रम में पारमेश्वरसंहिता में भी उल्लेख है-

श्रुत्वैवं प्रथमं शास्त्रं रहस्याम्नायसंज्ञितम् ।

दिव्यतन्त्रक्रियोपेतं मोक्षैकफलक्षणम् ॥^२

महाभारत में भी एकायन शाखा को पाञ्चरात्र श्रुति मानते हुए एकायन वेद को रहस्याम्नाय के रूप में स्वीकार किया गया है, सर्व वेदास्सरहस्या हि पुत्रः ।^३ विद्वानों ने रहस्य शब्द का आरण्यक एवं उपनिषद् परक अर्थ भी किया है। बौधायन धर्मसूत्र^४ और काठक गृहसूत्रों^५ के अनुसार रहस्य शब्द आरण्यक एवं उपनिषद् अर्थ में लिया गया है। यद्यपि स्पन्दप्रदीपिका के अनुसार पाञ्चरात्र उपनिषद् कहने की परम्परा तो प्राप्त है, परन्तु रहस्य शब्द का अर्थ उपनिषद् हो ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। इसी संदर्भ में आरण्यक अर्थ भी रहस्य शब्द का बोध नहीं कराता। इसलिये रहस्य शब्द का अर्थ सर्वमान्य रूप में पाञ्चरात्र शास्त्र के अन्तर्गत एकायन शाखा के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। पाञ्चरात्र परम्परा के अनुसार सर्व वेदास्सरहस्याः का अभिप्राय वेद शब्द से एकायन शाखा सहित वेदों का ही ग्रहण होता है। यह एकायन शाखा वेदों के अन्तर्गत होने के कारण तन्त्रमूलक पाञ्चरात्र आगमों की प्रतीति कराती है। इसी संदर्भ में छान्दोग्य उपनिषद् के प्रसिद्ध वाक्य में भी वेदों से पृथक् एकायन का उल्लेख हमें मिलता है।

ऋग्वेदं भगवोऽ ध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं
पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां

१ ईश्वर संहिता २१।५३१

२ पारमेश्वरसंहिता ज्ञान पाद १।१६

३ महाभारत शान्तिपर्व, मोक्ष ३६१।२१

४ रहस्यं आरण्ये पठितव्यो ग्रन्थो यः तं बौद्धार्मसूत्र भास्करीभाष्य, २।८।३

५ उपनिषद् रहस्यशास्त्रम् । काठक गृह. सूत्र, देवपालभाष्य १०।१

ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्वदेवजनविद्यामेतद्
भगवोऽ ध्येमि ।^१

पारमेश्वर और श्रीप्रश्न संहिता में भी एकायन विद्या की महिमा प्रतिपादित की गई है-

तस्मादेकायनं नाम प्रवदन्ति मनीषिणः ।
श्वेतद्वीपे पुराधीतो नारदेन सुरर्षिणा ॥
नमः श्रीवासुदेवाय सच्चिदानन्द मूर्तये ।
एकायनत्रयीं यस्तामुपादिक्षच्छ्रियै प्रभुः ॥^२

इसी क्रम में जयाख्य संहिता में भी एकायन वेद और यजुर्वेद का उल्लेख किया गया है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि एकायन शाखा वेदों से सर्वथा पृथक् एवं स्वतन्त्र थी। यह एकायन शाखा वेद सम्मत और वेद की प्रशस्तिपरक वचनों से परिपूर्ण थी, अर्थात् वेदों के माहात्म्य को एकायन शाखा में वैशिष्ट्य के साथ प्रतिष्ठापित किया गया है। यह एकायन शाखा ही पाञ्चरात्र आगमों का मूल है। निश्चय ही वैष्णव आगम वैदिक परम्परा के परिपोषक ग्रन्थ है। इससे ऐसा लगता है कि प्राचीन काल में कोई एक ऐसा स्वाध्याय-विषय वेद विद्याओं के साथ रहा होगा जिसे पाञ्चरात्र मतानुयानियों ने वेदों के समान प्रामाणिक मान कर एकायन शाखा को अपने मत का प्रवर्तक ग्रन्थ स्वीकार किया होगा। इसीलिए देवर्षि नारद सनत्कुमार से कहते हैं कि उन्होंने एकायन शास्त्र का अध्ययन किया है। इसीलिए उसे मूल वेद माना गया। इससे ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद हुए।

वेदमेकायनं नाम वेदानां शिरसि स्थितम् ।
तदर्थकं पाञ्चरात्र मोक्षदं तत्क्रियावताम् ॥^३

१ छान्दोग्य उपनिषद् ७।१।२

२ श्रीप्रश्न संहिता ज्ञानपादः १।१

३ श्रीकृष्ण संहिता, २.३८.३९

एकायनवेद संज्ञक शास्त्र के अवतरण और उसके मूल उद्गाताओं की ओर सङ्केत करते हुए ईश्वर संहिता में भी उल्लेख है कि शाण्डिल्य ऋषि ने तोताद्रि-शिखर पर घोर तपस्या की। यह समय द्वापर युग के अन्त का और कलियुग के आदिकाल का था। तब शाण्डिल्य ऋषि के तप से प्रसन्न होकर भगवान् सङ्कर्षण ने स्वयं एकायन वेद संज्ञक ब्रह्मविद्या-एकायनविद्या उन्हें प्रदान की, जिसे कालान्तर में सुमन्तु, जैमिनि, भृगु, औपगायन, आदि ऋषियों ने परम्परया प्राप्त किया, इस तरह यह एकायन वेद समस्त भूमण्डल में व्याप्त हुआ।^१

यह एकायन विद्या ही कालान्तर में पाञ्चरात्र श्रुति के रूप में ख्यात हुई। तदनुसार एकायन शाखा काण्व शाखा रही होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि ऋग्वेद की ऋचाओं में एक ही परमोच्च देवता^२ की स्तुति एकायन के स्रोत की ओर सङ्केत करती है। सम्भवतः यह ऋग्वेदीय शाखा वैदिक जनों के एक समूह की भक्ति के दीर्घकालीन इतिहास की परिचायक रही होगी, जो पूर्व में एकायन वेद के नाम से जानी जाती रही होगी। पाञ्चरात्र में नारायण स्वयं वक्ता हैं एवं सङ्कर्षण और संवर्तक इसे कालान्तर में अन्य ऋषियों तक विस्तारित करते हैं -

पाञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता तु नारायणः स्वयम्।

पौष्कर, ईश्वर, नारदीय, श्रीप्रश्न आदि संहिताओं में एकायन को श्रुति, उपनिषद् और संहिता कहा गया है। एकायन की पाञ्चरात्र और वैखानस ये दो शाखाएं हैं।^३ वैष्णव आगम संहिताओं में पाञ्चरात्र और वैखानस का परवर्तीकाल में भिन्न एवं अभिन्न रूपों में भी वर्णन प्राप्त होता है। प्रत्यक्ष सन्दर्भों के आधार पर वैखानस परम्परा तो वैदिक है ही। उसके

१ एष एकायनो वेदः प्रख्यातस्सर्वतो भुवि। ईश्वर संहिता १।४३

२ तमिदगर्भं प्रथमं दध्ना आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे।

अजस्य नाभावध्येकमर्पियस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ ऋग्वेद १०।८२।६

३ हयशीर्षपञ्चरात्र २।७-९

गृह्य-सूत्र और श्रौत-सूत्र भी प्राप्त होते हैं, जो अन्य वैदिक शाखाओं के समकक्ष हैं।

वैष्णव आगम के अन्य ऋषियों में औपगायन, कौशिक, शाण्डिल्य, भारद्वाज, मौज्जायन, सुमन्तु, जैमिनी एवं भृगु, नारद, सनत्कुमार, इत्यादि सम्मिलित हैं।^१ इन सभी को वैष्णव आगम में सङ्कर्षण, महर्षि नारद और संवर्तक ऋषि की परम्परा के प्रवर्तक आद्य आचार्यों के रूप में माना गया। सम्भवतः यह शुक्ल-यजुर्वेद अथवा एकायन वेद की शाखा रही होगी, जिसे एकायन विद्या भी कहा गया। एक=(विष्णु)+अयन = (मार्ग=निवास) एकायन के पहले स्तर में विष्णु शब्द यज्ञ वाचक रहा होगा। दूसरे स्तर में एकायन मोक्ष का एकमात्र मार्ग रहा होगा। (एक=मोक्ष + अयन=मार्ग)।

यही एकायन विद्या पाञ्चरात्र परम्परा का मूल और एकान्तिन् उपासना का आश्रय बनी। एकायन के सम्बन्ध में कहा गया है-

यस्मिन्नेको मोक्षमार्गः वेदे प्रोक्तः सनातनः।

नागेश ने इसकी पहचान शुक्ल यजुर्वेदी काण्व शाखा के रूप में की है। इसीलिये मूल वेद अथवा एकायन वेद वेदों के शीर्ष पर स्थित है; इसलिए नारद पाञ्चरात्र-तन्त्र का मूल एकायन वेद है।

वैखानस आगम

वैखानस कृष्ण यजुर्वेद की स्वतन्त्र एवं पृथक् शाखा है। चरणव्यूह में वर्णित कृष्ण यजुर्वेद की चार प्रधान शाखाएं हैं : १. आपस्तम्ब, २. बौधायन, ३. सत्याषाढ-हिरण्यकेशी तथा ४. औखेय अर्थात् वैखानस। धर्म प्रश्न (वैखानस धर्मप्रश्न) के अनुसार औखेय शाखा का सम्बन्ध वैखानस से है। इस मत का वैखानस श्रौतसूत्र के भाष्यकार वेंकटेश भी समर्थन

१ पञ्चायुधांशस्ते पञ्च शाण्डिल्यश्चौपगायनः।

मौज्जायनः कौशिकश्च भारद्वाजश्च योगिनः ॥ ईश्वर संहिता २१।५१९, ५३२, ५३३

करते हैं। धर्मसूत्रों^१ में वैखानस शब्द का प्रयोग वानप्रस्थी यतियों के लिए किया गया है। इसका मुख्य कारण है कि 'वैखानस धर्मप्रश्न' में वानप्रस्थों के आचार विधान का विस्तार से वर्णन है, जिनका परिपालन वानप्रस्थ व्यक्तियों का प्रधान कर्तव्य था।

वैखानस आगम के मूल उद्गाता बिखना नामक ऋषि को ब्रह्मा का एक स्वरूप भी माना गया है। वैखानस विजय में कहा गया है-

आदिकाले तु भगवान् ब्रह्मा तु बिखना मुनिः।

यजुश्शाखानुसारेण चक्रे सूत्रं महत्तरम् ॥^२

श्रीमद्भागवत में वैखानस की एक और व्युत्पत्ति के अनुसार विखनाद्-वैखानस कहा गया है। यास्क के मतानुसार अंगिरा, भृगु, अत्रि और वैखानस की उत्पत्ति अग्नि से हुई है। ब्रह्मा रूपी विखना ऋषि ने अत्रि, भृगु, मारीचि, कश्यप, अंगिरा नामक शिष्यों द्वारा शास्त्र प्रवर्तन किया। बाद में वैखानस शब्द का विशिष्ट निर्वचन किया गया, जिसे-

विशेषेण खननाद् गम्भीरार्थोद्घरणात् विशिष्ट-वैष्णवधर्मधारणोपयिक-

मीमांसाविशेषाद् विखना इति विखनसः इति चोच्यते इति ज्ञायते।^३

वस्तुतः इसकी वैदिक परम्परा पवित्र अग्नि वेदिका के खनन की प्रतीति होती है, सम्भवतः उस यज्ञ विधा के प्रारम्भिक स्वरूप का नाम भी वैखानस रहा होगा। कहीं-कहीं वैखानस आगम में नारायण से विखनस् के आगमों का उपदेश पाकर ब्रह्मा वैखानस कहलाए। ब्रह्मा की उत्पत्ति नारायण के नाभि कमल से मानी गई है। इस कारण वैखानस और ब्रह्मा एक ही पिता नारायण के पुत्र हुए।^४

१ गौतम धर्म सूत्र (३/२) बौधायन धर्मसूत्र (२/६/१७), वसिष्ठ धर्मसूत्र (९/१०)

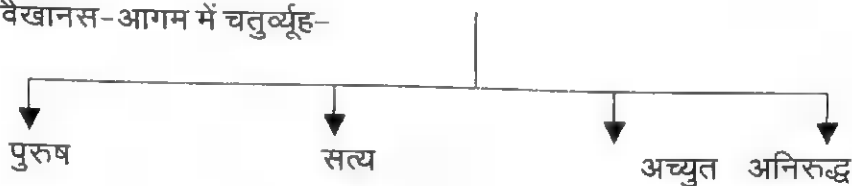
२ वैखानसविजय पृ. १६

३ वैखानसविजय पृ. १५-१६

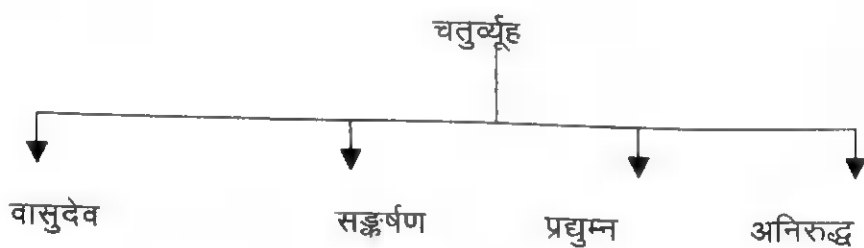
४ वैखानसविजय पृ. १५.१६

कोशाम्ब शास्त्री के मतानुसार वैखानस आगम की मूल परम्परा लगभग ई.पू. सातवीं शताब्दी की मानी गई हैं। यह उक्ति 'नारायणो ब्रह्मणे आह सर्वं वैखानसं वैदिकं मन्त्रयुक्तं' ^१ तैत्तिरीय शाखा और वैखानस शाखा सम्भवतः एक रही हो। यजुर्वेद की एक शाखा होने के कारण यह सर्वमान्य रही होगी। प्रतीत होता है कि 'वैखानसमरीचिप्रोक्तं' आदि कथनों से वैखानस एक उपासना परक सम्प्रदाय का नाम रहा होगा। आद्य शङ्कराचार्य भी वैखानस आगमों के विषय के वेद बाह्य होने की कोई टिप्पणी नहीं करते। वेदान्त देशिक इनके वेद सम्मत होने का समर्थन करते हैं। वैखानस तथा पाञ्चरात्र का अन्तर भी स्पष्ट करते हैं। स्पष्टतः वैखानस और पाञ्चरात्र आगमों में परस्पर विषयों की समानता और अन्तरङ्ग सम्बन्ध हैं।

वैखानस-आगम में चतुर्व्यूह-



जबकि पाञ्चरात्र परम्परा में -



इस सन्दर्भ में पाञ्चरात्र का दिव्य देश श्रीरङ्गम् और वैखानस का तिरुपति है। तमिल एवं आन्ध्रप्रदेश में वैखानस आगम से सम्बद्ध बहुत से मन्दिर हैं। मत वैभिन्न्य की बाद भी न्याय परिशुद्धि में दोनों की एकरूपता

१ नारायणो ब्रह्मणे आह सर्वं वैखानसं वैदिकमन्त्रयुक्तम्।
प्रतिष्ठाविधिदर्पण से वैखानसागमः ॥ प्रिफेस पृ. २

बताते हुए कहा गया 'विष्णोस्तन्त्रं द्विधा प्रोक्तं'। भगवान् विष्णु के द्वारा उपदिष्ट वैखानस आगम अन्य आगमों का मूल कहा गया। विखना मुनि स्वयं चर्तुमुख ब्रह्मा है,^१ जो वैखानस कहलाये। उनके प्रमुख चार शिष्य हैं-अत्रि, कश्यप, भृगु, एवं मरीचि। लगभग चौबीस ग्रन्थों का उल्लेख वैखानस कोश में मिलता है। यद्यपि अब केवल अत्रि का समूर्ताचनाधिकरणम्, कश्यप का ज्ञानकाण्ड, भृगु का प्रकीर्णाधिकार-यज्ञाधिकार ही प्राप्त हैं। वैदिक वाङ्मय में वैखानस सूत्रों और वैखानस ऋषि का बहुत बार उल्लेख किया गया है।

सात्वत

सात्वत तन्त्र का उपदेश देवर्षि नारद ने किया है, जिसका उपदेश भगवान् वासुदेव ने सङ्कर्षण को दिया था। सात्वत तन्त्र में कर्म से भी मोक्ष प्राप्ति का वर्णन है। इसीलिये सात्वत तन्त्र में वैदिक कर्मकाण्ड के, उपासना पद्धति में, सम्पन्न होने का विधान है, जैसे- सात्वत विधि में पुरुष सूक्त से ही भगवान् विष्णु की आराधना होती है। आज भी सात्वत तन्त्र में प्रदर्शित विधान के अनुसार यादवाचल में भगवान् विष्णु की आराधना होती है। उसी तरह श्रीरङ्गम् में पौष्कर संहिता से और हस्ति शैल में जयाख्य पद्धति के अनुसार पूजा होती है। ईश्वर संहिता के अनुसार-

एतत्तन्त्रत्रयोक्तेन विधिना यादवाचले ।

श्रीरङ्गे हस्तिशैले च क्रमात् सम्पूज्यते हरिः ॥

सात्वत शब्द का निर्वचन इस प्रकार है-

१. सत् सत्त्वम्-ब्रह्म तद्वन्तः-सात्वन्तः अथवा सात्त्विकाः ब्रह्मविदः तेषां इदं कर्म शास्त्रं वा-सात्वतं तत् कुर्वाणः आचक्षाणो वासात्त्विकाः अथवा सात्वतः।
२. सातयति (सुखयति) आश्रितानिति वा।

३. सात् (परमात्मा) स एतेषां अस्तीति वा सात्वताः सात्वन्तो वा महाभागवताः। अतः सात्वत परम्परा का शास्त्र सात्वत संहिता है।

सात्वत संहिता रत्नत्रय में सर्वाधिक प्राचीन है। इसमें विभव देवताओं का नाम और ध्यान वर्णित हैं। सात्वत-दर्शन के अनुसार सात्वत संहिता में त्रिविध ब्रह्म का प्रतिपादन हुआ है। पातञ्जल महाभाष्य के 'अरुणद्यवनो माध्यमिकाम्' ^१ माध्यमिका नगरी में घोसुण्डी ग्राम के पास परकोटे से धिरी नारायण वाटिका थी जिसे पाराशरी पुत्र गाजायन ने वासुदेव और सङ्कर्षण को समर्पित किया था। घोसुण्डी से उपलब्ध शिलालेख में उक्त जानकारी दी गई है। ^२ सात्वत संहिता में इस प्रकार की वाटिका को भगवत् अर्पित करने का विधान मिलता है। ^३ अतः ऐतिहासिक दृष्टि से सात्वत धर्म की प्राचीनता स्वयमेव सिद्ध होती है। महाभारत में भीष्म पितामह के वक्तव्य से भी यही प्रतीत होता है-

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः ।

अर्चनीयश्च सेव्यश्च कीर्तनीयश्च सर्वदा ॥

सात्वतं विधिमास्थाय गीतः सङ्कर्षणेन यः

द्वापरस्य युगस्यान्ते आदौ कलियुगस्य च ॥ ^४

निश्चय ही महाभारत काल में सात्वत तन्त्र और सात्वत विधि के अनुयायियों की पर्याप्त ख्याति रही होगी। सात्वत संहिता में उल्लिखित मण्डल देवता उपेन्द्र और दुरतिक्रम, विष्णु सहस्रनाम में भी समविष्ट है। इसीलिये सात्वत विधि का समादर करते हुए ईश्वर संहिता में इसका उपबृंहण हुआ है।

१ पातञ्जल महाभाष्य ३.३.११

२ एपिग्राफिया, इण्डिका, भा, १०, परिशिष्ट पृ. २

३ सात्वत संहिता २५.३५५-३६७

४ महाभारत भीष्मपर्व, ६६/३९-४०

वैदिक परम्परा में प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गों का निर्देश सर्वत्र प्राप्त होता है। आगम परम्परा में नैष्ठिक, समर्पण, साधना और उपासना विधियों का ही अधिक विवेचन है। फलतः सात्वत संहिता में ज्ञान और क्रिया पक्ष में विशेष रूप से वेदानुकूल चिन्तन है।

‘निवृत्तिलक्षणा प्रवृत्तिलक्षणश्च धर्मो भवति तत्र सात्वतो हि क्रियामार्गः
प्रवृत्तिलक्षणः ॥

नारायणीयोपाख्यान में कहा गया -

प्रवृत्तिलक्षणश्चैव धर्मोनारायणात्मकः’^१

सात्वत तन्त्र को एकायन श्रुति का सार कहा गया -

एकायनश्रुतेः सारभूतं सात्वततन्त्रमिति वर्तते

एकान्तिन् : ‘एकान्तिन् तन्मयश्च’ अर्थात् एकायन धर्म के अनुयायियों का सम्प्रदाय।

नारायणीयोपाख्यान में एकान्तिन धर्म का श्रेष्ठत्व प्रतिपादित किया गया है कि ऐकान्त धर्मानुयायी ही परमतत्त्व को प्राप्त कर सकता है। वे ही मोक्ष के अधिकारी होते हैं।^२ अनन्य समर्पण या पूर्ण शरणागति ही एकान्तिन् का एकायन मार्ग (Unique Path) है।

तन्मय भाव से पञ्चकालिक पूजा द्वारा एकमात्र मोक्षमार्ग के अनुयायी श्वेतद्वीपवासी भगवान् नारायण के उपासक एकान्तिक कहे गए हैं। यह विचारणीय तथ्य है कि वैदिक परम्परा मुक्ति मार्ग के साथ स्वर्गीय उपलब्धियों, सकाम प्रवृत्तियों को भी इङ्गित करती हैं। यहाँ वैदिक परम्परानुसार धार्मिक अनुष्ठान के साथ एकान्तिक परम्परा केवल परमात्मैक्य का ही दर्शन प्रस्तुत करती हैं। मोक्ष ही एकमात्र मार्ग है। अतः

१ महाभारत नारायणीयोपाख्यान ३४७।८३ सात्विकस्स तु विज्ञेयः भवन्मोक्षे च निश्चितः ॥ महा.भारत.७३.३४८

२ एकान्तिनस्तु पुरुषा गच्छन्ति स्म परं पदम्। महाभारत शान्तिपर्व ३५८-३-४

एकान्तिक परम्परा, एकायन वेद या एकायन शाखा से ही पल्लवित मानी जाती है। पाञ्चरात्र, भागवत और एकान्तिक तत्त्वतः एक ही हैं। विष्णु, नारायण वासुदेव के ऐक्य-समीकरण से वे सभी परम-तत्त्व के उपासक हैं, फिर भी उपासना भेद से उनके अन्तर के सम्बन्ध में पाद्म संहिता में कहा गया है -

सूरि-सुहृद्-भागवतः सात्वतः पञ्चकालाविद् ।

ऐकान्तिकस्तन्मयश्च पाञ्चरात्रिक इत्यपि ॥^१

भागवत-धर्मानुयायी सुहृदय विद्वान् है, जिन्हें सूरि भी कहा गया। सात्वत-धर्मानुयायी पञ्चकालिक सपर्या के ज्ञाता हैं, और ऐकान्तिक तन्मय मोक्ष मार्गी हैं। यही सब मिलकर पाञ्चरात्र परम्परा के रूप में ज्ञात होते हैं। एकान्तिक धर्म की धारणा है कि -

मोक्षायनायै वै पन्था एतदन्यो न विद्यते ।

तस्यादेकायनं नाम प्रवदन्ति मनीषिणः ।^२

यहाँ नर, नारायण, कृष्ण और हरि इन चतुर्मूर्तियों का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त पञ्चकालज्ञ एकान्तिक उपासना के कारण यह एकान्तिन धर्म कहलाया। इसके उपाख्यान में नारायण परम-तत्त्व हैं। जो कि श्वेत दीप में अवस्थित हैं। एकान्त भाव से नारायण की उपासना इनके अनुयायियों का उद्देश्य है।

नारायण शब्द के सम्बन्ध शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि सृष्टि की प्राक्कालीन अवस्था में सब कुछ जल तत्त्व ही था अतः उसी से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। इसीलिये जल में निवास करने वाले नारायण तत्त्व की अर्थवत्ता और उसके अभिप्राय को उद्घाटित करने वाली संहिताएं एकान्तिन धर्म की प्रवर्तक हैं। इन्हें पाञ्चरात्र रीति को मानने वाले होने के कारण कहीं समयिन् भी कहा गया है। समयिन् पुत्रक, साधक, दैशिक और

१ पाद्म संहिता ४.२.८८

२ ईश्वर संहिता १.१९

गुरु इनकी पाँच प्रकार से दीक्षा भी वैदिक कर्मकाण्ड विधि से की जाती थी। पौष्कर के समान ही ईश्वर, पारमेश्वर और पाद्मसंहिताओं में एकायन वेद से सम्बद्ध ब्राह्मणों के एक वर्ग का उल्लेख मिलता है। जयाख्य संहिता में वैदिक शाखाओं से सम्बद्ध ब्राह्मणों के लिए निर्देश किया है—

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तम ।

एकायनीशाखोत्थमन्त्रानपरमपावनम् ॥^१

पुरुष सूक्त विष्णु सूक्त के उपासक वैखानस आगम के सूत्र वैदिक परम्परा में परिव्याप्त हैं। इन आधारों को विधिवत विस्तार देना अपेक्षित होगा।

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः ।

सात्वतं विधिमास्थाय गीतः सङ्कर्षणेन यः ।

द्वापरस्य युगस्यान्ते आदौ कलियुगस्या च ॥

वस्तुतः एकान्तिन् परम्परा आरण्यकों में निर्दिष्ट निर्लेप भक्तियुक्त नारायण सम्प्रदाय की रही है। महाभारत में नारायणियोपाख्यान में कहा गया है कि सतयुग से ही स्वयं नारायण हरि एक मन्वन्तर के प्रारम्भ में इस धर्म का कथन करते हैं और मन्वन्तर के अन्त में वह लुप्त हो जाता है। इस मन्वन्तर के प्रारम्भ में दक्ष, विवस्वत मनु और इक्ष्वाकु राजाओं से होता हुआ बृहस्पति की यज्ञ साधना एवं एकत, द्वित, त्रित की सहस्रों वर्षों की तपसाधना से राजा वसु उपरिचर तक इस श्रेष्ठ नारायण भक्ति का उल्लेख प्राप्त होता है। इस तरह चतुर्भूति नर, नारायण, हरि, कृष्ण के उपासक, श्वेतद्वीपवासी एकान्तिन वैदिक काल की अरण्य परम्परा के स्रोत आरण्यकों और उपनिषदों के अनुगत रहे होंगे। इस सन्दर्भ में पाञ्चरात्र परम्परा के बिखरे हुए मूल स्रोतों के वैदिक आधारों पर व्यापक अनुसन्धान की दृष्टि से विचार ही हमारा अभीष्ट है।

भागवत-धर्म

यहाँ पर ब्रह्म को षड्गुणों से सम्पन्न माना गया है। इसलिये भगवत् अर्थात् छह प्रकार के ऐश्वर्यादि गुणों^१ से युक्त भगवान् वासुदेव हैं। विष्णु पुराण में भी इन्हीं छह गुणों से ईश्वर को सम्पन्न कहा गया है।^२ शरणागति भाष्य में वेदान्तदेशिक भी भगवान् के षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न स्वरूप की चर्चा करते हैं।^३ श्रुतियों में भगवान् को सर्वज्ञ, सर्वविद् आदि शब्दों से सम्बोधित किया गया है।^४ यही परमब्रह्म व्यूह भेद से चतुर्धा व्यक्त हो जाते हैं। वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, एवं अनिरुद्ध, यही चतुर्व्यूह हैं, जिसमें सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध यही चतुर्व्यूह हैं। और वासुदेव षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न परब्रह्म है। यही सृष्टि प्रक्रिया के निर्णायक तत्त्व भी हैं और प्रत्येक कल्प में भागवत धर्म के प्रवचनकर्ता सङ्कर्षण और प्रद्युम्न हैं। लक्ष्मी तन्त्र^५, जयाख्य संहिताओं में भागवत धर्म की दार्शनिक पृष्ठभूमि भलीभाँति प्रस्तुत की गई है। लक्ष्मी तन्त्र के अनुसार -

क्रमशः प्रलयोत्पत्तिस्थितिः प्राण्यनुग्रह।

प्रयोजनयथान्यच्च शास्त्रशास्त्रार्थतत्फलैः ॥

नारदीय संहिता में सृष्टि के पूर्व स्थिति के प्रसंग में एकाकी वासुदेव के स्वरूप और उसकी क्रीड़ा के निमित्त विग्रहोत्पत्ति का वर्णन किया गया है। इसी तरह वृहद् ब्रह्म संहिता में वासुदेवादि व्यूहों के स्वरूप

१ ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति, तेज

२ ज्ञान शक्ति बलैश्वर्यवीर्य तेजांस्यशेषतः

भगवच्छब्द वाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥ विष्णु पुराण ६.५.७९

३ तवानन्त गुणस्यापि षडेव प्रथमे गुणाः ।

तत्त्वमेव जगत्कुक्षावन्येऽप्यन्तर्निवेशिताः ॥ शरणागति भाष्य पृ. सं. १११

४ यत्सर्वज्ञः सर्ववित् । मुण्डकोपनिषद् १।१।९, २।२।७

५ ज्ञान शक्ति बलैश्वर्यवीर्यतेजो महोदधिः

षण्णां युगपत् ।

लक्ष्मी तन्त्र ७।५

एवं उनकी उत्पत्ति के वर्णन मिलते हैं। पाञ्चरात्र परम्परा के प्रवर्तक आचार्य शाण्डिल्य ऋषि की शाण्डिल्य संहिता के भक्ति काण्ड के चतुर्थ अध्याय में चतुर्व्यूहों की उत्पत्ति विषयक दृष्टिकोण में सृष्टिक्रम में चतुर्भुज स्वरूप धारणा की चर्चा है। जिसमें वासुदेव सङ्कर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध स्वरूप होकर जगत् के संकट निवारणोपाय हेतु विष्णु नारायण का प्रादुर्भाव हुआ।

विश्वमित्र संहिता में कश्यप ऋषि के पूछने पर भगवत् शब्द का अर्थ क्या है और वह कैसे हैं इस सन्दर्भ में बताया गया - किमर्थो भगवच्छब्दः कीदृशे। भगवांश्च सः^१-इस तरह से सृष्टि प्रक्रिया जीव, जगत्, जड़, चेतन पर तत्त्व और मोक्ष, विवेचन से युक्त भागवत धर्म है। पाञ्चरात्र परम्परा का मूल सिद्धान्त चतुर्व्यूह सिद्धान्त भागवतों द्वारा पल्लवित किया गया, जिसके स्रोत नारायण-विष्णु-वासुदेव के ऐक्य समीकरण के माध्यम से स्रोत के रूप में वैदिक आधारों की पुष्टि की। पूर्व में पञ्चवीरोपासना प्रचलित थी, जिस तरह सूर्य और विष्णु का उत्तर वैदिक काल में एकीकरण हो गया उसी तरह सूर्योपासक साम्ब को चतुर्व्यूह में अन्तर्हित कर दिया गया। इसी क्रम में सङ्कर्षण प्रारम्भ में नागपूजकों के उपास्य देव थे और उनका अंकन स्वतन्त्र रूप से हुआ है तत्पश्चात् शनैः-शनैः भागवत पाञ्चरात्र परम्परा में समाविष्ट होता गया।^२ भागवत परम्परा के प्रारम्भिक अभिलेखिक -भौतिक एवं शिल्प -साक्ष्य उल्लेखनीय महत्व के हैं। कश्मीर में प्राप्त चतुर्व्यूह मूर्ति एवं घोसुण्डी अभिलेख हेलियो डोरस का विदिशा से प्राप्त गरुड़-ध्वजस्तम्भ लेख, इण्डो ग्रीक शासक, अगाथो-क्लीज की मुद्राओं (पूर्व भाग पर वासुदेव पृष्ठ भाग पर सङ्कर्षण का अंकन) में साक्ष्य और भारत का दारेल घाटी से प्राप्त विष्णु का उत्कीर्ण शैल चित्र विष्णु-वासुदेव-सङ्कर्षण की व्यापकता और महत्ता को प्रतिपादित करते हैं। बाद में गिलगित और चिलास क्षेत्र में

१ विश्वमित्र संहिता, ४।६-१९

२ Evolution of Hindu sects पृ. ५३-५४

वासुदेव और सङ्कर्षण के शैल चित्र वहाँ प्राप्त हुए हैं। डॉ. अहमद हसन दानी की पुस्तक^१ में एक चक्र दर्शाया गया है और उसके नीचे एक Inscription पढ़ा जा सकता है।^२

‘वासुदेव चक्र स्वर्ण एवं रत्नांकित कुण्डलवैशाम् ब्रह्मणः महेश्वरः।’

इत्यादि अभिलेख में अङ्कित है। निश्चय ही यह आलेख पाञ्चरात्र परम्परा के विराट् व्यापक प्रभाव क्षेत्र को व्यक्त करता है। जिस ने वैदिक स्रोतों को विभिन्न आयामों में विस्तारित किया है। शताब्दियों तक भागवत पाञ्चरात्र धर्म मध्य भारत से लेकर सुदूर पश्चिमोत्तर क्षेत्र तक वासुदेव भक्ति के अभ्युदय का आख्यान करता रहा है। कारण कि वैष्णव अथवा भागवत परम्परा पाञ्चरात्र का विकसित स्वरूप है, जहाँ भागवत धर्मानुयायियों को सूरि सुहृदः भागवत कहा गया - विद्वान् भक्त- हृदय भागवत जन भाग्यवान् हैं, श्रेष्ठ हैं जो भागवत धर्म को अपनाते हैं। गीता एवं श्रीमद्भागवत इस धर्म के विशिष्ट परिचायक ग्रन्थ हैं। ब्राह्मण परम्परा के पोषक मन्त्रानुष्ठान जिसमें द्वादशाक्षर मन्त्र ज्ञाता और पाञ्चरात्र के दार्शनिक तत्त्वों के विकास का परिचय वैष्णव भागवत धर्म देता है। निश्चय ही यह विकसित परम्परा है। बाद में जिसमें सभी वर्णों का प्रवेश है।

पाञ्चरात्र परम्परा

पाञ्चरात्र के मूल सिद्धान्त श्रुति में प्रतिपादित हैं। इसीलिये संस्कृत वाङ्मय में तीन विभिन्न सन्दर्भों पर विभिन्न अर्थों में पाञ्चरात्र शब्द प्रयुक्त हुआ है।

१. वैदिक वाङ्मय में शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ क्रतु नाम से पाँचरात्रियों के यज्ञीय सत्र के रूप में प्रयुक्त होता है।
२. साहित्यिक क्षेत्र में भास के महाभारत पर आधारित नाटक का नाम पाञ्चरात्र है।

१ Chilas The City of Nanga Parvat में नं. १७७ में के Thal Pan III शैल चित्र

२ ‘वासुदेव चक्रम मणि कनक चैत्य कुण्डल विशाय, ब्राह्मणस्य न महेश्वर’

३. महाभारत में मोक्ष धर्म पर्वण में पाञ्चरात्र नामक धार्मिक तन्त्र का परिचायक नाम है।

पहले सन्दर्भ में पाञ्चरात्र शब्द का तात्पर्य पाँच रात्रि पर्यन्त पलने वाले यज्ञ-सत्र का बोध होता है।

तीसरे सन्दर्भ में यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि पाञ्चरात्र नाम से एक विशेष धर्म को सम्बोधित किया गया है। यदि यह केवल यज्ञ-सत्र था तो क्यों उसे महाभारत में पाञ्चरात्र धर्म की विशेष संज्ञा दी गई? इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि तब तक पाञ्चरात्र धर्म की व्यापकता का द्योतन सर्वत्र हो चुका था। नारायणीयोपाख्यान पाञ्चरात्र धर्म के वैशिष्ट्य का परिचायक है।

उपरिवर्णित इस दिशा पर विचार करने पर शतपथ ब्राह्मण में पाञ्चरात्र सत्र को ज्ञान सत्र के रूप में प्रतिपादित किया गया है। कारण कि यज्ञ विधान तो दिन की चर्चा में समाहित होते हैं और दिन में समायोजित यज्ञ सत्र को पञ्च दिवसीय यज्ञ सत्र क्यों नहीं कहा गया। ऐसा प्रतीत होता है कि पाञ्चरात्रीय ज्ञानोपदेश सत्र को इस धर्म की निष्ठा-परक व्यापकता और समाख्या के कारण ही यह नाम मिला हो।

पाञ्चरात्र या पाञ्चरात्र शब्द का निर्वचन 'पाञ्चरात्रमधिकृत्य' पाञ्चरात्र के सन्दर्भ में जो कुछ भी लिखा गया। दोनों ही शब्द पाञ्चरात्र और पाञ्चरात्र एक व्यवस्थित धार्मिक परम्परा के परिचायक हैं, जो सामान्यतया-धर्म विशेष की वाहक परम्परा के शताब्दियों के सेतु रहे हैं। इसका सामासिक रूप का अलग-अलग निर्वचन अभिप्रेत है।

१. पञ्च+रात्रि : पञ्चानां रात्रिणां समाहारः^१ रात्रियों का समूह
२. पञ्चविधं रात्रम्- पाँच प्रकार की रात्रियाँ

३. पञ्च विद्यन्ते रात्रयः यस्मिन् तत् वह सत्र जिसमें पाँच रात्रियाँ विशेष अर्थ रखती हैं।
४. पञ्च - पक् धातु से बना अर्थात् बनाना किसी चीज को पकाना अतः रात्र का अर्थ अज्ञान जो अज्ञान को पकाता है और सत्य ज्ञान को अभिव्यक्त करता है। महाभारत के अनुसार चारों वेद तथा सांख्य योग के समाविष्ट होने के कारण इस मत की संज्ञा पाञ्चरात्र थी। ईश्वर-संहिता^१ के कथनानुसार शाण्डिल्य, औपगायन, मौज्जायन, कौशिक तथा भारद्वाज ऋषि को मिलाकर पाँच रातों में उपदेश दिया गया था तथा पाद्मसंहिता^२ का कथन है कि इसके सामने अन्य पाँच शास्त्र रात्रि के समान मलिन पड़ गये थे, अतः पाञ्चरात्र नामकरण हुआ। नारद पाञ्चरात्र के अनुसार इस नामकरण का कारण विवेच्य विषयों की संख्या है। 'रात्र' का अर्थ होता है - ज्ञान। परमतत्त्व, मुक्ति, भुक्ति, योग तथा विषय (संसार) - पञ्च विषयों का निरूपण करने से इस तन्त्र का नाम 'पाञ्चरात्र' पड़ा है।

यदि हम पाञ्चरात्र परम्परा के उद्भव के सन्दर्भ में विचार करते हैं तो और भी अन्य महत्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं।

१. चिलास के गिलगित क्षेत्र में पाये गये राजा एगेथोक्लीज के जो सिक्के मिले हैं, उनमें वासुदेव और सङ्कर्षण की आकृति अंकित है। जिसका काल ईसवी पूर्व प्रथम-द्वितीय सदी का रहा होगा।
२. वेदों के समकालीन अवेस्ता ग्रन्थ में 'देवायदनियन' और 'देवायदन' के प्रसंग पाञ्चरात्र की परम्परा की दृष्टि को दर्शाते लगते हैं। अखेनियन राजाओं के अभिलेखों में जो पुरानी परशियन में है एवं नारायणीय उपाख्यान में जो वर्णन है वह यही

१ ईश्वर-संहिता अ. २१

२ पाद्मसंहिता ज्ञानपद अ. १

सिद्ध करता है कि पाञ्चरात्र शास्त्र वेद काल में सर्वप्रथम सुमेरु पर्वत के पश्चिम में उद्भूत हुआ होगा। महाभारत का नारायणीयोपाख्यान जो श्वेत दीप को सुमेरु के पश्चिम में स्थित बताता है और जहाँ एकान्तिन धर्मानुयायी नारायणोपासना करते हैं, पाञ्चरात्रागमों को वासुदेव प्रोक्तमाना गया है और उन्हें परम ब्रह्म माना जाता है। ये सङ्केत भी पाञ्चरात्र परम्परा के उद्भव सूत्र प्रतीत होते हैं।

प्रभाव की दृष्टि से भगवद्गीता, उपनिषद्, स्मृतियाँ आदि पाञ्चरात्रिक आगम परम्परा से प्रभावित हैं। समर्पण की इस भूमिका के परिणाम स्वरूप वैदिक परम्परा के मूल भूत तत्त्व पाञ्चरात्र परम्परा में अङ्गीभूत होते गए। वैदिक परम्परा में 'इष्ट' क्रियात्मकता केन्द्र के रूप में ग्रहीत है। जबकि पाञ्चरात्र आगम में 'समर्पण' केन्द्रीय तत्त्व है। अतः वैदिक दृष्टि का वैशिष्ट्य इष्ट स्वतः ही अपना वैशिष्ट्य प्राप्त कर लेता है।^१

डॉ. शैडर ने कापिञ्जल संहिता, पाद्म संहिता, विष्णु संहिता, हयशीर्ष संहिता तथा अग्निपुराण में प्रस्तुत संहिताओं की सूची का संग्रह करके पाञ्चरात्र संहिताओं की गणना करने का प्रयास किया है। इस विपुल पाञ्चरात्र शास्त्र के अन्तर्गत लगभग एक सौ आठ संहिताएं मानी गई हैं। इसी प्रकार से विष्णु-तन्त्र में एक सौ चौवन कपिञ्जल संहिता में एक सौ पुरुषोत्तम संहिता में एक सौ छः, भारद्वाज संहिता में एक सौ तीन, मार्कण्डेय संहिता में इक्यानबे, और विश्वसंहिता में इक्यानबे संहिताओं की सूची लगभग प्राप्त होती है। शैडर महोदय ने दो सौ पन्द्रह संहिताओं की सूची 'इन्ट्रॉडक्शन टू द पाञ्चरात्र एण्ड द अहिर्बुध्न्य संहिता' में दी है।

'एतानि नामधेयानि' अष्टोत्तरशतानि च'। इनमें सात्वत, जयाख्य और पौष्कर रत्नत्रय कहे गए हैं। अहिर्बुध्न्य, जयाख्य और शाण्डिल्य संहिता, काश्मीर पाञ्चरात्र परम्परा के पोषक ग्रन्थ हैं। 'दि अर्ली वैष्णव पैथियान' में डॉ. विश्वम्भरशरण पाठक ने पाञ्चरात्र सिद्धान्तों को पाँच

प्रकार से विभाजित किया है- १. वैखानस, २. सात्वत, ३. एकान्तिन, ४. शिखी और ५. मूल पाञ्चरात्र।

पाञ्चरात्रः - पाँच दिनों में समाप्त होने वाला यज्ञ।

पञ्च- $\sqrt{\text{डु}}$ पचष पाके ॥ वादि; पाञ्च विस्तार वचने चुरादि, पाञ्च व्यक्ति वरणे वादि ॥ (परिणाम, विस्तार और व्यक्ति वरणे अर्थ में $\sqrt{\text{पच्}}$ धातु का प्रयोग हुआ है। अर्थ है - परिणाम स्वरूप विस्तृत या व्यक्तरूप पञ्चभूत। बृहतः परिसामानि षष्ठान् पञ्चाधिनिर्मिता।

निष्कर्षतः पाञ्चरात्र संहिताओं के अनेकानेक साक्ष्य वैदिक अनुशासन का पालन करते, वेद वचनों को आप्त वचन मानते हुए दृष्टव्य हैं। वैदिक वाङ्मय में पाञ्चरात्र परम्परा के स्रोतों को देखने के लिए विशिष्ट बिन्दुओं पर विस्तार क्रमशः अध्यायों में किया गया है।

वैष्णव आगम में पौष्कर संहिता, यज्ञवेदियों एवं मण्डल विधान को ही मुख्य रूप से प्रस्तुत करती है, जिसका वैदिक आधार खोजा जा सकता है।

इसी भाँति भक्ति-उपासना, देवायतन तथा आचार परम्परा आदि के वैदिक आधार भी विवेच्य हैं, क्योंकि इन सबमें वैदिक मन्त्रों का ही प्रयोग निर्धारित है। वैदिक दिनचर्या को वैष्णागम में पञ्चकार्य-अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योग के रूप में स्वीकार किया गया है। इससे क्रियापाद, चर्यापाद, ज्ञानपाद और योगपाद संबद्ध है। ये पाद वैष्णव आगम की संहिताओं के स्वरूप और जीवन पद्धति के आधार हैं।

वैखानस और चित्रशिखण्डिन वैष्णव आगम के महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं। इनमें से वैखानस से सम्बन्धित बहुत कुछ सामग्री उपलब्ध है, परन्तु चित्रशिखण्डिन पर भी कार्य नहीं हुआ है। उनके वैदिक तथा भारोपीय संदर्भों को भी देखा जाना आवश्यक प्रतीत होता है। चित्र-शिखण्डिन संहिता के नाम से वैष्णव आगम में स्वतन्त्र संहिता भी प्राप्त होती है।

विषयानुक्रमणिका

१.	प्राक्कथन	iii-iv
२.	पुरोवाक्	v-xxviii
३.	प्रथम अध्याय वैष्णव आगम के स्रोत - वैदिक वाङ्मय	१-२२
४.	द्वितीय अध्याय वैष्णव आगमों के स्रोत एवं सिद्धान्तों के वैदिक मूल	२३-६६
५.	तृतीय अध्याय वैष्णव आगम में आचार विधि एवं मन्त्र-वर्ण विचार	६७-९३
६.	चतुर्थ अध्याय वैदिक देवता तत्त्व का वैष्णव आगम में विकास	९४-१२८
७.	पञ्चम अध्याय वैष्णव आगम के आचार्य एवं वैदिक ऋषि	१२९-१६१
८.	षष्ठ अध्याय वैष्णव संहिताओं में वैदिक मन्त्रों का विनियोग	१६२-२१०
९.	उपसंहार	२११-२१६
१०.	परिशिष्ट	२१७-२३९
१०.	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	२४१-२४९

प्रथम अध्याय

वैष्णव आगम के स्रोत - वैदिक वाङ्मय

वेद ज्ञान के बोधक

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते ।
एवं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥

विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः

वेद का वेदत्व इसी में है कि वह प्रत्यक्ष अनुमान के द्वारा दुर्बोध तथा अज्ञेय उपाय का ज्ञान स्वयं कराता है। ग्राह्य, अग्राह्य का निणर्य वेद करता है। वैदिक परम्परा के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वैदिक ऋषि मन्त्रों के कर्ता, रचनाकार नहीं बल्कि मन्त्र दृष्टा थे। वैदिक ऋषि के अंतःकरण में वाक् तत्त्व प्रवेश करके मन्त्रानुभूति को जाग्रत करता था। वाक् तत्त्व की ऋग्वेद में स्तुति इस तथ्य की प्रतीति कराती है। यही कारण है कि श्रीमद्भगवद्गीता में 'वेदैश्च सर्वैरहमेववेद्यः' कहा गया है।^१

आचार्य सायण भी कहते हैं—ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद् वेदों के अन्तर्भूत होते हुए भी मूल वेदों से पृथक् माने गए हैं, अतः मन्त्रात्मक वेद को ब्राह्मणों से प्रधान माना है।

वेद का अर्थ जानना हैं। वेद ज्ञान के अक्षय कोश हैं। ऋग्वेद भाष्यभूमिका में 'विदन्ति जानन्ति विद्यते भवन्ति विन्दन्ति' अथवा 'विन्दन्ते लभन्ते विन्दन्ति विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सत्यविद्यां यैर्येषु वा' तथा 'ऋच्यते

स्तूयते अनय सा ऋक्' इसीलिए निरुक्तकार ऋक् को स्तुतिपरक मन्त्र मानते हुए 'ऋग्भिः संशान्ति' अर्थात् जिस से स्तुति की जाती है। (जैमनीय सूत्र- तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था) पाद-व्यवस्था युक्त अर्थपरक रचना ऋक् कही गई है।^१ नियताक्षरपादावसाना ऋक्, मानते हुए उव्वट शुक्लयजुर्वेद संहिता की टीका में उल्लेख करते हैं।^२ मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् और यह उक्ति आपस्तम्ब परिभाषा में कही गई है।^३

कालान्तर में वेद शब्द का व्यवहार केवल संहिता भाग के लिये किया जाने लगा। उपासनात्मक एवं व्याख्यात्मक ब्राह्मण भाग एवं ज्ञानात्मक उपनिषद् पृथक् रूप से व्यवहृत होने लगे।

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्।

तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्।

वैदिक वाणी नित्य परावाणी है। ऋग्वेद में वाचा, वैदिक ऋचाओं को विरूपा नित्या माना गया है। वेद दिव्य वाणी है जो कम्पन करती हुई असीम शब्द-गुण सहित मानवीय चेतना को स्पन्दित करती हुई अपौरुषेय ज्ञान की अनुभूति कराती है। अतः वेद वाणी दिव्य-ज्योति, दिव्य-शक्ति और दिव्य-कृपा स्वरूप सृष्टि रचियता की स्तुति परक ऋचाएं हैं जो आभ्यन्तरिक स्वरो की अभिव्यक्ति तो देती ही हैं, साथ ही व्यञ्जना परक प्रक्रिया-ज्ञान की सार्थक सृष्टि करती हुई प्रतीकात्मक बिम्ब भी प्रस्तुत करती हैं। इसे नित्या अतीन्द्रिय और सूक्ष्मा वाक् कहा गया है सूक्ष्मा वाक् शाश्वत शब्दब्रह्म है, इसी कारण वेद वचन आप्तवाणी, सूक्ष्म वाक्, दैवी वाक्, सिद्धवाणी और दिव्य ध्वनि के प्रकाशक हैं।

साक्षात् कृतधर्मा ऋषियों द्वारा अनुभूत प्रातिभ चक्षु से दृष्टमान अपौरुषेय ज्ञान राशि ही वेद है। वेद तत्त्वतः दिव्य ध्वनि से परिपूर्ण है। वेद

१ जैमनीयसूत्र २.१.३५

२ शुक्लयजुर्वेद संहिता १.१.

३ आपस्तम्ब परिभाषा १.३३

ही आत्म ज्ञान के एक मात्र स्रोत है। इसीलिए ऋषियों के अन्तःकरण में स्वाभाविक रूप से यह ज्ञान प्रकाशित हुआ है। सूक्ष्मा वाक् को ही अन्तर्दर्शन कहा जाता है। इस अनुभूतिजन्य प्रस्फुटित ज्ञानराशि को ऋषियों ने प्राप्त किया है।

‘यां सूक्ष्मां नित्यामतीन्द्रियां वाचमृषयः साक्षात्-कृतधर्माणो

मन्त्रदशः

पश्यन्ति, ताम्साक्षात्-कृतधर्मेभ्यः परेभ्यः प्रतिवेदयिष्यमाणाः
विल्मं समामनन्ति स्वप्ने वृत्तमेव दृष्टश्रुतानुभूतमाचिख्यासन्ते’ ।

आप्तवाक्य वेद वचनों को कहा गया है एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति-अर्थात् एक ही शब्द के पूर्ण ज्ञान और सम्यक् प्रयोग से-ऐहलौकिक और पारलौकिक-दोनों फलों की प्राप्ति हो सकती है। यही वैदिक वाणी का रहस्य है। कारण कि आप्त वाणी के दो तात्पर्य हैं, एक तो तत्त्व का ज्ञापन और तत्त्व का उपाय। निश्चय ही आप्त का प्रतिपाद्य ज्ञान अलौकिक है, उसी प्रकार उसकी अभिव्यक्ति भी अलौकिक है। इस से अतिप्राकृत अर्थात् लोकोत्तर चेतना के प्रत्यक्षीकरण हेतु मानवीय चेतना की अन्तरावृत्ति को मन्त्राभिव्यक्ति से स्वतः स्फूर्त स्पन्दन देकर अपौरुषेयत्व सिद्ध करना भी आप्त वाणी का वैशिष्ट्य है। तभी ऋषिगण मन्त्रसृष्टा नहीं वरन् मन्त्र दृष्टामात्र हैं, और इसीलिए वेदवाणी का सतत् संरक्षण श्रुति परम्परा से गुरुकुलों में जिस तरह होता था यज्ञ विधान में भी उस वेदवाणी का उसी रूप से व्यवहारिक प्रयोग होता था। इस कारण वेद वाणी का कर्म-काण्ड परक संरक्षण, यज्ञ परम्परा में सन्निहित था। वेदवाणी को परमेश्वर का अविनाशी रूप, यज्ञ का प्रथम निर्माण करने वाली वेदों की माता अमृत की नाभि कहा गया है।

वागक्षरं प्रथमजा ऋतस्य^१ ।

वेदानां माताऽ मृतस्य नाभिः ॥

‘ब्रह्म-सूत्र में शास्त्रयोनित्वात् सूत्र में भगवान् वादरायण ने समस्त ज्ञान के भंडार ऋग्वेदादि शास्त्रों के मूल स्वयं परात्मा को कहा है^१; अतः परमात्मा के द्वारा कहे गये वचन ही वेद वचन है। आदि शङ्कराचार्य ने इस सूत्र को व्याख्यायित करते हुए कहा है कि सर्व विद्याओं के आगह, सर्व विद्याओं के प्रकाशक ऋग्वेदादि शास्त्रों का मूल कारण ब्रह्म है। अतः वेदवाणी ब्रह्म वाणी है।^२

ऋषयोः मन्त्र दृष्टारः

ऋषि सूक्त का वैयक्तिकरूप से स्वयं निर्माता नहीं था वह तो दृष्टा था। शाश्वत सत्य और अपौरुषेय ज्ञान का। वेद अपौरुषेय हैं नित्य शब्द के राशिभूत वेद स्वतः आर्विभूत होने वाले नित्य पदार्थ हैं। जैमिनि तथा शबरस्वामी के अनुसार वेद की नित्यता का प्रमाण स्वयं वेद में ही है :-

तस्मै नूनमभिद्ववे वाचा विरूप नित्यया ।

वृष्णे चोदस्व सुष्टितुम् ॥^३

वस्तुतः अपौरुषेयत्व का मूल आशय चेतना का स्वोत्तरण है। आप्त वाणी ईश्वर की ही हो सकती है कारण कि सर्वत्र ही एक अपौरुषेय, लोकोत्तर शाश्वततत्त्व की ही अभिव्यक्ति है। और वैदिक ऋषि परम्परा का लक्ष्य चेतना को एक लोकोत्तर भूमि तक ले जाने का था। इस अपौरुषेयत्व का मूल, वेद के ही वाक् तत्त्व में व्यक्त है। ब्रह्म अर्थात् चेतना की क्रमिक व्याप्ति एवं वाक् अर्थात् उसका बहिर्मुख विकास दोनों की अभिन्नता वैदिक दर्शन का एक मूल आधार बिन्दु है। और मन्त्र द्रष्टा, ऋषि इसका तुरीय अवस्था में अनुभव करके परावाक् तक पहुँचते हैं। आप्त वाणी में वह अपौरुषेय वेद राशि भारतीय संस्कृति की अपूर्व धरोहर है।

पञ्च महाभूत की महिमा

जैसे अग्नि की महत्ता वेद का आन्तरिक भाव सर्वभौम सत्ता का परिचायक है। इस परिधि के कारण वेद का स्वरूप आध्यात्मिक और

निर्वैर्यक्तिक है। स्पष्टतः ऋग्वेद की प्रथा ऋचा अग्निमीळे पुरोहितम् है;^१ जिसमें वैदिक अग्नि के दो विशेष गुण हैं। प्रथम सूक्ष्म गुण-ज्ञान और देदीप्यमान शक्ति और दूसरा स्थूल गुण है प्रकाश एवं आग्नेय शक्ति। यह अग्नि तत्त्वतः विश्वव्यापी देवाधिदेव की शक्ति एवं समस्त क्रिया व्यापारों की चैत्य-शक्ति भी है जो आन्तरिक दृष्टि से ज्ञानानुप्राणित सचेतन शक्ति या तपसस्वरूपा सङ्कल्प की ज्योति है। वैदिक ऋषि की अग्नि, अन्तर्याग में जाग्रत हो कर सर्जकशक्ति, जातवेदस् अग्नि सब लोको को रचनेवाली अग्नि होकर सृष्टिगत व्यापारभूत अग्नि मनुष्य का दिव्य सङ्कल्प या चेतन-शक्ति बनकर मनुष्य और ईश्वर के मध्य मध्यस्थता स्थापित करती है। यज्ञस्वरूपा अग्नि जहाँ पृथ्वी की शक्ति है वही वह द्युलोको में 'आरोधनं दिवः' है यही वैदिक सर्वभौम दृष्टि जो प्रतीकात्मक स्वरूपों में वैदिक ऋचाओं में अनुस्यूत होती है; जिसमें वेद प्रकृति वन्दना के साक्षी, पञ्च महाभूत तत्त्वों के संवर्धक और विस्तारक है। वेदों के प्रकृति के प्राकृतिक आदान-प्रदान में प्रवृत्त होने का प्रमुख ध्येय यही है, कि मनुष्य पञ्च-तत्त्वों से परिव्याप्त इस प्रकृति की महत्ता को समझें उसका अभिनन्दन करें और विश्वात्मा शक्ति की अभिवन्दना करें।

प्रकृति से तादात्म्य करने के लिए ऋग्वेद में अग्निसूक्त, वरुणसूक्त, आदित्यसूक्त, उषासूक्त आदि अनेक सूक्तों के माध्यम से प्रकृति की मनुष्य के साथ अभिन्नता, सम्बद्धता और प्रकृति के उपर निर्भर रहने की स्पष्ट बाध्यता को रेखाङ्कित किया गया है। प्रकृति के साथ एकरस होने का वैदिक आह्वान समस्त वैदिक वाङ्मय का दिव्य संदेश है। तत्त्वतः परमात्मा प्रकृति के पञ्च तत्त्वाधिदेवता और यज्ञ-देवता के द्वारा परमात्मा और प्रकृति से मनुष्य की आन्तरिक और बाह्य निकटता का आधार, वैदिक ऋषियों ने मन्त्रों, ऋचाओं में अनुभूत किया और उसकी अभिव्यक्ति की। मनुष्य की प्रथम स्वीकृति, प्रकृति के प्रति कृतज्ञता, की अभीव्यक्ति आज भी अपेक्षणीय है। वेदों में बहुदेव वाद की प्रतिष्ठा भी प्रकृति वन्दना के कारण पञ्च-तत्त्वों में देवत्व की प्रतिष्ठा के कारण ही रही होगी।

वैदिक दिनचर्या

वैदिक परम्परा के आध्यात्मिक और व्यावहारिक पक्षों पर विचार करते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक ऋषि संसार को स्वीकार भी करते हैं, और इसकी अस्वीकृति भी साथ है, इसकी नश्वरता की ओर भी इङ्गित करते चलते हैं। इसके लिए वे वैदिक दिनचर्या को प्रमुख आधार मानते हैं। उनकी वैदिक दिनचर्या में नित्य नैमित्तिक कर्मकाण्ड हैं। धार्मिक आचार-विचार हैं, और सामान्य जीवन के क्रिया कलाप भी हैं। परन्तु सम्पूर्ण वैदिक दिनचर्या धर्म परक है। ब्रह्मचर्य जीवन की दिनचर्या वैदिक ऋचाओं के उद्घोष से प्रारम्भ होती है, और यज्ञीय विधि विधानों में समाहित होकर गुरु सेवा और तपसाधना से परिपूर्ण होती है। गृहस्थ की दिनचर्या में भी यज्ञ, दान, तप, स्वाध्याय, और धार्मिक क्रिया कलापों का समावेश होता है। वानप्रस्थी एवं संन्यासी की दिनचर्या पूर्णतया वैदिक, आध्यात्मिक तत्त्व दर्शन, और स्वाध्याय एवं साधना के कठिनतम सोपानों में निहित होती है; इसलिए वैदिक दिनचर्या का आधार धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष के आध्यात्मिक, वैचारिक एवं व्यवहारिक परिवेश में निर्धारित करते हुए वैदिक ऋषि व्यवस्था देते हैं। दिनचर्या ही सबसे बड़ा साधन है यम, नियम, साधना की निरन्तरता बनाए रखने का।

पुरुषार्थ चतुष्टय

भारतीय चिन्तन परम्परा का मूलभूत विचार पुरुषार्थ सिद्धान्त है। सभी ज्ञान सरणियों में पुरुषार्थ को विशिष्ट महत्व दिया गया है, वैदिक परम्परा के प्रारम्भिक सूत्र धर्म, अर्थ, काम केवल तीन पदों का विवेचन करते प्रतीत होते हैं कारण कि मोक्ष पद ऋग्वेद में नहीं आता है। यद्यपि प्रत्ययात्मक दृष्टि से अमृतत्व एवं मुक्ति के अर्थ में पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा वैदिक वाङ्मय में मिलती है। बाद में ऐतिहासिक रूप से सर्व प्रथम साँख्य दर्शन में पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा मिलती है। यथा -

स्वां स्वां प्रतिपद्यन्ते परस्पराकूतहेतुकां वृत्तिम्।

पुरुषार्थ एवं हेतुर्न केनचित् कार्यते करणम् ॥ १

अतः भारतीय मूल्यों की सिद्धान्त परिधि पुरुषार्थ चतुष्टय में निहित है जिसमें कर्म की प्रधानता सर्वोपरि है। प्रारब्ध, सञ्चित, और क्रियमाण, कर्म शृङ्खला ही मनुष्य के जीवन में पुरुषार्थ का सोपान होती है।

यद्यपि चारों पुरुषार्थ एक ही लक्ष्य को निर्धारित करते हैं; तथापि मानव-जीवन में पुरुषार्थ के अवयव धर्म अर्थ काम मोक्ष पर बल विभिन्न कारणों के कारण से है। इस रूप में पुरुषार्थों द्वारा आपस में सम्बन्ध अन्तः क्रियात्मक निरूपित है। वस्तुतः पुरुषार्थ को प्रायः क्रिया रूप कहा गया। इसलिए क्रिया के कारण अभिवृत्ति नहीं होती है; बल्कि क्रिया के पहले अभिवृत्ति होती है। अतएव पुरुषार्थ को प्रयोजन भी कहा गया है और प्रयोजन का तात्पर्य इष्ट विषय भी है। तात्पर्य यह कि विषयों के लिए इच्छा तथा इच्छा की अभिवृत्ति तथा अभिवृत्ति के अनुसार क्रिया होती है। अब यह क्रिया अनियमित; यादृच्छिक न होकर भारतीय मूल्यों के अनुसार वाञ्छनीय भी होनी चाहिए।

पुरुषार्थ की अवधारणा में-पुरुषणांअर्थः पुरुषार्थः अथवा पुरुषैः अर्थ्यते इति पुरुषार्थः। अर्थात् जो पुरुष द्वारा चाहा जाये या मनुष्य जिस फल की इच्छा करे-उसका नाम पुरुषार्थ है। वस्तुतः पुरुषार्थ को प्रायः क्रिया रूप (एक्टिविटी) कहा गया। पुरुषार्थ मूल्यपरक प्रयोजन हैं-

धर्मं चार्थं च कामे च धर्म एवोत्तरोभवेत्।

अस्मिन् लोके परे चैव धर्मात्मा सुखमेधते ॥ २

धर्म, अर्थ, काम अर्थात् त्रिवर्ग में धर्म उच्चतर होता है; वह अर्थ और काम की तरह कभी व्यर्थ नहीं जाता; धर्म फल दिए बिना कभी क्षीण नहीं होता धर्म ही इस लोक परलोक में भी पुण्य प्रदाता है।

१ सांख्यकारिका ३१

२ महाभारत-शान्तिपर्व ९१; ५२

जहाँ ऋत की मान्यता से वैश्विक नियामकता एवं परिपालन को वैदिक संस्कृति महत्त्व पूर्ण है; वहीं याज्ञिक कर्मकाण्ड प्रक्रिया के विविध विधि विधान को धर्म का महनीय पक्ष निरूपित करते हुए जनजीवन में धर्म को प्रतिष्ठापित करने का श्रेय भी वेद-परम्परा को है। तभी धर्म, वर्णधर्म, कुलधर्म, जातिधर्म, आपद्धर्म, युगधर्म, आश्रमधर्म, देश-स्थान धर्म, अनेकानेक रूपों धर्म की अवधारणा को वृहद् विस्तार मिला।

ऋग्वेद में-रयिं दवो दुहितरो विभातौः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः अर्थात् हे प्रकाशवान् सूर्य की पृथ्वी! तुम हमको सन्तान और धन से परिपूर्ण करो हम अपने सुख के निमित्त तुमसे निवेदन करते हैं जिससे हम सन्तान से युक्त ऐश्वर्य के अधिपति हो सकें।^१ प्रेय एवं श्रेय, मूल्यों के सन्दर्भ में भी पुरुषार्थ पर विचार किया गया है। प्रायः अर्थ और काम को प्रेय के अन्तर्गत और धर्म को श्रेय के अन्तर्गत मान्य किया गया है।

मोक्ष को निश्रेयस् भी कहा गया; कारण कि मोक्ष पुरुषार्थ में प्रेय और श्रेय समाहित हैं अतः इसे निश्रेयस के साथ परम पुरुषार्थ भी कहा गया है।^२ वेदान्तसार में मोक्ष की परिभाषा में- इह धर्म खलु धर्मार्थकाम-मोक्षाख्येषु चतुर्विधपुरुषार्थेषु मोक्ष एव परं सर्वतन्त्रेति।^३ अतः सभी ने मोक्ष को परमपुरुषार्थ कहा है। धर्म जीवन को आधारभूत दृष्टि प्रदान काता है। महाभारत में युधिष्ठिर कहते हैं-कि वैराग्य से ही निर्वाण प्राप्त होता है; उसे पाकर मनुष्य किसी अनात्म पदार्थ का चिन्तन नहीं करता; क्योंकि संसार में वैराग्य होने पर आनन्दस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। अतः जीवन और अमरत्व की अपेक्षा धर्म को श्रेष्ठ समझता हूँ।^४ इस सन्दर्भ में अर्थ पुरुषार्थ की महत्ता भी विवेचनीय है; क्योंकि अर्थ ही समस्त कर्मों के पालन

१ ऋग्वेद ४.५१.१०

२ एम, हिरयत्रा-क्वैस्ट आफ्टर परफैक्शन कैवल्य पृ.८३-८३ पब्लिकेशन-मैसूर

३ वेदान्त सार-पृ. ५

४ महाभारत शान्तिपर्व-१९९; १२४

में सहायक है, अर्थ के बिना धर्म और काम भी सिद्ध नहीं होते; ऐसा श्रुति का कथन है।^१ अर्थ साधनमूलक है; ऋग्वेद में कहा गया है-इन्द्रं श्रेष्ठानि द्रवणानि धेहि चितिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।^२ वृहदारण्यक उपनिषद् में राजा जनक जब याज्ञवल्क्य से पूछते हैं-कि उसे सम्पत्ति पशु-धन आदि चाहिए या शास्त्रार्थ में विजय। तब याज्ञवल्क्य उनसे दोनों ही मांगते हैं -

तं होवाच याज्ञवल्क्य; किमर्थमचारीः पशूनिच्छन्; अण्वन्तानिति।

उभयमेव समाद्विति होवाच।

बाद में तो आचार्य कौटिल्य का कथन अर्थ की सार्थक महत्ता दर्शाता है- 'यस्यार्थस्तस्य मित्राणि यस्यार्थस्तस्य बान्धवाः।' पुरुषार्थ योजना में अर्थ साधक मूलक है; अर्थ के बिना धर्म और काम की उपलब्धि दुष्कर है।^३ यह भी कहा गया है

-अर्थ इत्येव सर्वेषां कर्मणामव्यतिक्रमः।

न होतेऽर्थेन वर्तन्ते धर्मकामविनिश्चयः॥

यस्यार्थः स पुमाल्लोक यस्यार्थः स पण्डिताः॥^४

धन के इस व्यावहारिक स्वरूप पर विचार करें तो सम्पत्ति मनुष्य के जागतिक सम्बन्धों के लिए अनिवार्य पुरुषार्थ है। सम्पत्ति है तो उसके मित्र हैं; उसके भाई बन्धु हैं; और वही श्रेष्ठ पण्डित के रूप में माना जाता है। इसी 'परिप्रेक्ष्य में कौटिल्य कहते हैं-

‘धर्मस्य मूलमर्थ अर्थस्य मूलं राज्यम् राज्यमूला मिन्द्रियजयः’।

१ महाभारत शान्तिपर्व- १६७.१२.

२ ऋग्वेद २.२१.६.

३ महाभारत शान्तिपर्व १६७.१२

४ कौटिल्य अर्थशास्त्र प्रकरण-१ अध्याय ३ -वार्ता दण्डनीति स्थापना

काम पुरुषार्थ-काम सृष्टि का मूल हेतु है ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि प्रक्रिया के सम्बन्ध में जिज्ञासा करते हुए कहा गया है 'कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।'^१

अर्थात् आरम्भ में काम ने सृष्टि के कारक को आविर्भूत किया जो मनस् से उत्पन्न बीज था ।

इसी क्रम में प्रश्नोपनिषद् में काम का प्रजा का विधाता; प्रजापति तथा प्रजा की उत्पत्ति के लिए मिथुन की सृष्टि करनेवाला कहा गया है ।

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः ।

स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते ॥^२

कामो जज्ञे प्रथमो कहा गया है । तैत्तरीय उपनिषद् में कहा गया - 'सोअकामयत् बहुस्यां प्रजायेय इति ।'^३ इसीलिये स्पष्टोक्ति है - 'क्रत्वर्थः पुरुषार्थयो जिज्ञासा ।'^४

कर्म से मनुष्य को सुख प्राप्त होता है; जिसे करने की इच्छा स्वयं होती है वह पुरुषार्थ है ।

कर्मकारिश्चेन्द्रियाणां व्यूहपुरुषार्थ तन्त्रः ।^५

अदृष्ट फलरूप से इन्द्रियों की व्यूह रचना पुरुषार्थ के अधीन है ।

पातञ्जलयोगसूत्र में 'पुरुषार्थ शून्यानां प्रति प्रसवःकैवल्य स्वरूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति'^६ के कैवल्यपाद में पुरुषार्थ तथा कैवल्य के सम्बन्ध में कहा गया है-पुरुषार्थ का शून्य हुए गुणों का अपने कारण में लय

१ ऋग्वेद १०.१२९.४

२ प्रश्नोपनिषद् १.४ अथर्ववेद में ९.२.१९

३ तैत्तरीय उपनिषद् २.३

४ मीमांसा-सूत्र ४.१.१-२

५ न्यायसूत्र पुरुषार्थपद अ. ३

६ पातञ्जलयोगसूत्र ४.३४

होना अथवा चित्त शक्ति का अपने रूप में अवस्थित हो जाना ही कैवल्य हैं अतः मोक्ष पुरुषार्थ की अनुभूति ही समाधि योग में परम तत्त्व प्राप्ति की अभीप्सा कही गई है। अतः मनुष्य धर्म दृष्टि से सतत जागरूक रह कर अर्थ को साधन मात्र मानकर काम को नियन्त्रित रखकर जीवन में परमतत्त्व के सन्धान में अन्ततः परम पुरुषार्थ मोक्ष की अभीप्सा में अर्थ और काम से स्वतः परे चला जाता है। पुरुषार्थ चतुष्टय जीव और परमात्मा के लिये सेतु का काम करते हैं।

वर्ण व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र वर्णों के माध्यम से समाज संरचना में कर्म-क्षेत्र का विभाजन महज ही हो जाता था। सभी वर्ण कर्म के आधार पर अपना-अपना कार्य करते थे, अतः वैदिक-आधारों के पुरुषार्थ चतुष्टय, आश्रम व्यवस्था। वर्ण व्यवस्था और इन सबके सतत परिवर्धन एवं समायोजन हेतु सर्वत्र व्याप्त यज्ञ क्रिया कलाप कर्मकाण्डीय परम्परा का विधि-सम्मत स्वरूप विद्यमान था।

आश्रम व्यवस्था

वैदिक काल में आश्रम व्यवस्था की प्रतिष्ठा सर्वमान्य थी मनुष्य की पूर्ण आयु को चार व्यवस्था के अन्तर्गत समायोजित किया गया था। पच्चीस वर्ष तक गुरुकुलों में दीक्षित अन्तेवासी, ब्रह्मचर्य अवस्था का परिपालन करता था। इसके बाद प्रारम्भ होता था गृहस्थाश्रम जिसमें वह परिवार के साथ यज्ञादि विधा में का निर्वाह करता हुआ धार्मिक, आर्थिक दृष्टि से कामनाओं की सुख, समृद्धि का उपयोग करता था। पचास वर्ष के पश्चात् वह वानप्रस्थी अवस्था का पालन करता हुआ वन संस्कृति का परिपालन करने में अपनी आध्यात्मिक ऊर्जा के संवर्धन में, यज्ञीय परम्पराओं के साथ अधिकतर वन में गृहस्थ जीवन के दायित्वों से परे होकर धार्मिक कर्मों के साथ परमात्मा की प्राप्ति में अध्यात्म परक वैदिक दर्शन दृष्टि को जीवन शैली में उतारता था, और इस अभ्यास की सतत साधना तपस्यचर्चा के उपरान्त वह पचहत्तर वर्ष की अवस्था तक मोहादि

स्वाभाविक विकारों को कम करके वह संन्यास की पीठिका का अधिकारी स्वतः हो जाता था तब वह सहज ही संन्यासश्रम का अनुगामी होता था।

वेद महत्ता

वेद ज्ञान परम्परा केवल लोक सिद्धि के लिए ही आवश्यक नहीं है इस ज्ञान परम्परा का सिद्धान्त परम तत्त्व है। वैदिक वाङ्मय ही इतिहास, पुराण, स्मृति, दर्शन, साहित्य, आगम, भूगोल, विज्ञान, इत्यदि समस्त लौकिक और पारलौकिक विद्याओं का आधार है। वेद मानवीय विचार दर्शन को लिपिबद्ध करने वाले गौरवमय ग्रंथ है जो सर्वाधिक प्राचीन है। नित्य, सर्वज्ञ वक्ता होने के कारण ही वेद का प्रमाण्य है वेद की महत्ता है। वैदिक मन्त्रों का अर्थ नितान्त गूढ़ है इसे समझने के लिये आर्ष दृष्टि की आवश्यकता है। मन्त्रों के शब्दों में व्याकरणिक सरलता होने पर भी अविधेय अर्थ का पता करना दुस्कर कार्य है। मन्त्रों के रहस्य वाद सदैव विद्वानों के चिन्तन का विषय रहे हैं। ऋग्वेद का यह मन्त्र दृष्टव्य है।

चत्वारि श्रङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आ विवेश ॥^१

अर्थात् चार इसके श्रृंग हैं। तीन पैर हैं, दो सिर हैं और सात हाथ हैं। तीन प्रकार से बाँधा गया यह वृषभ जोर से चिल्ला रहा है इन महादेव ने मरणशील वस्तुओं में प्रवेश किया है। प्रश्न है कि विचित्र वेशधारी महादेव हैं कौन? यास्क कहते हैं कि महादेव यज्ञ है चारो वेद इनके चार श्रृंग हैं तीनों पैर तीन सवन हैं प्रातः मध्याह्न, एवं सायंकाल; दो सिर हैं प्रायणीय एवं उदयनीय नामक हवन सातों हाथ हैं सातों छन्द, इस तरह यज्ञ, मन्त्र, बाह्यण, एवं कल्प के द्वारा त्रिधा बद्ध है इस प्रकार यज्ञ रूपी महादेव ने यजन के लिए मनुष्यों में प्रवेश किया। दूसरे मत में महादेव सूर्य हैं श्रृंग दिशाएं हैं तीन पैर वेद हैं दो सिर दिन-रात है सात हाथ सात प्रकार की किरणें हैं सूर्य पृथ्वी, आकाश से बद्ध है। अथवा ग्रीष्म, वर्षा, शीत तीन

ऋतुओं का उत्पादक है। अतः यह त्रिधा बद्ध मन्त्र में कहा गया है। महर्षि पतञ्जलि ने इस मन्त्र की शब्द परक व्याख्या की है। सायण-भाष्य में इनके अतिरिक्त मन्त्रों का वर्णन किया है। इस तरह से यास्क ने छः मतों की चर्चा की है। जिनमें वैयाकरण परिव्राजक, ऐतिहासिक तथा याज्ञिक प्रमुख हैं। इस तरह से वैदिक मन्त्रों की महत्ता अनेकशः स्वतः सिद्ध है। वेदों में समस्त विषयों की चर्चा की गई है। जो कुछ वेदों में है, इसके अतिरिक्त अन्यत्र की, अन्य विषय सामग्री की कल्पना ही सम्भव नहीं है; अतः वेद रहस्यात्मक भी हैं, व्याख्यात्मक भी हैं, आप्तवाक्यता भी हैं। वेदों में वैदिक ऋषि, देवता, छन्द का वैशिष्ट्य अनुपमेय है। इस प्रकार वेद-मन्त्रों की दिव्यता, उच्चता, अन्तर्श्चेतना वेद के प्रामाण्य पर स्वतः सिद्ध होती है। वैदिक मन्त्रों के शब्दों का आध्यात्मिक अर्थ भी है। जैसे गौ, प्रकाश का प्रतीक है। अश्व-शक्ति का प्रतीक है। अग्नि प्राण का प्रतीक है, इत्यादि, श्री अरविन्द की दृष्टि में वेद सिद्धों की वाणी है। अतः वेद की महत्ता सर्वमान्य नित्य है। इन सभी दृष्टियों से वेद के अविध्य अर्थ का अनुभव कठिन है।

आचार्य मनु भी वेदों को सर्वपरि मान्यता देते हुए कहते हैं कि धर्म के लक्षणों को जानने की लिए सर्वप्रथम वेदों की साक्षी ली जाती है। स्मृति, सदाचार, स्वात्म-प्रिय तत्त्वों का ज्ञान वेद ही कराते हैं।

इसीलिए धर्मतत्त्व की जिज्ञासा रखने वालों के लिए आचार्य मनुवेद को ही प्रमाण मानते हैं।

‘धर्मजिज्ञासामानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः’। वेदों की अवमानना को ‘नास्तिको वेदनिन्दकः’ कहते हैं वेदज्ञान क्रम परम्परा के समर्थन में आचार्य मनु कहते हैं कि ब्रह्मचारी चाहे चारों वेद पढ़े, तीन वेद अथवा देर वेद पढ़े या एक वेद का ही अध्ययन स्वाध्याय मनन करे परन्तु यथाक्रम इस अध्ययन क्रम को पूरा करके ही वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें।

सृष्टि-प्रक्रिया

वस्तुतः सृष्टि विकास क्रम के रहस्य सृष्टि स्थिति के कारण भूत तत्त्व जड़ चेतन, पर-तत्त्व उसकी व्यापकता, 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' के आधार भूत रहस्यों के संज्ञान हेतु वैदिक-वाङ्मय ही प्रमुख स्रोत हैं। कारण कि वैदिक ऋषि के ज्ञान का स्रोत अन्वेषण नहीं वरन् दिव्य प्रेरणा-दिव्य दृष्टि और दिव्य अनुभूति है। सृष्टि उत्पत्ति क्यों और कैसे कितनी सनातन है यह सभी प्रश्न मानवीय जिज्ञासा के केन्द्र रहे हैं। नारदीय सूक्त में इसी आधार पर सृष्टि-विवेचन किया गया है।

वैदिक ऋषि विश्व को पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग इन तीन भागों में बाँटते हैं। एक ओर वैदिक दर्शन में जगत् को प्राकृतिक उद्भव का परिणाम माना गया, दूसरी ओर जगत् को यान्त्रिक प्रतिक्रिया का परिणाम भी ऋग्वेद में कहा गया, जिसमें सूर्य को सृष्टिप्रक्रिया में उत्पादन का प्रमुख माध्यम माना गया है। इसीलिए सूर्य को स्थावर-जङ्गम की आत्मा भी कहा गया।^१

हिरण्यगर्भ नाम से सूर्य की विश्व में सर्वोच्च शक्ति के रूप में प्रख्याति है। असत्, सत् सम्बन्धी-सूक्त भी जगत्-तत्त्व की व्याख्या करता है। इसी तरह प्रकृति में व्याप्त सृष्टि विषयक नियम को ऋत के नाम से स्वीकार किया गया है। नैतिक क्षेत्र में यही शब्द सत्य और उचित का व्यञ्जक है, तथा धार्मिक में यज्ञ अथवा संस्कार का पर्याय है। वैदिक वाङ्मय में जगत् को भवन के रूपक में उल्लिखित किया गया है, जिसके लिए मापन, क्रिया का उल्लेख ज्ञातव्य है, यथा इन्द्र ने छः प्रदेशों को मापा और पृथ्वी के विस्तृत भू भाग तथा स्वर्ग के उच्च शिखर का निर्माण किया।^२ विष्णु ने पार्थिव स्थानों के मापा और ऊँचा पर आवास को दृढ़ किया। मापने का यन्त्र सूर्य है, और सूर्य रूपी यन्त्र से वरुण मापने का कार्य करते हैं। एक

१ ऋग्वेद १०.१.२१ (वैदिक माइथालॉजी पृ. २२.१.११५)

२ ऋग्वेद हिरण्यगर्भ सूक्त ६.४७.३.४

ब्राह्मण ग्रन्थ में स्वर्ग और पृथ्वी को बहुधा स्तम्भों पर टिका बताया गया है और विश्व रूपी गृह का द्वार पूर्व दिशा रूपी तोरण माना गया है जिसमें से होकर प्रातः कालीन प्रकाश प्रवेश करता है। ऋग्वेद में पितृत्वात्मक धारणा भी जगत् के सम्बन्ध में है।

पर-तत्त्व

‘इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।

संमूढ, मस्यं। पाँसुरे स्वाहा’ ॥

विष्णु-सूक्त दृष्टा दीर्घतमस ऋषि पर-तत्त्व का विवेचन करते हुए कहते हैं-सर्व व्यापी परमात्मा विष्णु ने जगत् को धारण किया है और वे ही पहले भूमि, दूसरे अन्तरिक्ष और तीसरे द्युलोक में तीनों पदों को स्थापित करते हैं। इन विष्णु देव में समस्त विश्व व्याप्त है। हम उनके निमित्त हवि प्रदान करते हैं।

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजाँसि।

यो अस्कभयादुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥^१

जिन सर्वव्यापी परमात्मा विष्णु ने अपनी सामर्थ्य से इस पृथ्वी सहित अन्तरिक्ष द्युलोकादि का निर्माण किया है तथा जो तीनों लोकों में अपने पराक्रम से प्रशंसित हो कर उच्चतम स्थानों को शोभित करते हैं उन सर्वव्यापी परमात्मा के किन-किन गुणों का गान करें।

दिवो वा विष्णु उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात्।

उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्र यच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे ॥

हे विष्णु! आप अपने अनुग्रह से समस्त जगत् को सुखों से पूर्ण कीजिए। और भूमि से उत्पन्न पदार्थ और अन्तरिक्ष से प्राप्त द्रव्यों से सभी सुख निश्चय ही प्रदान करें। हे सर्वान्तरयामी प्रभु! दोनों हाथों से समस्त सुखों को प्रदान करने वाले विष्णु! हम आपको सुपूजित करते हैं। और

भयंकर सिंह के समान पर्वतों में विचरण करनेवाले सर्वव्यापी विष्णु। आप अतुलित पराक्रम के कारण आप स्तुति योग्य हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।^१

इसी तरह सर्वव्यापक विष्णुदेव के तीनों स्थानों में सम्पूर्ण प्राणी निवास करते हैं। आगे भी कहा गया है-

विष्णो रराटमसि विष्णोः शनप्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि
वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥

अर्थात् इस विश्व में विराट् विष्णु का प्रकाश निरन्तर फैल रहा है। विष्णु के द्वारा ही यह विश्व स्थिर है, तथा इनसे ही इस जगत् का विस्तार हुआ है, और कण कण में ये ही प्रभु व्याप्त हैं। जगत् की उत्पत्ति करनेवाले हे प्रभु! हम आपकी अर्चना करते हैं।

परमात्मा के सर्वज्ञ सर्वोपरि सर्वव्यापी स्वरूप में विष्णु की आराधना वैदिक ऋषि-परम्परा द्वारा की गई है। विष्णु के विविध रूप और विविध कर्म हैं, वे पुरातन हैं जगत्सृष्टा हैं वे ही पर-तत्त्व हैं वे ही महाविष्णु हैं। यही तथ्य नारायण सूक्त में आदित्य पुरुष नारायण की अभ्यर्थना में दृष्टिगोचर होते हैं, जिसके दृष्टा स्वयं नारायण ऋषि हैं।

पुरुष सूक्त में विराट् पुरुष परमात्मा का स्तवन अनुपम है जिसमें सृष्टि प्रक्रिया के समस्त तत्त्वों को समाहित करते हुए उसकी सर्वव्यापकता स्वतः सिद्ध है। और कहा गया है-

ततो विराड्जायत विराजो अधि पुरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चान्द्रूमिमथो पुरः ॥

उस आदि पुरुष से विराट् उत्पन्न हुआ, वे परम पुरुष ही विराट् के अधिपुरुष-अधिदेवता (हिरण्यगर्भ)-रूप से उत्पन्न होकर अत्यन्त

प्रकाशित हुए। पीछे उन्होंने भूमि (लोकादि) तथा शरीर (देव, मानव, तिर्यक् आदि) उत्पन्न किये। और -

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षुः सूर्यो अजायत ।

स्रोताद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥

उस परम पुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुए, नेत्रों से सूर्य प्रकट हुए, कानों से वायु और प्राण तथा मुख से अग्नि की उत्पत्ति हुई।

यही नहीं बल्कि -

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णोद्यौः समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः स्रोतात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥

तात्पर्य यह कि उन्ही परम पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ, मस्तक से स्वर्ग प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी, कानों से दिशाएं प्रकट हुईं। इस प्रकार समस्त लोक उस आदि पुरुष में ही कल्पित हुए। उस परमपुरुष के यज्ञ मय स्वरूप का वैशिष्ट्य भी पुरुषसूक्त में अद्वितीय है, इन सन्दर्भों से पर-तत्त्व की एकरूपता तथा स्वभावगत वह वैशिष्ट्य स्पष्ट होता है जो परवर्ती पुराणों और आगम परम्परा के पर-तत्त्व सम्बन्धी विवेचन को प्रभावित करता रहा है।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः ॥

देवताओं ने यज्ञ के द्वारा यज्ञस्वरूप परम-पुरुष का यजन (आराधन) किया। इस यज्ञ से सर्व प्रथम धर्म उत्पन्न हुए। उन धर्मों के आचरण से देवता महान् महिमावाले होकर उस स्वर्ग लोक का सेवन करते हैं, जहाँ प्राचीन साध्य-देवता निवास करते हैं। अतः हम सभी सर्वव्यापी जड़-चेतनात्मक रूप विराट्-पुरुष की करबद्ध स्तुति करते हैं।^१

निश्चय ही वेदों का विषय मूलतः पर-तत्त्व ही है, उसे ही 'एको विश्वस्य भुवनस्य राजा'^१ और 'एकं सद विप्रा बहुधा वदन्ति'^२ तथा 'यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति'^३ अथवा 'अ इत् तद विदुस्ते अमृतत्वमानशुः तमेव विदित्वाति मृत्युमेति'^४ इत्यादि अनेकशः उक्तियाँ चारों वेदों में दृष्टव्य हैं। ब्राह्मण, आरण्यकों और दर्शन तथा वेदान्त परम्परा में पर-तत्त्व विवेचन को वैशिष्ट्य के साथ विस्तार दिया गया है।

जीव तत्त्व - वस्तुतः सूत्र रूप में ब्रह्म का विस्तार ही ब्रह्माण्ड है। अतः जीव, जगत् और ब्रह्म अभिन्न हैं। लोकोत्तर ब्रह्मचेतना का प्रसारण ही आत्मचेतना और विश्वचेतना में व्याप्त है। ऋग्वेद में उपलब्ध अनेक शब्द असु, प्राण, मनस्, अजोभाग, सत्य, सुपर्ण जीव, त्मन्, और आत्मन् हैं। ये शब्द शरीर से भिन्न किसी तत्त्व का सङ्केत करते हैं। उनमें से प्रत्येक शब्द किसी न किसी रूप में आत्मतत्त्व से सम्बद्ध है और जिनमें कुछ तो आत्मा को ही स्पष्टतः इङ्गित करते हैं। सम्पूर्ण ऋग्वेद में असु और मनस् का महत्त्वपूर्ण स्थान है। असु शब्द शारीरिक-चेतना का दद्योतक है जबकि मनस् शब्द विचारणा-शक्ति का प्रतीक है। ऋग्वेद में एक मन्त्र में कहा गया है कि असुरहित व्यक्ति मृत हो जाता है। और भी अन्य स्थल पर कहा गया है-उठो हमारा असु आ गया है।

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगात्^५

इस शब्द पर तीन भारतीय आचार्यों सायण, स्कन्दस्वामी और वेकण्ट माधव ने असु शब्द पर अलग अलग व्याख्या दी हैं। सायण जीव को विशेष्य और असु को विशेषण मानते हैं।^६ स्कन्द स्वामी इसके विपरीत

१ ऋग्वेद ६।३६।४

२ ऋग्वेद १।१६४।४६

३ ऋग्वेद १।१६४।३९

४ अथर्व वेद ९।१०।१

५ ऋग्वेद १।११३।१६

६ असुनीतिं प्रणस्य नयनं प्राणप्रेरणम् (ऋग्वेद १०.१६.२ पर सायण-भाष्य)

जीव को विशेषण और असु को विशेष्य मानते हैं।^१ इसी अर्थ में वेङ्कटमाधव भी अपने भाष्य में जीवयिता प्राणः कहते हैं। उपर्युक्त, ऋग्वेदीय मन्त्र पर इन तीनों आचार्यों के भाष्य जीव तत्त्व की महत्ता प्रतिपादित करते हैं। यास्क असु को प्राण एवं प्रज्ञा दोनों अर्थ में लेते हैं-असुरिति प्राणनाम और असुरिति प्रज्ञानाम^२ एक स्थान पर सायण भाष्य में ऋग्वेद के मन्त्र-असुनीतिं प्राणस्य नयनं प्राणप्रेरणम् में असूनां नेत्रि अर्थात् प्राणों को ले जाने वाली और प्राणदायिनी भी कहा है। असुनीते प्राणदायिनि तभी तो सायण असु को सूक्ष्म शरीर और आत्मा की चैतन्य ता को सहज ही स्वीकार करते हैं।^३ इसी सन्दर्भ में पाश्चात्य विद्वानों में ग्रिफिथ असु को प्राण अर्थ में और जीव को जीवन अर्थ में लेते हैं।^४ मूर जीव का अर्थ जीवन तथा असु का तात्पर्य श्वास से लेते हैं।

आत्मा - वैदिक दर्शन में शरीर का नियामक जीवात्मा है, और यह शाश्वत नित्य तत्त्व है जो शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा के स्वरूप में प्राण, जीव, त्मनम्, चेतन सत्ता कहा गया इसीलिए आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भः^५ और आत्मा पितुस्तनूः^६ कहते हुए ऋग्वेद में अनेकों बार आत्मा की चर्चा की गई है। आत्मावारे दृष्टव्यः, स्रोतव्यः, मन्तव्यः निदिध्यासितव्यश्च यह याज्ञवल्क्य का कथन आत्म तत्त्व की महत्ता प्रतिपादित करता है।

ऋत - ऋत शब्द गत्यर्थक 'ऋ' धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ क्रियाशीलता से भी लिया जा सकता है कारण कि ऋत ही सम्पूर्ण जगत् का आदि कारण है। उदक, सत्य, यज्ञ, एवं रेतस् अर्थ में यास्क इसे

१ जीवितस्थानीया असुः मूर, जे. ओरिजिनल संस्कृत टेकस्ट, भाग ५, पृ. १९०

२ निरुक्त १०.३४

३ असुः प्राणः तदुपलक्षितं सूक्ष्मशरीरम्। आत्मा तैः सम्बद्धः चेतनः उपर्युक्त मन्त्र पर सायण-भाष्य

४ द हिम्स ऑफ द ऋग्वेद, ग्रिफिथ पृ. ५९३

५ ऋग्वेद १०.९२.१३

६ ऋग्वेद ८.३.२४

व्याख्यायित करते हैं (ऋतमित्युदकनाम, सत्यं वा यज्ञं वा, ऋतशब्देन रेत उच्यते।^१ अतः शाश्वत नियम, प्राकृतिक सत्य, नैतिक विधान, तदेकं, ऋततत्त्व अर्थात् ब्रह्मवत् मानते हुए ऋत की सत्ता स्वीकारी गई है। ऋतस्य नाभिरमृतं विजायते।^२

मोक्ष -साधन, उपासना, स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य आदि चिन्तन बिन्दु-मोक्ष मनुष्य के जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष के लिए है। डॉ. देवराज के अनुसार-जीवन के परमार्थ और उसकी प्राप्ति के साधनों की खोज सभी दर्शनों का सामान्य लक्ष्य है।^३ कूर्मपुराण में जिज्ञासा करते हुए कहा गया है-कि सब कुछ दृश्यमान क्यों है? संसरणशील कौन है? आत्मा और मुक्ति क्या हैं? तथा परब्रह्म क्या है? इत्यादि विवेचन मुक्ति सम्बन्धी वर्णित हैं।

किं कारणमिदं कृतस्त्वं को नु ते संसरते सदा,
कश्चिदात्मा च का मुक्तिः संसारः किं निमित्तकः।

अतः अज्ञान दुःख का मूल है, और आत्म-ज्ञान मोक्ष का साधन है। आत्मानं विद्धि-अपने को जानो यही वेद वचन हैं इसीलिए प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, ब्रह्मैव ते गन्तव्यं, अहं ब्रह्मस्मि, तत्त्वमसि ये आप्त वचन सदैव मोक्ष के परम गति प्राप्ति के साधन एवं प्रमाण हैं।

साधन - जीवन में धर्मनिष्ठा, सात्विक जीवन शैली, तप, स्वाध्याय, संयम, साधना, व्रत, धारणा, ध्यान, योग प्रणायाम न्यास विनियोग एवं वैदिक आचार-विचार का पालन करते हुए अध्यात्म जिज्ञासा, तत्त्व-ज्ञान की अभीप्सा से युक्त हो कर ही भक्ति और योग मार्ग से इन साधनों से मनुष्य सतत उपासना करता हुआ परम तत्त्व की साधना में त्किंचित सफल हो पाता है। यहीं पर पाप-पुण्य की अवधारणा, स्वर्ग-नरक विचार आदि विभिन्न रूपों में प्रतिफलित होते हैं।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षं अदितिर्माता स पिता स पुत्रः।

१ निरुक्त-२.२५, ४.१९, २०

२ ऋग्वेद ९. ७४. ४

विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजनाः अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १

अर्थात् एक ऐसी सत्ता जो दैहिक एवं मानुषिक प्रकृति की सब अवस्थाओं और बन्धनों से उन्मुक्त और बहुत ऊँची श्रेणी की है किन्तु तो भी वही सत्ता इन्द्र, अग्नि, मातरिश्वा और यहाँ तक कि प्रजापति आदि विविध नामों से जानी जाती है। वस्तुतः इस परम-तत्त्व की अभिव्यक्ति अदिति, प्रजापति, हिरण्यगर्भ विश्वकर्मा तथा पुरुष आदि दिव्य शक्तियों के माध्यम से एक ही सत्ता का एक मात्र देवाधिदेव-

यो देवानां नामधा एक एव ।^१

यो देवेषु अधिदेव एक आसीत् ।^२

भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।^३

एको विश्वस्य भुवनस्य राजा ।^४

सुपर्णु विप्राः कवयोः वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।^५

एक वा इदं विबभूव सर्वम् ।^६

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः य सुपर्णो गरुत्मान् ।

एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वामाहुः ॥

इस तरह समस्त ऋचाएँ, स्तुतियाँ उसी अक्षर परम व्योम में आश्रय पाती हैं। अर्थात् उस परम व्यापक अविनाशी परमेश्वर में चराचर स्थित है, जो उसे नहीं जाना वह ऋचा पाठ से क्या कर लेगा? इसी अक्षर ओंकार को ऋषि ने सूक्त में, 'परम व्योम'—परम वि—ओम् शब्द से निर्दिष्ट किया है।

१ ऋग्वेद १.८.१०

२ ऋग्वेद १.६४.४६.

३ ऋग्वेद १०.८२.३

४ ऋग्वेद १०.८१.३

५ ऋग्वेद १०.१२१.१

६ ऋग्वेद ३.४६.२

७ ऋग्वेद ८.५८.२

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तदु विदस्तु इमे समासते ॥ १

वस्तुतः परम् वि ॐ वाचक है-जहाँ तुरीय ब्रह्म की स्थिति है अतः सूक्त में ऋषि दीर्घतमा तुरीय ब्रह्म को परमेव्योमनि में स्थित बतलाते हैं और अक्षर ॐ को वाचः परमं व्योम, की स्थिति में वाच्य वाचक में अध्यक्षर ॐ रूप ब्रह्म के अधिष्ठान में सहस्राक्षरा वाक् की व्याप्ति को वाच्य वाचक के अभेद रूप की उद्भावना करते हैं। अतः ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् सभी देवों के निवास अवधारणा की पुष्टि करते हैं। गीता में भी 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्'।^१

इसी तरह यजुर्वेद में ॐ का उल्लेख है-

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।
ॐ कृतो स्मर विक्लवे स्मर कृतं स्मर ॥ ३

१ ऋग्वेद १.१६४.३९

२ गीता अ. ८.१३

३ यजुर्वेद ४०.-१५

द्वितीय अध्याय वैष्णव आगमों के स्रोत एवं सिद्धान्तों के वैदिक मूल

एकायन-शाखा

पाञ्चरात्र मत की परम्परा श्रुति मूलक है और इसका स्रोत वेदों की एकायन शाखा कही गई है। जिसे शुक्ल यजुर्वेदीय काण्व शाखा भी कहा गया है। जयाख्य संहिता, आगम मीमांसा भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। अर्वाचीन लेखकों में नागेशभट्ट और प्रो. पी.पी. आप्टे के मत में मूल वेद-एकायन शाखा ही काण्वशाखा रही होगी।

काण्वी शाखामधीयानवौपगायन कौशिको ।

शाण्डिल्यश्च भरद्वाजो मुनिर्मौञ्जायनस्तथा ॥^१

इयं शुक्लयजुः शाखा प्रथमेत्यभिधीयते ।

मूलशाखेति चाप्युक्ता तथा चैकायनीति च ॥^२

प्रो. आप्टे, के द्वारा सम्पादित एकायनवेद में सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है;^३-जहाँ नारद सनत्कुमार छान्दोग्य उपनिषद् में कहते हैं कि 'वाकोवाक्यमेकायनं वेदविद्या' उन्होंने वेदों के साथ एकायन शास्त्र का अध्ययन किया है। एकायन शाखा का सन्दर्भ निश्चय ही वेदों से रहा होगा,

१ जयाख्य संहिता पृ. १५

२ आगम मीमांसा पृ. १०

३ प्रो. पी. पी. आप्टे, एकायनवेद, पृ. १४६

अथवा प्राचीन काल में एकायन वेद को वैदिक वाङ्मय के समकक्ष समादर प्राप्त होगा। यही एकायन शास्त्र कालान्तर में पाञ्चरात्र श्रुति, पाञ्चरात्रोपनिषद् कहलाया। यह एकायन वेद वैदिक जनों के समूह की उस भक्ति के दीर्घ कालीन ऐतिहासिक सन्दर्भों को प्रतिध्वनित करता है जहाँ एक परमोच्च देवता की अभिव्यक्ति ऋग्वेदीय मन्त्रों से होती है।

तमिदगर्भं प्रथमं दध्न आपो यत्र देवा समगच्छन् विश्वे।

अजस्य नाभावध्नेकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ १

निम्नलिखित सन्दर्भों से एकायन वेद नाम और उसके प्रारम्भिक स्वरूप के साथ पाञ्चरात्र के मूलस्रोत पर जो प्रकाश पड़ता है वह इस प्रकार है-

१. छान्दोग्य उपनिषद् के रचना काल तक तो एकायन नाम के किसी वैदिक ग्रन्थ का अंश अस्तित्व में था जिसके प्रथम प्राप्तकर्ता नारद थे। दूसरा ऋषि नाम सनत्कुमार का ज्ञात होता है। ये दोनों ही ऋषि पाञ्चरात्र से निकट और पारम्परिक रूप से सम्बद्ध हैं और इस दर्शन तथा धर्म के प्रवर्तक हैं।
२. महाभारत में एकान्तिन् धर्म के आधार पर एक ऐसी परम्परा का परिचय मिलता है, जिसके सर्वोच्च देवता विष्णु थे। अहिंसा विष्णु का मूल गुण था। और उस धर्म की ग्राहकता को समाज में व्यापक और स्थायित्व प्रदान करने हेतु, विशेषकर स्त्रियों और शूद्रों के प्रति औदार्य सम्बन्धी सार्वभौमिक दृष्टि को व्यवहारिक बनाना आवश्यक था अतः तदनुरूप सिद्धान्त प्रवर्तित हुए।
३. एकान्तिन्, सात्वत एवं भागवत - ये सभी विष्णु भक्ति से सम्बन्धित परम्पराएं थीं, एकान्तिन् धर्मानुयायी नारायण उपासक थे, सात्वत धर्मी जन वासुदेवोपासना से जुड़े थे। भागवत धर्म के अनुयायी विष्णु भक्त कहे गये हैं।

४. यह आवश्यक नहीं कि इन्हें एक ही मान लिया जाय। अवश्य ही इनके विचार परस्पर मिलते-जुलते थे। अतः वे पाञ्चरात्र के एक मंच पर सम्मिलित हुए।
५. **सात्वत-विधि-** मूर्तिपूजन का एक महत्त्वपूर्ण मार्ग था और एकान्तिन् धर्म सम्भवतः योगियों के लिए साधना का मार्ग रहा है। कालान्तर में इन दोनों की पाञ्चरात्र सम्प्रदाय के स्वरूप-निर्माण में प्रभावी भूमिका निभायी नाम। इस दृष्टि से एकायन् धर्म के धार्मिक पद्धति के भाव, दो स्तरों में दिखाई देते हैं। पहला चरण वैष्णव जनों के साथ वैदिक जनों का एकीकृत समूह के रूप में ज्ञात होता है। ये याज्ञिक धर्म के परिपालन के साथ विष्णु को ही सर्वस्व मानते थे, और उन्हें अन्न की बालें प्रदान करते थे। दूसरे चरण में भक्ति और मूर्ति-पूजा का रूप अधिक प्रगाढ़ हो गया साथ ही उसने धीरे-धीरे यज्ञीय क्रियाओं का स्थान ग्रहण कर लिया। कारण कि वैष्णव परम्परा में मूर्तिपूजा वैष्णव जन के जीवन में केन्द्रिय तत्त्व है। जहाँ वह श्वास लेता है, मूर्ति उसकी श्वांसों में बसती है, वह उसकी आत्मा का भोजन है, उसकी आशाओं का स्रोत है। इसलिए मन्दिर एवं मन्दिरों की अभिव्यक्ति का केन्द्र प्रमुख मूर्ति मानी गई।
६. एकायन की पहली धारा में विष्णु यज्ञ वाचक थे - एक (= विष्णु) + आयन (= आयन (मार्ग = निवास) दूसरी धारा में एकायन मोक्ष का मार्ग था। एक (=मोक्ष) + अयन (= मार्ग)
७. ईश्वर संहिता और पारमेश्वर संहिता द्वारा ज्ञात श्वेत द्वीप सम्बन्धी ऐतिहासिक महत्त्व के विवरण एकायन की उत्पत्ति के स्रोत प्रतीत होते हैं। नारायण एवं अन्य ऋषि इस परम्परा के प्रवर्तक रहे हैं। इस एकायन का उत्कर्ष पाञ्चरात्र संहिताओं में विशेषरूप से ईश्वर और पारमेश्वर (लगभग ८०० ई.) के सन्दर्भों में अभिव्यक्त है।

८. एकायन की मूल वेद रूप में स्वीकृति संदिग्ध जैसा प्रतीत नहीं होती है; क्योंकि प्रमुख संहिताओं में ऐसे विवरण मिलते हैं। ईश्वर और पारमेश्वर के काल तक एकायन को एक वैदिक शाखा माना जाता रहा। यह शाखा पारम्परिक याज्ञिक ब्राह्मण कुलों से सम्बद्ध थी। यह बात छन्दोग्य उपनिषद् के प्रमाण से भी स्पष्ट हैं। लेकिन एकायन की परम-तात्त्विक सत्ता तथा ऋग्वेदादि से उसकी श्रेष्ठता को सम्प्रदाय के रूप में स्वीकार किये जाने की प्रवृत्ति, परवर्तीकाल में विकसित हुई यह कहना कि एकायन के महत्त्व का प्रतिपादन और स्वीकृति इसलिए की गई ताकि पाञ्चरात्र अवैदिक है, अस्तित्व में हैं ही नहीं, यह भ्रामक धारणा और यह भी कि पाञ्चरात्र शास्त्र को प्रामाणिक मानें या अप्रामाणिक, मध्य काल में बहुत चर्चित रही है। यही कारण है कि पाञ्चरात्र सम्प्रदाय के अनुयायी भी अपने शास्त्र को श्रेष्ठतम प्रमाणित करते रहे। यामुनाचार्य के द्वारा प्रतिपादित ग्रन्थ आगम प्रामाण्य पाञ्चरात्र रक्षा (वेदान्तदेशिका) ग्रन्थ इसका प्रमाण है।

अन्ततः यही दृष्टिकोण समीचीन प्रतीत होता है कि एकायन वेद अत्यन्त पुरातन हैं। कालान्तर में विष्णु का इस परम्परा के मूल देवता नारायण से समीकरण होता गया। पाञ्चरात्र संहिताओं में एकायन मन्त्रों के अस्तित्व के सन्दर्भ और वेदान्त देशिक द्वारा पाञ्चरात्र-रक्षा में वर्णित एकायन ब्राह्मण सम्बन्धी सन्दर्भों के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

वैष्णव आगम के भेद

वैष्णवागम की प्रमुख दो परम्परायें जिन्हें क्रमशः वैदिक अर्थात् वैखानस और तान्त्रिक से तात्पर्य पाञ्चरात्र भी कहा जाता है—

१. वैखानस
२. पाञ्चरात्र

भागवत पुराण में उल्लेख है कि-श्रुतिश्च द्विविधा-वैदिकी तान्त्रिकी च ।^१ सनत्कुमार संहिता में वैदिकास्तान्त्रिकाश्चैव तथा वैदिकतान्त्रिकाः इस तरह वैष्णव आगमों एवं मन्त्रों को त्रिविधि बताया है ।^२ इस सम्बन्ध में परिशिष्ट में विस्तृत विचार दृष्टव्य है । इसी तरह भी वशिष्ट संहिता में-

वैदिकं तान्त्रिकं चैव तथा वैदिकं तान्त्रिकम् ।
मिश्रितं वैदिकं मन्त्रैः तस्मात् वैदिक तान्त्रिकम् ॥

आनन्द संहिता में भी ध्यातव्य है कि -

निगमास्तान्त्रिको मिश्रस्त्रिविधः प्रोक्त आगमः ।
निगमो विखनः प्रोक्तः मिश्रः भागवतः स्मृतः ॥

यह स्पष्ट है कि दोनों प्रकार के वैष्णव आगम पूर्णरूपेण प्रमाणिक हैं । विखनस ऋषि के द्वारा प्रवर्तित होने के कारण प्रथम प्रकार के आगम का नाम वैखानस आगम पड़ा । पाञ्चरात्र नाम की सार्थकता कई प्रकार से कही जाती है । हयशीर्ष-पाञ्चरात्र में वैखानस तथा पाञ्चरात्र से भिन्न सात भागवत-संहिताओं का उल्लेख मिलता है ।

ये सात संहिताएं हैं । १. अष्टाक्षरविधान २. तन्त्र भागवत, ३. शिवोक्त ४. विष्णुभाषित ५. पद्मोद्भव ६. पुराण तथा ७. वाराह । इस भाँति वैखानस, पाञ्चरात्र, और भागवत इन तीन भागों में वैष्णवागम को विस्तारित किया जा सकता है । प्रायः १५वीं १६वीं शताब्दी तक आते-आते लगभग संकलित ग्रन्थ^३ में वैष्णवों के दस विभाग दिये गये हैं-१. वैखानस, २. राधावल्लभ, ३. गोकुलेश, ४. वृन्दावनी, ५. पाञ्चरात्र, ६. वीरवैष्णव, रामानन्दी, ८. हरिव्यासी, ९. निर्मार्क, १०. भागवत । निश्चय ही वैष्णवागम की दीर्घ परम्परा का इतिहास अनेक बार पाञ्चरात्र धर्म और भागवत धर्म

१ भागवत पुराण ११.२७.७, ४९

२ सनत्कुमार संहिता ऋषिरात्र - ९.७

३ शक्ति-संगम तन्त्र कालीखण्ड, ८.३८-४० पृ. ९६

के नाम से लोक जीवन में विख्यात रहा है। और इसका विपुल वाङ्मय (वैदिक, तान्त्रिक और मिश्र) कालान्तर में बृहद् आकार लेता गया।

वैखानस आगम

यास्क ने वैखानस शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की है- 'विखननाद् वैखानसः'। इस निर्वचन को ध्यान में रखते हुए उत्तभूर वीर राघवाचार्य ने निम्नलिखित अर्थ किया है -

विशेषेण खननाद् गभीरार्थोद्धरणात् विशिष्टवैष्णवधर्मावधार-
णौपयिक मीमांसनविशेषाद् विखना इति विखनसः इति चोच्यते इति
ज्ञायते।^१

कई उदाहरणों से ज्ञात होता है कि वैखानस ब्रह्मा ही हैं। अर्चनाधिकार तथा खिलाधिकार के द्वारा भगवान् नारायण तथा वैखानस में पिता-पुत्र के सम्बन्ध को स्वीकार किया गया है, जिसके रचयिता भृगु कहे जाते हैं। वैखानस और ब्रह्मा एक पिता नारायण के पुत्र थे; वैखानस के लिए माता और पिता का अलग-अलग नामोल्लेख करने के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मा नारायण के औरस पुत्र थे। जब कि ब्रह्मा की उत्पत्ति नारायण के नाभिकमल से मानी गयी है। जहाँ पर ब्रह्मा को वैखानस कहा गया है; वहाँ पर इसका यही अर्थ हो सकता है कि नारायण से विखनस के आगमों का उद्देश्य पाकर ब्रह्मा स्वयं वैखानस हो गये।

कुछ भी हो, इससे इतना तो अवश्य प्रतीत होता है कि विखनस का समय अत्यधिक प्राचीन है। श्री साम्बशिव शास्त्री ने वैखानसागम की भूमिका में इन आगमों की स्थिति ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी निश्चित की है।

वैखानस आगम की वैदिकता

वैदिक परम्परा का कथन है कि वैखानस ऋषि ने विष्णु द्वारा उपदिष्ट अर्थ को लेकर सूत्रों की रचना की, जिन्हें वैखानस सूत्र कहते हैं। यह सूत्र वेद के विरुद्ध न होने के कारण स्वयं प्रमाण हैं। इन सूत्रों का मूल, वेद की

१ 'वैखानस विजय पृ. १५, कालिया, लक्ष्मी तन्त्र-धर्म एवं दर्शन पृ. १४, डॉ. रामप्यारे मिश्र, वैष्णव-पाञ्चरात्र आगम कतिपय पक्ष पृ. ६

वैखानस शाखा है। 'वैखानस विजय' के अनुसार तैत्तिरीयशाखा और वैखानस शाखा सम्भवतः एक ही है। तदनुसार यह ध्यातव्य है, कि वैखानस धर्म-प्रश्न के सूत्रकार विखनस ऋषि ही वैखानस धर्मकी आगमिक परम्परा के प्रवर्तक आचार्य थे, और उनके प्रथम शिष्य सप्तर्षि में से एक मरीचि थे। यजुर्वेद की एक शाखा होने के कारण वैखानस आगम सर्वथा प्रामाण्य हैं। यद्यपि वैखानस शाखा मिलती नहीं है, इसकारण उत्तमूर वीर राघवाचार्य का कथन है कि तैत्तिरीय शाखा या तो इसी रूप में, या कुछ भिन्न रूप में ओखेय नाम की शाखा रही हो, जो वैखानस का अधिक गौरव होने के कारण उसी को वैखानस शाखा कहा जाने लगा। वैखानस शाखा में तो प्रमाण नहीं मिलते हैं, किन्तु ओखेय शाखा का नाम अज्ञात नहीं है। चरणव्यूह में लिखा है-

तत्र तैत्तिरीय नाम द्विभेदा भवन्ति ।

ओखेयाः खण्डिकेयाश्चेति ।

ओखेयों के सूत्रों की रचना विखना मुनि ने की, इसके भी प्रमाण हैं। अतएव ओखेय और वैखानस शाखा भिन्न नहीं है।

पाञ्चरात्र आगम के अन्तर्गत तप्तचक्राङ्गन का विधान है। किन्तु वैखानसों के यहाँ दूसरी विधि है। गर्भस्थ शिशु का ही चक्राङ्गन हो जाता है। यज्ञ में विष्णु-बलि के अवसर पर पके हुए चावलों पर एक चक्र का चिह्न बनाया जाता है। गर्भिणी माता उसे खा लेती है। यही बालक का चक्राङ्गन संस्कार है। इस प्रकार, इस विषय में यह निष्कर्ष निकलता है कि चरणव्यूह आदि में उल्लिखित ओखेय शाखा ही आगे चल कर वैखानस शाखा नाम से प्रसिद्ध हो गयी।

जब वैखानस शाखा यजुर्वेद की ही एक शाखा है, तो वेद से किसी प्रकार का विरोध होने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः वैखानस आगम सर्वथा प्रामाणिक हैं। यहां तक कि अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक शङ्कराचार्य अपने ब्रह्मसूत्रभाष्य में अन्य सभी प्रकार के आगमों को किसी न किसी अंश में अप्रामाणिकता सिद्ध करते हुए वैखानस आगमों के विषय में मौन रहे।

वैष्णव आगमों में पाञ्चरात्र आगमों के प्रमाण्य को भी शङ्कराचार्य ने पूरे अंशों में स्वीकार नहीं किया है। वैखानस आगम के विषय में उनके तथा अन्य भाष्यकारों के मौन रहने से यही स्पष्ट होता है कि वैखानस आगम निर्विवाद रूप से वैदिक परम्परा के रूप में प्रमाणित है। ताण्ड्यब्राह्मण, जैमिनीयब्राह्मण, आर्षेयब्राह्मण और तैत्तरीयआरण्यकों में वैखानस आगमों के सन्दर्भ मिलते हैं। यहाँ तक कि वैधायन के धर्मसूत्रों, गृह्यसूत्रों, और श्रौतसूत्रों में तथा अग्निवेश के गृह्यसूत्र में वैखानस में प्राप्त चर्याक्रम के वैदिक-विधानों को बहुत से सन्दर्भों में ग्रहीत किया गया है।

वेदान्तदेशिक ने भी अपने ग्रन्थ न्यायपरिशुद्धि में वैखानस आगमों का प्रामाण्य-स्थापन बहुत शक्तिशाली ढंग से किया है। उनका कथन है कि वैखानस आगमों तथा वेद में किसी प्रकार का भेद नहीं है अतः विरोध भी नहीं है।

वैखानससूत्रों के आधार पर जिन चार महर्षियों ने आगमों की रचना की, उनके नाम हैं काश्यप, अत्रि, भृगु और मरीचि। जबकि शौनकीय बृहद्देवता में यास्क ने विखना ऋषि की मूलोत्पत्ति सम्बन्धी गाथा में अंगिरा-भृगु, अत्रि और वैखानस की उत्पत्ति अग्नि से हुई बताई है। इस प्रकार से यही वैखानस आगम साहित्य है, के ये ही रचयिता हैं। तथा इन आगमों के मूल में धर्म सूत्र जिनके रचनाकार महर्षि विखनस ही है। इन्हें ब्रह्मा का ही स्वरूप माना गया है। वैखानस आगमों में मन्दिर-शिल्प, प्रतिमा-लक्षण, निर्मिति, प्रकार, में विविध शैलियाँ, मूर्ति-पूजा का केन्द्रीय विधान आदि की विषय-वस्तु मिलती है। यहाँ मन्दिर की उपमा मनुष्य के शरीर से की गई है। और गर्भ-गृह में प्रतिष्ठापित प्रतिमा जीव अर्थात् आत्मा है। यहाँ मन्दिर-वास्तु मात्र नहीं वरन् नगर-निवेश, भूमि-शोधन, आदि व्यवहारिक तथ्य वैष्णव समाज का शनैः-शनैः परिनिष्ठित रूप दर्शाते हैं। पाञ्चरात्र आगमों में वैखानस - 'न्यायपरिशुद्धि' में विष्णोस्तन्त्रं द्विधा प्रोक्तम् इस तरह के वचनों से दोनों ही आगमों की प्रामाणिकता सिद्ध

होती है।^१ जिस प्रकार श्रीरङ्गम् को पाञ्चरात्र का दिव्य देश माना जाता है उसी प्रकार वैखानस का दिव्य देश तिरुपति रहा है। दोनों ही दिव्य देश समान रूप से प्रमाणित एवं पूज्य माने गये हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि वैखानस श्री वैष्णवों का आगम सम्प्रदाय है। पाञ्चरात्र वाङ्मय कभी इनसे अपनी मित्रता प्रकट करते हैं तो कभी-निन्दा।

अगस्त्य संहिता में वैखानस को असात्वत कहा गया है जबकि पाञ्चरात्र को वेद सम्मत। अतः पाञ्चरात्र को सात्वत संज्ञा मिली है। अनिरुद्ध संहिता के अनुसार अगर पाञ्चरात्र मन्दिर में कोई वैखानस कृत्य सम्पादित हो जाय तो उसका शुद्धिकरण अपेक्षित है। ईश्वर संहिता में पाञ्चरात्र, वैखानस को सात्वत एवं राजस की संज्ञा दी गयी है। इसी संहिता में अन्यत्र अनिरुद्ध संहिता के समान वैखानस कृत्य सम्पादन के उपरान्त पाञ्चरात्र मन्दिर के शुद्धीकरण की बात कही गयी है। एक उल्लेख के अनुसार वैखानस की गणना शैवागम पद्धति के अनुसार की गयी है।

पराशर संहिता के अनुसार अनुष्ठान चाहे मन्दिर में हो या घर में पाञ्चरात्र पद्धति के अनुसार होने चाहिए न कि वैखानस पद्धति से। इसी संहिता के वचनानुसार स्नपन विधि पाञ्चरात्र व वैखानस दोनों सम्प्रदायों को मान्य है। इसी संहिता के अनुसार दोनों की प्रतिष्ठा के विधान भी समान हैं।

पाद्म संहिता के चर्यापाद में यह निर्देश है कि यदि कोई वैखानस प्रतिमा का स्पर्श कर लेता है तो सम्प्रोक्षण अनिवार्य है।^२ पारमेश्वर संहिता में भी वैखानस विधि से सञ्चालित मन्दिर में पाञ्चरात्र-विधान को प्रभावी बनाने हेतु नवीनप्रतिष्ठा कर्म किया जाना चाहिये। शाण्डिल्य संहिता के अनुसार वैखानस को 'श्रौत' एवं पाञ्चरात्र को 'आगम' की संज्ञा मिली है।

१ न्याय परिशुद्धि पृ. १६९

२ पाद्म संहिता चर्यापाद ८.११७-१३५

सनत्कुमार संहिता और शेष संहिता के अनुसार पाञ्चरात्र एवं वैखानस के बीज मन्त्रों को नहीं मिलाना चाहिये।

वैखानस एवं पाञ्चरात्र में परस्पर-अन्तर

१. वैखानस परम्परा में वैदिक और मान्त्रिक पक्ष वेदों से गृहीत हैं। पाञ्चरात्र-परम्परा में वैदिक मन्त्रानुष्ठान के साथ साथ तान्त्रिक मुद्राओं का भी पञ्चकालिक सर्पया में विधिवत् प्रयोग किया जाता है।
२. वैखानस धर्मी अपने को सौम्य कहते हैं, जबकि पाञ्चरात्र धर्म के उपासकों को आग्नेयम् कहते हैं।
३. वैखानस मतानुयायी सांसारिक सुखों, स्वर्ग-भोग और मुक्ति की कामना करते हैं। जबकि पाञ्चरात्रमतानुयायी केवल मोक्ष ही को जीवन का लक्ष्य समझते हैं।
४. वैखानस मन्दिर प्रायः नगरों और गांवों में होते हैं। जिनकी बहुत अधिक संख्या दक्षिण-भारत में प्राप्य है, जबकि पाञ्चरात्र-मन्दिर नदी किनारे या पर्वतों की चोटी पर होते हैं। और दक्षिण-भारत एवं उत्तर-भारत में भी प्राप्त हैं।
५. पुरुष, सत्य, अच्युत, एवं अनिरुद्ध चतुर्व्यूह देव वैखानस आगम के अन्तर्गत हैं। विष्णु-वासुदेव-नारायण के ऐक्य को ही परमेश्वर-परमतत्त्व परात्पर वासुदेव कहा गया एवं व्यूहान्तर्गत परवासुदेव, व्यूह वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चार दिव्य स्वरूपों को चतुर्व्यूह के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है।
६. वैखानस स्रोत के उद्गाता विखनस् ऋषि, महर्षि मरीचि, भृगु, अत्रि, और कश्यप कहे गये हैं। पाञ्चरात्र आगमों के उद्गाता स्वयं नारायण, सङ्कर्षण, नारद, शाण्डिल्य आदि ऋषिगण हैं।

पाञ्चरात्र आगम

पाञ्चरात्र आगम की प्रामाणिकता इनके मूल में श्रुति है—

श्रुतिमूलमिदं तन्त्रप्रमाणं कल्पसूत्रवत्^१

पाञ्चरात्र संहिता वेदों की ही उपबृंहण हैं ऐसा ईश्वर संहिता में सप्रमाण उल्लेख है^२—

मूलवेदानुसारेण छन्दसाऽऽनुष्टुभेन च ।

सात्त्वतं पौष्करं चैव जयाख्येत्येवमादिकम् ॥

पुरा तोताद्रिशिखरे शाण्डिल्योऽपि महामुनिः ।

समाहितमना भूत्वा तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ॥

द्वापरस्य युगस्यान्ते आदौ कलियुगस्य च ।

सुमन्तुं जैमिनिं चैव भृगुं चैवौपगायनम् ।

मौज्जायनं च तं वेदं सम्यगध्यापयत्पुरा ॥

एष एकायनो वेदः प्रख्यातस्सर्वतो भुवि ।

दुर्विज्ञेयो दुष्करश्च प्रतिबुद्धेर्निषेव्यते ॥

अर्थात् जिस प्रकार शाण्डिल्य ने तोताद्रि-शिखर पर कठिन तपस्या के उपरान्त द्वापर युग के अन्त और कलियुग के आदिकाल में सङ्कर्षण से साक्षात्कार करके एकायन वेद-संज्ञक ज्ञान-राशि प्राप्त की और तदुपरान्त सुमन्तु, जैमिनि, भृगु, औपगायन, आदि ने शाण्डिल्य से इसका अध्ययन किया। इस प्रकार यह एकायन वेद समस्त भूमण्डल में विस्तारित हुआ और प्रख्यात हुआ।

वेदों की दार्शनिक और कर्मकाण्डीय धारा से निसृत पाञ्चरात्र आगम धर्म की व्यवहारिक संस्कृति के प्रतिविम्ब हैं। आगमों में भक्ति की अविचल भाव धारा एवं भागवत् पूजा विधान के विभिन्न आकलन दृष्टिगत होते हैं यह

१ अनिरुद्ध संहिता २.७, पाञ्च संहिता ज्ञानपाद अ. १

२ ईश्वरसंहिता १.५०

सत्य है कि बाद में वैदिक-कर्मकाण्ड की जटिल प्रक्रियाओं की कालान्तर में, उपेक्षा होने लगी। तथा तदनन्तर भी सामाजिक परिवेश के परिवर्तनीय चिन्तन प्रवाह के कारण सामान्य जन की प्रवृत्ति यज्ञ की क्लिष्टता और कर्मकाण्डीय विधान से तटस्थ हो चली थी, तथा मूर्ति-पूजा के सहज सर्वगम्य, सर्वग्राह्य स्वरूप की ओर आकर्षित हो रही थी। इस सरल वैष्णव धर्म की धारा में सब के लिये पर्याप्त स्थान था, चाहे वे शूद्र हों अथवा स्त्रियाँ। वहाँ उनको संसार में रह कर भी मोक्ष के मार्ग पर जाने के साधन उपलब्ध कराये गये हैं।

महाभारत के स्वर्गीरोहण पर्व^१ में वैष्णव शब्द का उसी अर्थ में प्रयोग हुआ है। वस्तुतः विष्णु ही सर्वोपरि हैं। विचक्रमाणः त्रेधोरुगायः^२ अथवा यस्योरुषु त्रिषु के माध्यम से विष्णु के व्यापकत्व और उनके वामनावतार के सङ्केत सूत्र प्राप्त होते हैं। इसी तरह -

“आपोनारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।

ता यदस्यायनं पूर्व तेन नारायणः स्मृतः ॥^३

श्रीमद्भगवद् गीता के माध्यम से व्यापक ब्रह्मस्वरूप नारायण और गीता में प्रोक्त वासुदेवः सर्वमिति में वासुदेव भी नारायण-विष्णु के ऐक्य को ग्रहण करते हैं।^४ अतः वैष्णव परम्पराओं को विभिन्न सरणियों के सन्दर्भ में स्थान-स्थान पर दृष्टि पात करते हुये वैदिक विष्णु, ही वैष्णव सिद्धान्तों के मूल में हैं। परिणामतः यज्ञ के स्थान पर मूर्ति की स्थापना व प्राणप्रतिष्ठा आदि विधानों के द्वारा परमात्मा की परिव्याप्ति आकार लेती गई, अतः पाञ्चरात्र संहितायें दो विस्तृत भागों में विभक्त हैं, एक तो प्रेरणा के उन बिन्दुओं को आत्मसात करती हुई, देवत्व के मूल को निर्दिष्ट करती हैं। और मानवीय चेतना को अनुप्राणित करती हैं; जिसमें वैदिक दर्शन की

१ महाभारत ६.५.९७.

२ ऋग्वेद विष्णुसूक्त १.१५४.१

३ मनुस्मृति - १.१०

४ श्रीमद्भगवद्गीता ७.१९

धारा स्वतः स्फूर्त होती चलती है, जो कि वैदिक मूल, वैदिक सिद्धान्तों को अनुसृत करती जाती हैं। इन वैष्णव संहिताओं में जयाख्य, अर्हिबुध्न्य, सात्वत, सनत्कुमार, व पाद्म संहितायें दर्शनपरक पृष्ठभूमि में वैदिक मूल को व्याख्यायित करती हुई वैष्णव सिद्धान्तों को प्रतिध्वनित करती हैं। जिसे इन संहिताओं में ज्ञानपाद और योगपाद में देख सकते हैं।

दूसरा भाग पूर्णरूपेण औपचारिक एवं व्यावहारिक निर्देशों पर निर्भर करता है। इसे विषय गत दृष्टि से प्रबन्धीकरण की प्रक्रिया से सन्दर्भित माना जाता है इसमें मुख्यतया विधि-प्रयोग के विविध आयाम क्रिया और चर्या पाद के माध्यम से अध्याय तथा पटलों में कहीं-कहीं काण्डों में विभक्त हैं। जिस प्रकार विधि-विधान के लिये निर्धारित मनुस्मृति वैदिक परम्परा की प्रतिनिधि ग्रन्थ है।

निश्चय ही पाञ्चरात्र का विस्तार ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में हो चुका था। उत्तर भारत की संहितायें बहुत संक्षिप्त और कम हैं। दक्षिण भारत की संहिताओं के वर्ग में परस्पर विषय सामग्री का साम्य देखने में मिलता है, जैसे उपेन्द्र संहिता में श्रीरङ्गम् की दिव्य दिनचर्या का प्रमुखता से उल्लेख है, जो उत्तर भारत की संहिताओं में भी प्राप्त है। नारद पाञ्चरात्र जो कि उत्तरभारत में जानी जाती थी, अब पश्चिम बंगाल, और गुजरात में और दक्षिण भारत में नारदीय संहिता एवं ज्ञानामृतसार के नाम से प्राप्त है।

प्रख्यात वैष्णवाचार्य यामुनाचार्य ने 'आगमप्रामाण्य' में दक्षिण भारत की सर्वाधिक प्राचीन ईश्वर-संहिता के स्थान पर परम संहिता, शाण्डिल्य संहिता, सनत्कुमार संहिता, इन्द्ररात्र (तृतीयरात्र -महासनत्कुमार संहिता) और पद्मोद्भव संहितायें उद्धृत करते हैं, वैष्णव आगमों के सन्दर्भ में दक्षिण भारत के सबसे प्रामाणिक आचार्य यामुनाचार्य हैं। अतः सम्भव है कि परम संहिता ही प्राचीन ईश्वर संहिता रही हो। कारण कि विषय -सामग्री परस्पर मिलती जुलती है।

अतः पाञ्चरात्र का विकास क्रम लगभग चार भागों में विभक्त किया जा सकता है-

१. पूर्व प्राचीन (ऐतिहासिक) साक्ष्य
२. पारम्परिक साक्ष्य
३. पूर्व-परम्परया साक्ष्य
४. आधुनिक साक्ष्य

१. **पूर्व प्राचीन साक्ष्य**-ब्राह्मण और महाभारत का नारायणीय शतपथ ख्यान-ये दो स्रोत पाञ्चरात्र के पूर्व प्राचीन स्वरूप और नाम की धर्मपरक प्रस्तुति को उद्धृत करते हैं। (आधुनिक विद्वान् प्रोफेसर पी.पी. आष्टे के मत में-आदिकाल, आगमकाल, आचार्यकाल, और अर्वाचीनकाल इस तरह से पाञ्चरात्र धर्म के विकास क्रम को विभाजित किया गया है।) इसलिए ईसा पूर्व पञ्चम शताब्दी का यह काल है। शतपथ ब्राह्मण में पाञ्चरात्र का उल्लेख, इस तथ्य की पुष्टि करता है कि उस समय तक यह धर्म प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था।
२. **पारम्परिक साक्ष्य** - यह समय महाभारत के बाद का काल, जिसे कि आगमिक काल भी कहा गया है। आगम-साहित्य का रचनात्मक समय रहा होगा; तथा वह काल मन्दिरों की निर्मिति क्रम के विकास का भी रहा होगा। अतः यह समय लगभग ईसवीं प्रथम शताब्दि तक का रहा होगा।
३. **पूर्व-परम्परया साक्ष्य** - यह अत्यन्त महत्वपूर्ण समय रहा होगा। इसे आचार्यकाल अथवा मध्यकाल भी कहा गया है। इसी समय में वैष्णव आचार्यों के द्वारा पाञ्चरात्र धर्म के सिद्धान्तों का विभिन्न परिप्रेक्ष्य में विवेचन किया गया। संहिताओं का प्रबन्धीकरण, और वैष्णव आगमों के विस्तार के विविध रचनात्मक ग्रन्थ रचे गये। वैष्णव धर्म का अब तब व्यापक विस्तार सम्पूर्ण भारत में हो चुका था। उत्तरभारत से दक्षिण भारत तक संहिता पूर्व आधार पर पुनः संवर्द्धित हो रही थीं। अतएव यह समय ईसवीं दूसरी शताब्दि के बाद से आठवीं सदी का रहा होगा।

४. **आधुनिक अथवा अर्वाचीन काल** - वैष्णव आगमों पर किये गये शोध-कार्यों के लिए जाना जा सकता है। इस क्षेत्र में भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों का भी योगदान है।

वैष्णव आगमों पर शोध दृष्टि रखने वाले भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों में इस सदी के आरम्भ में जर्मन विद्वान् एफ. आर्टो श्रेडर^१ और बाद में इस सदी के उत्तरार्द्ध में जे. ए. वान बुतानिन^२, वी. राघवन^३, पी. जी. आप्टे^४, एच. डैनियल स्मिथ^५ एवं अन्य विद्वानों ने पाञ्चरात्र आगमों पर वैचारिक मन्थन किया है।

डैनियल स्मिथ स्वीकार करते हैं कि पाञ्चरात्र सम्प्रदाय का वृहद् वाङ्मय अभी तक आधुनिक विद्वानों के द्वारा पूर्णतया विश्लेषित नहीं किया गया। यहाँ तक कि पाञ्चरात्र - नाम - निर्वचन पर भी मतैक्य विचारणीय है।

पाञ्चरात्र शब्द की व्याख्या - 'पञ्चरात्रमधिकृत्य कृतम्' के सन्दर्भ में दोनों दृष्टियों से की जाती है - 'पञ्चरात्र' और 'पाञ्चरात्र' दोनों तरह के प्रयोग सम्पूर्ण वाङ्मय में मिलते हैं। दो शब्द मिश्रित हैं - पञ्च - रात्र अतः निर्वचन तीन प्रकार से सम्भव है -

- (१). पञ्चानां रात्रीणां समाहारः अर्थात् पाञ्च रात्रियों का समूह।
- (२). पञ्चविधं रात्रम् तात्पर्य यह कि पाँच प्रकार की रात्रियाँ।
- (३). 'पञ्च विद्यन्ते रात्रयः यस्मिन् तत् भाव यही कि वह जिसे कि पाञ्च रात्रियों में अवतरित होना है। अब यदि धातु पक् से पञ्च बना है

१ इन्द्रोडक्शन टु दि अहिबुध्य संहिता, आर्टो श्रेडर १९१६

२ दि नेम पाञ्चरात्र, जे. ए. वान बुतानिन १९६२,

३ दि नेम पाञ्चरात्र विथ एन एनलसिस आफ दि सनत्कुमार संहिता इन मैन्युसस्क्रिप्ट, १९६५, वी. राघवन

४ पाञ्चरात्र नेम एन्ड ओरिजिन, प्रो. पी. पी. आप्टे १९७२,

५ ए टाइपोलाजिकल सर्वे आफ डिफिनिशनः दि नेम पाञ्चरात्र, डैनियल स्मिथ १९७३,

तो (पक् धातु पकाने के अर्थ में प्रयुक्त होती है) 'पकाया' अर्थ से जो परिपक्व किया गया है, और रात्र का तात्पर्य 'ज्ञान' अर्थात् शाश्वत ज्ञान की प्राप्ति के लिए जो अज्ञान नष्ट किया गया जिस काल अवधि में -पञ्चरात्र कहा गया।

इसी सन्दर्भ में पञ्च का अर्थ पाँच रात्रियों तक चलने वाले यज्ञ सत्र अर्थ शतपथ ब्राह्मण में आता है, जिसका सम्बन्ध पुरुष नारायण के द्वारा किये गये यज्ञ से लिया जाता है।

स एतं पुरुषमेधं पञ्चरात्रं यज्ञक्रतुमपश्यत्।^१

दूसरे सन्दर्भ में महाभारत के नारायणीय पर्व में नारायण और पञ्चयज्ञ के सन्दर्भ में पञ्चरात्र शब्द का प्रयोग हुआ है—'पञ्चयज्ञ पञ्चकालकर्तृपते पञ्चरात्रिक'^२ वस्तुतः पञ्चरात्रिक शब्द की यह परिभाषा होनी चाहिये। पञ्चकालिक शब्द भी पञ्चरात्र धर्म का तकनीकी पारम्परिक शब्द है, स्पष्ट है कि पञ्चकाल से सम्बन्ध दिन के पाँच प्रहर हैं, अर्थात् सम्पूर्ण अहोरात्र पर्यन्त -और पञ्चयज्ञ का तात्पर्य भी सभी तरह से किये जाने वाले, अहोरात्र में सम्पन्न होने वाले यज्ञ सत्र, जो कि पञ्चरात्र के ईश्वर नारायण को समर्पित हैं। यहाँ भी पञ्च शब्द समस्त या सम्पूर्ण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

इसी क्रम में महाभारत के मोक्षधर्मपर्वण^३ में पञ्चरात्र को व्याख्यायित किया गया है—

एवमेकं सांख्ययोगं वेदारण्यकमेव च।

परस्पराङ्गान्येतानि पञ्चरात्रं च कथ्यते ॥

यहाँ पाँच महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय अभिव्यक्त किये गये हैं एवमेकं अर्थात् एकं -एकान्तिन् धर्म, सांख्य, योग, वेद, और आरण्यक सभी पाँच आपस में

१ शतपथ ब्राह्मण १.१.६३

२ महाभारत नारायणीयपर्व १२.३३८.४

३ मोक्षधर्मपर्वण १२.३३६.७६

एक दूसरे के पूरक हैं। और इन्हे पञ्चरात्र कहा गया है। इस अर्थ में पञ्च से पाँचसम्प्रदाय अथवा सब एक दूसरे के अङ्ग हैं, यदि यह कहते हैं तो रात्र शब्द का अर्थ ज्ञान की व्यवस्था हुआ। पाञ्चरात्र आगम में वेद सम्बन्धी उक्तियाँ निम्नानुसार हैं -

१. श्रुतिमूलमिदं शास्त्रं प्रमाणं कल्पसूत्रवत्।
२. श्रुतिमूलानि तान्येव पाञ्चरात्राणि पङ्कजः^१
३. वेदमूलतया तन्त्रमाप्तमूलतयापि च।
पुराणवत् प्रमाणं स्यात् तथा मन्वादिवाक्यवत् ॥^२
४. भूयः संचोदितात्तस्मात् तेन लोकाहितैषिणा।
विस्तरतः शास्त्रं भोगमोक्षप्रदं हि यत् ॥
सात्वतं पौष्करं चैव जयाख्येत्येवमादिकम्।
तत्सर्वे विदितं सम्यक् शाण्डिल्यस्य महात्मनः ॥^३
५. इति भगवतः सङ्कर्षणात् शाण्डिल्येन रहस्याम्नायशास्त्रस्य
तन्मूलकसात्वतपौष्करजयाख्य-
६. यशब्देनैकापाञ्चरात्रसंहितानां चाध्ययनं प्रतिपादितम्।
७. आदिष्टोऽहं भगवता भवदर्थे तपोनिधे।
इत्युक्त्वाध्यापयामास वेदमेकायनाभिधम् ॥
मूलभूतस्तु महतो वेदवृक्षस्य यो महान्।
सद्ब्रह्मवासुदेवाख्यपरतत्त्वैकसंश्रयम् ॥^४

१ विष्णुतन्त्र १-३६

२ विष्णु संहिता, पटल २-११

३ पारमेश्वर संहिता, ज्ञानपद, अ.१. १६-१९

४ पारमेश्वरेऽपि ज्ञानपादः, अ.१. ३२, ३३

८. साक्षात् सङ्कर्षणाद्वयक्तात् प्राप्त एष महत्तरः ।
एष एकायनो वेदः प्रख्यातः सात्वतो विधिः ॥^१
९. नमः श्रीवासुदेवाय सच्चिदानन्दमूर्तये ।
एकायनत्रयीं यस्तामुपादिक्षच्छिष्यै प्रभुः ॥
नमः श्रीवत्सवासिन्त्यै य जगत्क्षेमहेतवे ।
एकायनमुपादिक्षदेकताय महात्मने ।^२
१०. वेदमेकायनं नाम वेदानां शिरसि स्थितम् ।
तदर्थकं पाञ्चरात्रं मोक्षदं तत्क्रियावताम् ॥
यस्मिन्नेको मोक्षमार्गो वेदे प्रोक्तः सनातनः ।
महाऽराधनरूपेण तस्मादेकायनं भवेत् ॥^३
११. ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं
पञ्चम् वेदानां वेदं पि ॥

यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्याम् । इत्यादि ।

यदि विचार करें तो ये सन्दर्भ पाञ्चरात्र धर्म के विकास क्रम का सङ्केत देते हैं । और मोक्षधर्मपर्व का तीसरा ऐतिहासिक सन्दर्भ पाञ्चरात्र के आगमिक स्वरूप में प्राप्त ख्याति को सङ्केतित करता है ।

2. आगमिक साक्ष्य-पौष्कर संहिता में कहा गया है, कि वेद-वेदान्त-योग-सांख्य और पुराण ये पाँच प्रकार में ज्ञान स्वरूपों में पाँचरात्र रूपी कमल फल-प्राप्ति के उत्कर्ष रूप में सुशोभित हो रहा है । यहाँ पर भी पाँचरात्र का श्रेष्ठत्व दर्शाया गया है । शाण्डिल्य संहिता में भी पाँचरात्र की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है-

सांख्य योगस्तथा शैवं वेदारण्ये च पञ्चकम् ।

प्रोच्यन्ते रात्रयः कान्ते आत्मानन्दसमर्पणात् ॥

१ ईश्वर संहिता १.३८.४१, ४३

२ श्रीकृष्ण संहिता, अ. १. १, २

३ श्रीकृष्ण संहिता, अ. २. ३८, ३९

पञ्चानामीप्सितो योऽर्थः स यत्र समवाप्यते ।
परमानन्दभेतेन प्राप्नोति परमात्मनः ॥ १

सांख्यं योगश्च वैराग्यं तपो भक्तिश्च केशवे ।
पञ्चार्थदानतः त्राणात् विद्या सा पाञ्चरात्रिकी ॥ २

इसी क्रम में श्रीप्रश्न संहिता और वामन-संहिता में रात्रि शब्द का अर्थ अज्ञान से लिया गया है और पाँचरात्र सर्वाधिक अज्ञान का नाशक हैं -

रात्रिरज्ञानमित्युक्तं पञ्चैतेऽज्ञाननाशनः ।
तच्छास्त्रं पञ्चरात्रं स्यान्नन्ववर्थस्यानुरोधतः ॥ ३
बौद्धं पाशुपतं चैव कापालं शैवमेव च ।
गाणपत्यं च पञ्चैते तामसानि समीरिताः ॥
तस्मात्पञ्चेतरत्वाच्च शास्त्रं पञ्चेतरं विदुः ॥
तस्मात्तु रात्रिरित्युक्तं तद्विशिष्टेन तामसम् ॥ ४

उत्सव संग्रह में रात्रि का अर्थ ज्ञान और पाँच प्रकार के ज्ञान को ही पाञ्चरात्र कहा गया है-

रात्रं च ज्ञानवचनं ज्ञानं पञ्चविधं स्मृतम् ।
तेनेदं भगवच्छास्त्रं पञ्चरात्रमिति स्मृतम् ॥
पुराणं न्यायमीमांसे तथान्यत्सांख्ययोगतः ।
पञ्चप्रकारविज्ञेयः पञ्चरात्रमिति स्मृतम् ॥
आगमं भारतं शिल्पं वैद्यं ज्योतिषमेव च ।
पञ्चशास्त्राणि संयोगात् पञ्चरात्रमिति स्मृतम् ॥ ५

१ शाण्डिल्य संहिता १.४.७५-६

२ शाण्डिल्य संहिता १.४.७८

३ श्रीप्रश्न संहिता २.४०

४ ज्ञानामृतसारसंग्रह के प्रथमरात्र में १.१.४४

५ उत्सव संग्रह ३.पृ.१५

इस प्रकार से पाञ्चरात्र की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए पाँच सम्प्रदायों, पाँच शास्त्रों में से वैष्णव पाञ्चरात्र का महत्त्व सर्वाधिक अभिव्यक्त किया गया है। एक और दृष्टि से पाँच देवताओं के द्वारा अनुशंसित सर्वप्रधान शास्त्र पाञ्चरात्र कहा गया है। भारद्वाज संहिता में कहा गया है -

इमं प्रथमं ब्रह्मरात्रं तु द्वितीयं शिवरात्रकम् ।^१

तृतीयमिन्द्ररात्रं तु चतुर्थं, नागरात्रकम् ।

पञ्चममृषिरात्रं तु पञ्चरात्रमिति स्मृतम् ॥

यहाँ रात्र से अर्थ विशेष प्रकार के रात भर चलने वाले ज्ञान-सत्र की ओर सङ्केत किया गया है। पुरुषोत्तम संहिता, परमपुरुष संहिता, मार्कण्डेय संहिता विहगेन्द्र और परम संहिता में भी पाँचरात्र शास्त्र के महत्त्व को देवताओं के द्वारा प्रतिपादित एवं अनुशंसित शास्त्र माना गया है। दृष्टव्य है-

सार्धकोटिप्रमाणेन ब्रह्मणा केशवात् श्रुतम् ।

रात्रिभिः पञ्चभिः सर्वं पञ्चरात्रागमं स्मृतम् ॥ ^२

श्रीमन्नारायणः शौरिः हरिः परमपुरुषः ।

पञ्चरात्रिषु तत्सर्वं ब्रह्मणो अवदत्स्वयम् ॥ ^३

सार्धकोटिप्रमाणेन कथितं तस्य विष्णुना ।

रात्रिभिः पञ्चभिः सर्वं पाञ्चरात्रमतः स्मृतम् ॥ ^४

आदौ कृतयुगे प्राप्ते केशवेन प्रसादिताः ॥

अनन्तो गरुडश्चैव विष्वक्सेन कपालभृत् ।

१ भारद्वाज संहिता २.१२७१३

२ पुरुषोत्तम संहिता .१.६.-७

३ परमपुरुष संहिता १.२४

४ मार्कण्डेय संहिता १.१९

ब्रह्मा इत्येव पञ्चैते शृण्वन्ति पृथगीरितम् ॥

अनन्तं प्रथमे रात्रौ गरुडश्च द्वितीयके ।

तृतीयरात्रे सेनेशश्चतुर्थे वेधसा श्रुतम् ।

रुद्रः पञ्चरात्रे च श्रद्धाशास्त्रं पृथक् पृथक् ॥ १

पारम्परिक दृष्टि से पाञ्चरात्र नाम की व्याख्या पाँच ऋषि-गणों (शाण्डिल्य, औपगायन, मौआयन, कौशिक तथा भारद्वाज) द्वारा प्रवर्तित शास्त्र पाञ्चरात्र कहा गया, ईश्वर संहिता में उल्लेख है कि -

पञ्चायुधांशास्ते पञ्च शाण्डिल्यश्चौपगायनः ।

मौआयनः कौशिकश्च भारद्वाजश्च योगिनः ॥ २

अहिंबुध्न्य संहिता में वैष्णव सिद्धान्तों (पर, व्यूह, विभव, व्यूहान्तर, और अर्चा) के प्रतिष्ठापन हेतु पाञ्चरात्र संज्ञा हुई, ऐसी धारणा की पुष्टि की गई है-

तत्परव्यूहविभवस्वभावादिनिरूपणम् ।

पाञ्चरात्राह्वयं तन्त्रं मोक्षैकफलक्षणम् ॥ ३

दार्शनिक दृष्टि से परम संहिता, विष्णु संहिता, विष्णुतन्त्र, और कपिअलसंहिताओं में पञ्चमहाभूतों, पञ्च तन्मात्राओं, ज्ञानेन्द्रियों से आविर्भूत यह शास्त्र प्राणीमात्र के लिए मोक्ष-मार्ग प्रशस्त करने वाला शास्त्र है, धर्म है । महाभूतगणाः पञ्च रात्रयो देहिनः स्मृतः । ४

रात्रयो गोचराः पञ्च शब्दादित्रिविषयात्मिकाः ।

महाभूतात्मका वाऽत्र पञ्चरात्रमिदं ततः ॥ ५

१ विहगेन्द्र संहिता १.३४-७

२ ईश्वर संहिता २१.५१९-३३

३ अहिंबुध्न्यसंहिता ११.६३-४

४ परम संहिता १.३९-४१

५ विष्णु संहिता १.४९-५१

आधुनिक-साक्ष्य - प्रोफेसर अहमद हसन दानी (पाकिस्तान के प्रख्यात पुरातत्त्वविद) ने चिलास-गिलगित क्षेत्र में जो पुरातात्विक खोज की है कि उत्तर वैदिक काल के लगभग समकालीन पाञ्चरात्र आगम के तत्त्व मिलने लगते हैं। और महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों में यह परम्परा अनवरत प्राप्त होती है।

इस शताब्दी में श्रैडर सनत्कुमार संहिता के अनुसार, पर, व्यूह, विभव, अर्चा और अर्न्तयामी इन पाँच सिद्धान्त-बिन्दुओं को ही पाञ्चरात्र नाम निर्वचन का हेतु मानते हैं।

के.सी. वरदाचारी के मत में-संवत्सर, दक्षिणायन, कृष्णपक्ष, अर्धरात्रि और रोहणी नक्षत्र ये पाँच स्थितियाँ, परवासुदेव श्री कृष्ण के जन्म की द्योतक हैं। प्रश्नोपनिषद् में प्राण और रयि, जो कि आदित्य और चान्द्र मास का प्रतिनिधित्व करती हैं। और रात्रि भी तमस् की द्योतक है, तथा रयि भी तमस अर्थात् अन्धकार है, द्वापर और कलियुग के सन्धिकाल में मानवीय चेतना पर भी रयि अर्थात् तमस से छुटकारा हेतु ज्ञान के प्रकाश के लिए (श्री कृष्ण के अवतार के लिए) जिन पाँच स्थितियों से श्रीकृष्ण रूपी सूर्य का उदय हुआ वे पाञ्चरात्र कहीं गई।

जे. ये. बी. वान. वुटेनिन के अनुसार-पञ्चकाल, पञ्चयज्ञ, पञ्चरात्रिक, और रात्रिपञ्चक ये शब्द धार्मिक परम्पराओं में अनुशासित क्रियान्वयन में व्यवहृत होने वाले तकनीकी शब्द विशेष हैं। जिनका सन्दर्भ महाभारत के मोक्षधर्मपर्व में, वृहत्कथा, और याज्ञवल्क्य स्मृति में और अन्य स्थानों पर भी हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक ही धर्मानुयायियों ऋषियों का घूमता हुआ समूह एक ही स्थान पर पाँच रात्रियों तक रह कर धार्मिक प्रवचन करता था अतएव उन्हें पञ्चरात्रिक कहा गया। और यही समुदाय नारायण-श्रीकृष्ण का उपासक रहा होगा। अतः पाञ्चरात्र की यह परम्परा ही पाञ्चरात्र कही गई। पाञ्चरात्रिकों द्वारा अनुबन्धित यह पाञ्चरात्रि का सत्र पाञ्चरात्र कहे जाने से परस्पर सम्बद्ध हो गया।

एच. डेनियल स्मिथ का कथन है कि -पाञ्चरात्र शब्द दो हिस्सों में देखा जा सकता है, एक रात्र और पाञ्चरात्र का अर्थ ज्ञान हुआ, और इसका नकारात्मक तात्पर्य अज्ञान किया जाता है। और पञ्च का तात्पर्य जे. ये.बी.वान.बुटेनिन के समरूप ही स्वीकार करते हैं।

वी. राघवन भी सनत्कुमार संहिता के अनुसार पाञ्चरात्र का अर्थ-शिव, ब्रह्म, इन्द्र, ऋषि, वृहस्पति के द्वारा ज्ञापित प्रवचन सत्र जो पाँचरात्रियों तक चला पाञ्चरात्र कहलाया।

ए. एस. आयंगर जो कि पाञ्चरात्र की अनिरुद्ध संहिता के सम्पादक हैं, उनका कथन है कि-ईश्वर संहिता में ८८००० लोग एकत्र हुये, जिनमें ८०० ऋषिगण थे। और यह ज्ञान-सत्र ठीक महाभारत युद्ध के बाद आयोजित था, जो कि द्वापर और कलियुग का सन्धिकाल रहा होगा। सम्भव है यह सत्र तोताद्रि और गन्धमादन पर्वत पर सम्पन्न हुआ हो।^१

मौआयन और कौशिक आदि ऋषिगणों के लिये मोक्ष-धर्म के सिद्धान्तों को समझाने हेतु भगवान् वासुदेव और सङ्कर्षण ने उपदेश किया हो और बाद में विष्णु का यह धर्म ही सात्त्वत विधि कही गई। और पाँचरात्रि तक चलने वाले यह सत्र पाञ्चरात्र कहलाये।

इन सभी पाञ्चरात्र सम्बन्धी व्याख्याओं में पूर्व ऐतिहासिक साक्ष्यों के, और परम्परया साक्ष्यों के आधार पर ही ये तथ्य सामने आये हैं, कि सत्र पाँच रात्रियों तक चला, जिसमें ज्ञान विशेष मोक्ष हेतु विष्णु-नारायण-वासुदेवोपासना के सिद्धान्तों को स्वयं वासुदेव-सङ्कर्षण ने, तथा अन्य ऋषिगणों ने पाँच रात्रि तक उपदेश किये थे।

इन से सर्वथा अलग एक भाषा-वैज्ञानिक और दर्शन परक समीचीन व्याख्या और भी है-विख्यात इतिहास वेत्ता प्रोफेसर विश्वम्भर शरण पाठक के अनुसार-वास्तव में यह भारोपीय शब्द है। 'रात' (अवेस्ता का) 'लैतर' लेटिन भाषा का शब्द है। जो सर्वथा स्पष्ट है, कि 'रात' शब्द का प्रयोग

धार्मिक प्रशिक्षक द्वारा दी जाने वाली गोपनीय शिक्षा थी। जिसका सम्बन्ध ईश्वर की भक्ति अथवा उपासना से था।

‘लैतरे’, लैटिन भाषा का शब्द है, जो कि इंग्लिश भाषा के शब्द ‘आइडो-लेतरी’ के अर्थ का पूरक शब्द है, जिसका अभिप्राय ईश्वर की सेवा से है। अर्थात् मूर्ति-पूजा-अर्चना का भाव ‘आईडोल (Idole) वरशिप से है। और पाँच का अर्थ ‘पूर्ण’ या ‘सब’ होना अभीष्ट होगा। पञ्च अर्थ सहज ही सम्पूर्ण का वाचक है, यथा-पञ्च-जनाः, पञ्चोपासना, पञ्च-परमेश्वर, सभी शब्दों में पञ्च शब्द ‘सब’ या ‘सम्पूर्ण’ का द्योतक ठहरता है। और इस पञ्च शब्द की तुलना भी ग्रीक शब्द ‘पैक्टस’ (Punctus) से की जा सकती है, जिसका अर्थ भी सम्पूर्ण होता है।

आधुनिक दृष्टि से प्रोफेसर पाठक पाञ्चरात्र शब्द की परिभाषा इस प्रकार से करते हैं-“सम्पूर्ण विश्व में परिव्याप्त विश्वात्मा परमेश्वर (ईश्वर) की सभी (सम्पूर्ण मानव-समाज) मनुष्यों के द्वारा सर्वतोभावेन समर्पण सहित उपासना”।

यद्यपि यह सत्य है कि उपरियुक्त परिभाषा अभी तक की गई परिभाषाओं से सर्वथा अलग है, फिर भी इस परिभाषा के माध्यम से पाञ्चरात्र शब्द के अर्थ-गौरव को सहज ही हृदयङ्गम किया जा सकता है।

समर्पण -

सम्पूर्णता और समर्पण से ओत-प्रोत यह व्याख्या वैष्णव धर्म दर्शन के मूल तत्त्व की ओर इङ्गित करती है, जिस तरह वैदिक-परम्परा का केन्द्रिय-तत्त्व ‘इष्ट’ है उसी प्रकार से वैष्णव धर्म का केन्द्रिय-तत्त्व ‘समर्पण’ है। और सम्पूर्णता से की गई पूजा का अभिप्राय सर्वतोभावेन स्पष्ट है कि बिना शरणागति के, समर्पण के सम्पूर्णता का भाव आ ही नहीं सकता। यही कारण है कि वैदिक परम्परा का दृष्टि-बोध सर्वत्र वैष्णव आगमों में प्रपत्ति, शरणागति सायुज्य, सारोप्य, सालोक्य, सामीप्य मुक्ति की अवधारणाओं में समाहित हो गया है। और यहीं वैदिक दर्शन का ब्रह्म, पुरुष, परतत्त्व, एवं बहुदेववाद की परिणति का प्रतिफलन एकदेववाद में

और फिर सर्वेश्वरवाद में अन्तर्हित होकर वेद के 'तद् विष्णोः परमं पदम्' से तादात्म्य कर सका। और विष्णु ही नारायण हुए, एवं विष्णु -नारायण से वासुदेव के ऐक्य से जहाँ एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की गई, तथा सर्वेश्वर ही परमेश्वर-परतत्त्व-परवासुदेव के रूप में मान्य हुए। इस तरह पाञ्चरात्र-परम्परा में एकदेव एवं बहुदेववाद की अवधारणा भी पूर्णतया समन्वित दृष्टिगोचर होती है। और सांख्य एवं योग का स्थान-स्थान पर व्यवहारिक दृष्टि से पल्लवन हुआ है।

चतुर्व्यूह-सिद्धान्त का चतुरात्म्य रूप

परव्यूहविभव-त्रिविध ब्रह्म-वैष्णव आगम में त्रिविध ब्रह्म की अवधारणा दृष्टव्य है -परवासुदेव ही वस्तुतः ब्रह्म हैं, परन्तु उनके चतुरात्मक स्वरूप एवं विभवादि का विस्तार 'परवासुदेव' द्वारा ही होता है। वैसे तो जयाख्य संहिता, अहिबुध्न्य संहिता एवं लक्ष्मीतन्त्र में संहिताओं के प्रारम्भ में ही दार्शनिक तत्त्वों का विस्तृत विवरण दिया गया है। उनमें भी परवासुदेव से चतुर्व्यूह और विभवादि विस्तार है, एवं 'पर' वासुदेव से चतुर्व्यूह और विभवावतारों का वर्णन है, परन्तु सात्वत संहिता में सुस्पष्ट रूप से त्रिविध ब्रह्मके महत्त्व एवं स्वरूप का निरूपण किया है। "शाश्वत परम-ब्रह्म की तीन प्रकार से जो आराधना करते हैं, रागादि उनसे दूर ही रहते हैं।"

त्रिविधेन प्रकारेण परमं ब्रह्म शाश्वतम् ।

आराध्यन्ति ये तेषां रागातिष्ठति दूरतः ॥ १

इतने सुस्पष्ट रूप से पर व्यूह विभव की पारस्परिक अभिन्नता और भिन्नता का विवरण अन्यत्र नहीं मिलता। यद्यपि लक्ष्मीतन्त्र में-

गुण कल्पनयाऽध्यस्तो गुणोन्मेषकृतश्रमः ।

मूर्तीभूतगुणश्चेति त्रिधा मार्गोऽयमदभुतः ॥ २

१ सात्वत संहिता १.२३

२ लक्ष्मी तन्त्र २.३९

अहिंबुध्न्य संहिताओं में-

व्याप्तिमात्रगुणोन्मेषो मूर्तीकार इति त्रिधा ।^१

यहाँ भी त्रैविध्य की ओर इङ्गित किया गया है। तथापि उक्त दोनों संहिताएं चतुर्विध ब्रह्म की उपासना को श्रेयस्कर मानती हैं।

सात्वत संहिता में इस त्रिविध ब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा गया कि यह ब्रह्म षाड्गुण्य-विग्रह प्रज्ज्वलित तेज से प्रकाशित है। सर्वत्र पाणि पाद, अक्षि, शिर और मुखादि से युक्त (सर्वव्यापक) यही सर्वाश्रय एक तत्त्व है, जिसको 'पर' कहा गया। वासुदेव पूर्वक अन्य तीन सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, व अनिरुद्ध को मिलाकर चतुर्व्यूह -

एतत्पूर्वं त्रयं चान्यज्ज्ञानाद्यैर्भेदितः गुणैः ।

विद्वितद्व्यूहसंज्ञं सन्निश्रेयसफलप्रदम् ॥^२

बताकर विभव का संक्षेप में उल्लेख सात्वत में है।

विष्णुसहस्रनाम के भाष्यकार पराशरभट्ट^३ के अनुसार त्रिविध ब्रह्म की उपासना 'भागवत' सम्प्रदाय में भी प्रचलित थी। लक्ष्मीतन्त्र और अहिंबुध्न्य संहिता त्रैविध्य का उल्लेख तो करती हैं, पर उपास्य चतुर्व्यूह को मानती हैं। विष्वक्सेन संहिता और उसके तत्त्वत्रयव्याख्यान में अर्न्त्यामी एवं अर्चावतार इन पाँच भेदों के आधार पर 'पर-ब्रह्म' के पाँच प्रकार मानते हैं।^४ रामानुज मत में यही मान्य है। अतः उपासना की दृष्टि से सात्वत त्रैविध्य, लक्ष्मीतन्त्रादि चतुर्विधत्व, एवं विष्वक्सेनाश्रित रामानुज मत पञ्चविध ब्रह्म की उपासना करते हैं।

१ अहिंबुध्न्यसंहिता ५.२०

२ सात्वतसंहिता १.२५-२६

३ भाष्यकार पराशरभट्ट पृ. १८२

४ विष्वक्सेनसंहिता पर वरवरमुनि विरचित व्याख्यान पृ. १०१

यहाँ विचारणीय है कि परवासुदेव और व्यूहवासुदेव के स्वरूप में क्या अन्तर है, तथा उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है? सात्वत संहिता में इस पर बहुत स्पष्टता के साथ पर-ब्रह्म की दो स्थितियों का वर्णन किया है।

१. सततोदित अथवा नित्योदित यह परवासुदेव का स्वरूप है।^१ वह परब्रह्म है

सर्वगं परमं ज्योतिश्मूर्तरमलंहि तत्।

स एव वासुदेवेति मत्वा सम्यग्यजेत् हि तत् ॥^२

सर्वगामी, परम ज्योति, अमूर्त, अमल है, वही परवासुदेव है।^१ वही सततोदित दशा से युक्त परवासुदेव कहा जाता है। अथवा वही नारायण, भूतावास, चिदानन्दघन, सद्ब्रह्मवासुदेव आदि संज्ञाओं से अभिहित है।

व्यूहवासुदेव शान्तोदित दशास्थ माना गया है। नित्योदित वासुदेव में षाड्गुण्य नित्यरूप से विद्यमान होता हुआ शान्तावस्था में रहता है जबकि व्यूहवासुदेव में षाड्गुण्य शान्त से उदित या प्रबुद्ध होता है। परवासुदेव ही चतुरात्म्य कहा गया है क्योंकि व्यूह के रूप में उसकी चतुर्विध अभिव्यक्ति होती है।

चतुरात्मानमव्यक्तं शब्दमूर्तिनिराकृतम्। गुणमात्रैर्विभिन्नञ्च^३

छह गुणों की उदित दशा के कारण ही उनका भेद कहा जा सकता है। वस्तुतः परवासुदेव और व्यूहवासुदेव एक ही पर तत्त्व की दो अवस्थाएँ हैं, वह भी षाड्गुण्य की स्थिति के कारण। फिर दो-दो गुणों की सहायता से क्रमशः संकर्षण, प्रद्युम्न, और अनिरुद्धसहित चतुर्व्यूह सम्पन्न होता है।

विष्णुसहस्रनाम के व्याख्याकार श्रीपराशरभट्ट^२ ने अपने भाष्य में कहा कि कार्य और अकार्य से अनवच्छिन्न षाड्गुण्य के अलौकिक नित्ययोग से विभूतिसम्पन्न, उपाधिरहित स्थिति सम्पन्न मुक्त मनुष्यों के

१ सात्वतसंहिता ८.५२

२ विष्णुसहस्रनामभाष्य पृ. १८२

द्वारा उपासित हैं। व्यूहमुमुक्षुओं की सिसृक्षा सहित स्थिति लयादि में समर्थ, शास्त्र और उसके फल, ध्यानाराधन के आधार हैं। विभव देव, मनुष्य, तिर्यगादि अपने विभव के अनुरूप स्वेच्छा से प्रार्थुभूत होने वाला वर्ग है। इनमें कुछ साक्षात् हैं जैसे मत्स्य, कूर्मादि, कुछ विशिष्टाधिष्ठान सम्पन्न ऋषि आदि हैं जैसे भार्गव, रामकृष्ण, व्यास आदि इनकी शक्ति के आवेश के रूप में प्रकट होते हैं, यथा पुराण आदि, तथा व्यक्तियों में स्वयं अवतीर्ण होते हैं, इस तरह विभवावतारों का चतुर्धा वर्गीकरण हो सकता है। इसी प्रकार से अर्चावतार का समावेश है, जिसमें प्रतिमा में परमात्मा की प्रतिष्ठा की जाती है, और इस प्राण-प्रतिष्ठा से परमेश्वर की प्रतिमा में अवतरण की अभिव्यक्ति हो जाती है। किन्तु लक्ष्मीतन्त्र में इसे पृथक् रूप से निरूपित करते हैं।

पराद्यर्चावतारेऽस्मिन् मम रूप चतुष्टये।^१

परब्रह्म को पाञ्चरात्र परम्परा में 'एकमूर्ति' भी इसी दृष्टि से कहा गया। पर-ब्रह्म की नित्योदित अथवा सततोदित एवं शान्तोदित अवस्थाओं में वासुदेव के ही स्वीकार करने के कारण परात्परवासुदेव और परवासुदेव संज्ञाएं भी प्रचलित हैं। इनमें परवासुदेव चतुर्व्यूह के पहले परवासुदेव हैं। सात्वत संहिता में उपासना मन्त्रों के विवरण के प्रसङ्ग में चतुर्व्यूहको तुर्यादि चार अवस्थाओं से स्पष्ट किया गया है।

परब्रह्म परात्पर वासुदेव हैं, जो षाड्गुण्यकी सततोदित अवस्था में स्थित हैं, वे ही शान्तोदित अवस्था में तुर्यव्यूह अर्थात् वासुदेव हैं, उनकी इस द्विविध अवस्था और एक मूर्ति होने के कारण, एक मन्त्र से उपासना होती है। और अन्य व्यूहों की उपासना चार-चार मन्त्रों से। पर वासुदेव का तुरीय, सङ्कर्षण का सुषुप्ति, प्रद्युम्न का स्वप्न, और अनिरुद्ध का जाग्रत अवस्था गत व्यवहार होता है। तदनुसार उनकी उपासना होती है। यही परात्परवासुदेव अर्थात् परब्रह्म का चतुरात्म्य रूप है।^२ वही तुरीयावस्थातीत

१ लक्ष्मीतन्त्र २.६०

२ सात्वतसंहिता उपोद्धात - डॉ. ब्रज वल्लभ द्विवेदी पृ. २२

तत्त्व है, जो सृष्टि प्रक्रिया की क्रीडा के लिए चतुर्रूप में स्व-विग्रह का स्वयं विस्तार करता है। इसी कारण 'षाडगुण्यविग्रहं देवं' अर्थात् सततोदित षाडगुण्यसम्पन्न परात्पर वासुदेव के विग्रह, एवं अन्य व्यूह अवस्थाओं का भी निर्माण करते हैं। अवतारवाद की विकासपरम्परा यहाँ स्वभाविक रूप से दृढमूल होती गई।

वस्तुतः पाञ्चरात्र सिद्धान्त की मूलभित्ति चतुर्व्यूह सिद्धान्त है, इसकी अवधारणाओं में एक ओर अद्वैत-वेदान्त के तत्त्व बीज रूप में हैं वहीं दूसरी ओर द्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैताद्वैत में प्रतिफलित की गई क्रिया-प्रतिक्रियायें वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्न, और अनिरुद्ध में पहले से ही समाहित है। निश्चय ही इन चारों की तात्त्विक संगति अनुपमेय है। यद्यपि यह भी सत्य है कि व्यूह रूप पाञ्चरात्र आगमों की सर्वथा मौलिक अवधारणा है। इस परम्परा के सिद्धान्त क्रम में पर, व्यूह, विभव, अर्चा, एवं अन्तर्यामी स्वरूप-विवेचन क्रम ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इतिहास की दृष्टि से वैष्णव आगमों के विकास का स्वरूप व्यूहवाद में निहित है। महाभारत के नारायणीयोपाख्यान में सबसे पहले व्यूह-वाद की चर्चा है। यद्यपि यहाँ पर व्यूह के स्थान पर मूर्ति शब्द उल्लिखित है। महाभारत में भीष्म की उक्ति दृष्टव्य है कि-मैंने अपने पिता से यह श्रवण किया है कि स्वयम्भुवमनु के युग (सतयुग) में परमब्रह्म 'नारायण' धर्मपुत्र के रूप में चतुर्धा-उत्पन्न हुए। और उनके रूप - नर, नारायण, हरि एवं स्वयं श्रीकृष्ण कहलाये। (नारायणो हि विश्वात्मा चतुर्मूर्ति सनातनः)

धर्मात्मजः संबभूव पित्रैव मेऽक्याभाषत् ॥

कृते युगे महाराज पुरा स्वयंभुवेऽन्तरे ।

स्वरो नारायणश्चैव हरिः कृष्णस्तथैव च १

महाभारत के शान्ति पर्व में वासुदेव को सनातन परमात्मा कहा गया है-

यो वासुदेवो भगवान्क्षेत्रज्ञो त्रिगुणात्मकः ।

ज्ञेयः स एव भगवाञ्जीवः सङ्कर्षणः प्रभुः ॥

सङ्कर्षणाच्च प्रद्युम्नो मनोभूत स उच्चयते ।

प्रद्युम्नाथोऽनिरुद्धस्तु सोऽहंकारो महेश्वरः ॥^१

यहाँ अन्य एक और सन्दर्भ दृष्टव्य है -

चतुर्भिश्चतुरात्मनं सत्वरस्थं सात्वतां पतिम् ।

यन्दिव्यैर्देवमर्चन्ति गुह्यैः परमनाभिः ॥^२

यदि देखा जाये तो वैदिक वाङ्मय में परतत्त्व के विवेचन के प्रमुख सूत्र पुरुषसूक्त, विष्णुसूक्त, और श्री सूक्त में निहित हैं। 'त्रेधां तं निदधे पदम्' विष्णु के तीन पद-ध्यानवाचक, विभागवाचक, और चरणवाचक हैं। इसमें विष्णु और उनके तीन पद भी चतुर्व्यूह के उत्स के व्यञ्जक हो सकते हैं, क्योंकि सृष्टि प्रक्रिया आयोजना की संगति भी यहीं ठहरती है। पाञ्चरात्र परम्परा में प्रत्येक अवतरण की प्रक्रिया एक दीपशिखा से दूसरी दीपशिखा तक प्रज्वलित होने जैसी है। अतः सृष्टि प्रक्रिया के लिए एक से चार व्यूह बनते हैं और फिर वे सृष्टि, स्थिति, एवं प्रलय तक सतत सक्रिय रहते हैं। वैष्णव आगम में त्रिविध ब्रह्म की अवधारणा भी पल्लवित हुई है।

'उभय विध व्युत्पत्तियोगात् द्विधानतः द्विधः प्रयोगः - व्यूहः व्यूहात्मनश्च व्यूहात्मनः - चतुर्धा वै मूर्तिः' यह उक्ति विष्णु पुराण में कही गई है। मार्कण्डेय पुराण में 'वासुदेवाख्यम् व्यूहः' यह उक्ति भी वासुदेव को व्यूह सिद्धान्त का मूल कारण ठहराती है।

व्यूह शब्द 'वि' उपसर्ग और 'ऊह' धातु से निष्पन्न है, जिसमें घञ् प्रत्यय संयुक्त है। ऊह का तात्पर्य है विस्तार, सम्यक् तर्क, देखना, देह, दूसरे पक्ष में सैन्य, युद्ध अर्थ भी रूपान्तरण, सृजनान्तरण इत्यादि है, और 'वि' का तात्पर्य विशेष अर्थ में होता है। अतः पाञ्चरात्र आगम में व्यूह मात्र

१ महाभारत शान्तिपर्व ३२६.३८.३९

२ महाभारत शान्तिपर्व ४६.१७

विस्तार अर्थ में प्रयुक्त नहीं है। अपितु पाञ्चरात्र-दर्शन का सिद्धान्त-बिन्दु है, और चतुः शब्द के साथ व्यूह का महत्त्व द्विगुणित हो कर इस परम्परा के हृदयस्थल में प्रतिष्ठापित हो गया। कारण कि चतुः शब्द भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वाचस्पत्यम् में चतुर्व्यूह-मूर्ति का नाम-केशव शंख, चक्र, पद्म, गदा सहित और साथ में चौबीस मूर्तियों का विवरण मिलता है।^१ विष्णु संहिता में चत्वारो व्यूहः यस्य सः और आगे चतुर्व्यूह-चतुर्गति भी कहा गया है। भागवत में ध्यान के लिये इनका उपयोग होता है। जिसमें उल्लिखित है कि केशव स्वर्ण की तरह चमकने वाले चक्र को धारण करते हैं, नारायण नीलकमल की तरह चार शंख लिए हैं माधव गदा धारण करते हैं।

वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्न -अनिरुद्ध ये चार रूपों में अभिव्यक्त होकर भी एक हैं अर्थात् परवासुदेव के ही चतुर्रूप हैं। और वासुदेव नारायण भी हैं, विष्णु भी हैं, एवं वृष्णिवंशी श्रीकृष्ण ही वासुदेव हैं। इन्हें ही पूर्ण-ब्रह्म कहा गया है। यह व्यापकता निश्चय ही 'एकोऽहं बहुस्याम्', 'एको सद्विप्रः बहुधा वदन्ति' के अनुरूप है, जो इसी क्रम में सिसृक्षा के लिए अर्थात् सृष्टि-रचना हेतु परब्रह्म नारायण-वासुदेव चतुर्रूप धारण करते हैं। और उनके सृजन क्रम का विस्तार व्यूह है। जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि व्याप्त है। इसी अवधारणा के विस्तृत रूप में विभवावतार, अर्चावतार, आवेशावतार, दशावतार, और चौबीस अवतारों का वर्णन वैष्णव आगमों में एवं पौराणिक साहित्य में विविधता और विस्तार से दिया गया है।

भगवान् सृष्टि के कल्याण के लिए अपने ही आप चार रूपों में सृष्टि करते हैं- व्यूह, विभव, अर्चा एवं अन्तर्धामी अवतार। पाञ्चरात्र सिद्धान्त के अनुसार प्रथम परब्रह्मवासुदेव से सङ्कर्षण नामक जीव, फिर सङ्कर्षण से मन अर्थात् प्रद्युम्न और प्रद्युम्न से अनिरुद्ध जिन्हे अहंकार कहा गया है, की सृष्टि होती है।^२

१ वाचस्पत्यम् पृ. २८७८

२ अहिबुध्न्य संहिता २०.६-१२

जयाख्य संहिता में भगवत्स्वरूप का चित्रण षड्गुणों से युक्त (ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य, तेज) है, जिसका वर्णन महर्षि नारद के पूँछने पर भगवान् सङ्कर्षण करते हैं। अतः पूर्व वर्णित षड्गुणों में से दो-दो गुणों की प्रधानता होने पर तीन व्यूहों की अभिव्यक्ति होती है।

परवासुदेव- परब्रह्म भगवान् षड्गुणऐश्वर्य शाली, चतुर्धाव्यूह-प्रादुर्भाव क्रम स्थिति-सृष्टि के पूर्व में एकाकी स्वरूप-सृष्टि-प्रक्रिया की क्रीडा के निमित्त चार्तुरूप विग्रहोत्पत्ति क्रम में स्थित वासुदेव। स्वरूप वर्णन -श्वेत वर्ण, करोड़ों सूर्य की प्रभा से मण्डित तदैव तेजोमय सूक्ष्म, तमोमय विष्णु के प्रभामण्डल से विनिष्क्रान्त चर्तुर्भुज परमेश्वर वासुदेव हैं।

षाड्गुण्यविग्रहं देवं भास्वज्जवलनतेजसम्।^१

व्यूह-वासुदेव- षड्गुणों से अभिव्यक्त-ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति, एवं तेज-तुरीया अवस्था। कार्य-चतुर्धा विभक्त-चतुर्व्यूह सृष्टि-सूक्ष्म शरीर से सङ्कर्षण का प्रादुर्भाव-चतस्त्रो मूर्तयस्त्वेताः वासुदेवात्मिकाः मताः।^२ सब के आश्रय, सम्पूर्ण जगत् के आधार, प्रभु, जगत्स्वामिन ईश्वर परवासुदेव परमात्मा हैं।^३ जयाख्य संहिता में पुरुष सूक्त की यह उद्भावना परवासुदेव को परब्रह्म की ख्याति से परिव्याप्त करती है। यही कारण है कि परलक्षण से युक्त होने के कारण यह ब्रह्म व्यूह लक्षणों से अवभासित है।

त्रय से सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध बल, ऐश्वर्य और तेज आदि गुणों युक्त वासुदेव में परिव्याप्त हैं। तथा ये व्यूह संज्ञायें उस ब्रह्म अर्थात् परवासुदेव में निश्रेयस, फलप्रदायिनी, मोक्षदायिनी होकर व्याप्त हैं। अतः प्रत्येक संहिता में कहा जाता है कि प्रत्येक व्यूह ही विष्णु है। और वह षड्गुणों से स्वयं ये युक्त है, जिनमें से प्रत्येक दो की प्रतीति से व्यूह की अभिव्यक्ति होती है।

१ सात्वत संहिता १.१७.-२८

२ नारदीय संहिता १.४७ -४९ चतुर्भूति प्रतिष्ठाधिकार वर्णन

३ जयाख्य संहिता ४.७६.-८२

व्यूहों के नाम वासुदेव के बड़े भाई सङ्कर्षण और वासुदेव के पुत्र प्रद्युम्न तथा प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध हैं। प्रत्येक व्यूह प्रकट होने के बाद १०० साल के लिए अव्याप्त रहता है। या यह कह सकते हैं कि मनुष्यों के १६०० वर्ष होते हैं।

यह प्रलय से सृष्टि रचना के पूर्व का काल होता है। तब यदि सङ्कर्षण और प्रद्युम्न सृष्टि प्रक्रिया में संलग्न होते हैं, तो अनिरुद्ध अव्याप्त होते हैं। इस तरह एक व्यूह ३०० वर्ष के लिए सक्रिय होता है। जो कि मनुष्यों के ४८०० वर्ष होते हैं। इस कारण अहिबुध्न्य संहिता में व्यूहों की शक्ति को अधिकाधिक महत्त्व के साथ वर्णन किया है। और अन्य संहिताओं में भी इस तथ्य की पुष्टि की गई है।

वासुदेव को ब्रह्म होने के कारण ज्ञान पूर्वक सृष्टि रचना करते हुए भी प्रलय और स्थिति की अवधारणाओं का ध्यान रहता है। तुरीया अवस्था में वासुदेव निष्कल होकर भी सृजन क्रम को सम्पन्न कराते हैं अर्थात् सम्पूर्ण रचना कार्य स्वतः सम्पन्न हो जाता है। बल का अर्थ सामर्थ्य शक्ति से है, तात्पर्य यह कि अनन्त क्रिया शक्ति, लक्ष्मी तन्त्र के अनुसार इच्छा-सङ्कल्प शक्ति से धारणा सामर्थ्य - अर्थात् सभी वस्तुओं को धारण करने की क्षमता एवं शक्ति कही गई।

ऐश्वर्य का अर्थ है स्वामित्व - श्री और भूति की अनन्त क्रिया शक्ति (लक्ष्मी तन्त्र के अनुसार) इच्छा व सङ्कल्प ही इसके अन्तर में निहित हैं। इसीलिए इच्छावशक्ति और क्रिया शक्ति की सक्रिय भूमिका ऐश्वर्य गुण में निहित है। व्यूहवासुदेव की शक्तियाँ श्री और भूति कही गई हैं। वासुदेव सदैव तुरीयावस्था में होते हैं।

सङ्कर्षण में दो गुणों की प्रधानता - ज्ञान तथा बल गुणों का प्राधान्य - सुषुप्ति अवस्था। इनकी शक्ति-शान्ति या कीर्ति कही गई है।

स्वरूप - रक्त वर्ण, कार्य-सृष्टि कार्य, शास्त्रोपदेश, शास्त्र प्रवर्तन। पाञ्चरात्र मात्र नहीं वरन् वेदों में निहित संन्यास धर्म और एकान्तिन मार्ग का शास्त्र प्रवर्तन भी करते हैं।

प्रद्युम्न

प्रमुख दो गुण - ऐश्वर्य और वीर्य गुणों का प्राधान्य - स्वप्नावस्था में रहते हैं। इनकी

शक्ति - पीतसरस्वती या जया नाम से जानी गई। कार्य - सृष्टि स्थिति, संवर्धन, संरक्षण, एवं शास्त्र चर्चा। तथा पाञ्चरात्रिन के धार्मिक कृत्यों के सम्बन्ध में निर्देश भी देते हैं।

अनिरुद्ध

दो विशेष गुण - शक्ति और तेज का उद्रेक विद्यमान - जाग्रत अवस्था, शक्ति- कृष्णरति या माया। अभिमानी देवता। कार्य - आत्मा के सर्वोच्च ज्ञान की उपलब्धि का फल, एवं सृजन क्रिया। यद्यपि संहिताओं में जीव, मन, और अहंकार के विचार दर्शन के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। इसीलिए अहंकार को अनिरुद्ध जैसे पवित्र व्यूह के साथ जोड़ने की स्वीकृति लक्ष्मी तन्त्र में नहीं मिलती है।^१

छान्दोग्य उपनिषद् में ब्रह्म के लिए 'स एकधा भवति त्रिधा भवति' कह कर ब्रह्म के एक से तीन होने का वैचारिक सम्प्रेषण व्यूहवाद के सिद्धान्त को गति देता प्रतीत होता है।^२

व्यूहान्तर - वासुदेवादयो देवाः प्रत्येकं तु त्रिधा।

केशवादिस्वरूपेण विभजन्ति स्वकं वपुः।

एतद्व्यूहान्तरं नाम पञ्चरात्राभिः शब्दितम् ॥^१

१ लक्ष्मीतन्त्र ६.९-१४

२ छान्दोग्य उपनिषद् ७.२६.२

व्यूहान्तर में बारह देवताओं का आर्विभाव होता है। सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, और अनिरुद्धव्यूहों का तीन-तीन स्वरूपों में आर्विभाव होता है। जिनमें -

क्र.	चतुर्व्यूह	व्यूहान्तर देव	शक्तियाँ
१.	व्यूहस्थ वासुदेव	केशव, नारायण, माधव	श्री, वागीश्वरी, कान्ति
२.	सङ्कर्षण	गोविन्द, विष्णु मधुसूदन	क्रिया, शान्ति, विभूति
३.	प्रद्युम्न	त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर शक्तियाँ	इच्छा, प्रीति, रति
४.	अनिरुद्ध	हृषीकेश, पद्मनाभ दामोदर	माया, धी, महिमा ^२

विभवावतार- अनिरुद्ध से ३८ विभवों का आर्विभाव होता है। और इन विभवों से अनेक विभवान्तर आर्विभूत होते हैं। सात्वत संहिता के आधार पर अर्हिबुध्य संहिता एवं लक्ष्मीतन्त्र में लगभग मतैक्य है।

अर्चावतार- मन्दिरों में प्रतिष्ठित प्रतिमा रूप में होकर भी ईश्वर का षाड्गुण्य सम्पन्न एवं चिन्मय अवतार होता है। इसी कारण इस परम्परा में अर्चा, अर्चक और अर्चना अर्थात् उपासना को स्थान-स्थान पर सैद्धान्तिक प्रतिष्ठा प्राप्त है।

लक्ष्मीतन्त्र में ब्रह्म और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं हैं^१ वासुदेवः परं ब्रह्म नारायणमयं महत्। यहाँ वासुदेव-नारायण ही परंब्रह्म हैं।^२

१ लक्ष्मी तन्त्र ४.२७-२८

२ लक्ष्मीतन्त्र २०.२५

जीव-तत्त्व एवं सृष्टि -प्रक्रिया - वैष्णव आगम में जयाख्य संहिता के अनुसार-शुद्ध सृष्टि या शुद्ध सर्ग प्रथम कहे गये हैं।

२ प्राधानिक सर्ग, ३ ब्रह्म सर्ग -शुद्धसर्गमहं देव

सर्गद्वयस्य चैवास्य यः परत्वेन वर्तते ॥ ३

इस सन्दर्भ में जयाख्य, अर्हिबुध्न्य, और लक्ष्मी तन्त्र में विशेष रूप से सृष्टि प्रक्रिया के विवेचन को दार्शनिक दृष्टिकोण से उल्लिखित किया गया है। वस्तुतः सृष्टि संरचना के मूल में चतुर्व्यूह सिद्धान्त की महनीय भूमिका है। वासुदेव परमतत्त्व हैं उनसे सङ्कर्षण जीव तत्त्व हैं और उनसे प्रद्युम्न मन है एवं उनसे अनिरुद्ध अहंकार हैं। इसी क्रम को गति देते हुए सृजन कार्य हेतु ज्ञान एवं आनन्द स्वरूप वासुदेव से अच्युत का आविर्भाव हुआ। अच्युत से भास्वर विग्रह सत्य की उत्पत्ति हुई तदनन्तर सत्य से स्वयं पुरुष का प्रादुर्भाव हुआ। अतः वासुदेव से अच्युत, सत्य और पुरुष का अवतरण हुआ। जयाख्य संहिता में स्पष्ट है कि -

प्रकाशरूपीभगवानच्युतश्चासृजद्विज।

क्षोभयित्वा स्वमात्मानं सत्ये भास्वरविग्रहम् ॥

स चिन्मयाख्य उत्पाद्यात्मानमात्मना।

पुरुषाख्यमनन्तं च प्रकाशप्रसरं महत् ॥ ४

व्याख्या करते हुए कहा गया कि वस्तुतः तीन होते हुए भी वासुदेव से इनका पृथक् अस्तित्व नहीं है कारण कि वासुदेव अन्तर्यामी हैं। सङ्कर्षण जीव तत्त्व के पोषक हैं। जिस प्रकार वैदिक दर्शन में जीव को नित्य कहा गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में इस सम्बन्ध में दृष्टव्य है कि -

१ लक्ष्मीतन्त्र १५.९

२ लक्ष्मीतन्त्र १५.९

३ जयाख्य संहिता ४.१

४ जयाख्य संहिता ४.४-७

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो १

पाञ्चरात्र आगमों में भी जीव का नित्यत्व स्वीकार किया गया है। अतः जन्म एवं मृत्यु का सम्बन्ध जीव का नहीं शरीर का है। यद्यपि इस सन्दर्भ में आदि शङ्कराचार्य ने सङ्कर्षण संज्ञक जीव का वासुदेव से आविर्भाव होने से अनित्यत्व का दोष माना है। इस कारण से पाञ्चरात्र आगम को अवैदिक एवं अप्रमाणिक भी कहा है। परन्तु लक्ष्मी तन्त्र में जीव के स्वरूप के सम्बन्ध में विशेष सिद्धान्तों को रेखाङ्कित किया है, और जीव को चिच्छक्ति कहा है।

चिच्छक्तिर्विमला शुद्धा चिन्मयानन्दरूपिणी ।

अनाद्यविद्ययाविद्धमित्थं संसरति ध्रुवम् ॥ २

यहाँ पर जीव नित्यत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्व, अनणुत्व, आनन्त्य, और समत्त्व रूप है। अतः ईश्वर यदि -क्रीडते रमया विष्णुः परमात्मा सनातनः है तो जीव-

पुरुषो भोक्तृकूटस्थः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ।

अंशतः प्रसरन्त्यस्मात्सर्वे जीवाः सनातनाः ॥ ३

यहाँ यह विचारणीय तथ्य है कि वैष्णव दर्शन में जीव को अणु माना गया है। इस सन्दर्भ में लक्ष्मीतन्त्र में जीव स्वरूपतः अनणु कहा गया है। तथापि जीव लक्ष्मी का सङ्कोच कहा गया है। सङ्कोच भी त्रिविध है, अतः स्वरूप सङ्कोच से वह अणु हो जाता है।

स्वरूपसङ्कोचेनाणुरूप इत्युक्त्वा जीवस्य स्वाभाविकं विभुस्पत्वमिति न मन्तव्यम् तस्याणुस्वरूपत्वस्यानेकप्रमाणसिद्धत्वात् ॥ ४

१ भगवद् गीता २.२०

२ लक्ष्मी तन्त्र ३.२६

३ लक्ष्मी तन्त्र ७.१०-११

४ लक्ष्मीतन्त्रटीका ७

और अहिर्बुध्न्य संहिता में इस स्वरूपसङ्कोच को आकार-तिरोधान कहा गया है। आकारस्य तिरोधानादणुत्वं पुंस इष्यते।^१

सृष्टि-वैदिक सृष्टि प्रक्रिया में पृथ्वी, अन्तरिक्ष, और स्वर्ग का अत्यधिक महत्त्व है। पृथ्वी को भूमि, क्षम्, ग्मा, मही, पृथ्वी, उर्वी, उत्ताना अपारा, आदि विभिन्न संज्ञाओं एवं सम्बोधनों से अभिहित किया गया है। पृथ्वी की तुलना चक्र से की गई है^२, शतपथ ब्राह्मण में इसे स्पष्टतः वृत्ताकार या परिमण्डलात्मक कहा गया है।^३ इसी भौति दिव् को व्योमन्, रोचन्, नाक, कहा गया है। उसके विभाजन के लिए सानु, विष्टप् पृष्ठ नाकस्य पृष्ठ कहा गया है।^४ त्रिरोचना द्वारा उसके तीन भेद भी वर्णित हैं। आकाश और पृथ्वी के युग्म को रोदसी, क्षोणी, द्यावा पृथ्वी आदि कहा गया है। अन्तरिक्ष को रजस् भी कहा गया है। कभी जलमय^५ कभी अन्धकार पूर्ण^६ वर्णित किया गया है।

जगत् के निर्माण अथवा सृष्टि के सम्बन्ध में या तो उसे किसी देव-तत्त्व से उत्सृष्ट माना अथवा प्राकृतिक उद्भव स्वीकार किया। इन्द्र ने भूभाग स्वर्ग के उच्च शिखर का निर्माण किया।^७ विष्णु ने पृथ्वी के क्षेत्रों को मापा और ऊँचाई के आवास को स्थिर किया।^८

सृष्टि के सम्बन्ध में नासदीय सूक्त में^९ सत्त और असत्त की दृष्टि से सन्देह व्यक्त किया गया है। हिरण्यगर्भसूक्त में एकमात्र देव जो प्राणि मात्र के

- १ अहिर्बुध्न्यसंहिता १४.१८
- २ ऋग्वेद १०.८९.४
- ३ वैदिक माइथोलाजी पृ. १५
- ४ ऋग्वेद १.१२५.५
- ५ ऋग्वेद १.१२४.५
- ६ ऋग्वेद १.३५.२
- ७ ऋग्वेद ६.४७.३
- ८ ऋग्वेद १.१५४.१
- ९ ऋग्वेद १०.१२.९.

सबसे पहले उत्पन्न हुआ उसने इस पृथ्वी और द्यौ को धारण किया । हिमालय, समुद्र, दिशाएं उसके अङ्ग हैं ।^१ इस सूक्त में सर्वशक्तिसमर्थ एक ही देवतत्त्व से सृष्टि का प्रारम्भ हुआ । अधमर्षणसूक्त में अभितप्त तपस् सत्य ऋत, और जलयुक्त समुद्र उत्पन्न हुआ । इस समुद्र से दिन रात की सृष्टि हुई । सृष्टि (धाता) से सूर्य, चन्द्रमा, द्युलोक पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वः को पूर्व के अनुसार उत्पन्न किया ।^२ ऋग्वेद में विश्वकर्मा^३ से सम्बद्ध सूक्तों में विश्वकर्मा द्वारा अनेक भुवनों का निर्माण किया गया, वह विश्व-चक्षु, विश्व-मुख, विश्व-बाहु, एवं विश्व-पात् है, तथा अपनी भुजाओं से जिस एक देव ने द्यावा और भूमि की सृष्टि की । उसी विश्वकर्मा ने दिव, पृथ्वी, देव, असुर, जल को सर्वप्रथम प्रगट किया ।

ऋग्वेद के उक्त सभी सन्दर्भों से सृष्टि की प्रक्रिया का बोध होता है । जिसके अनुसार पृथ्वी, दिव, अन्तरिक्ष, जल, काल, सूर्य, चन्द्र, दिन-रात्रि, भुवन आदि किसी एक देव-तत्त्व से उत्पन्न हुए । सृष्टि की यह परम्परा पूर्ववत् चली आ रही है । प्राणि मात्र, देव, मनुष्य, वनस्पति आदि भी इसी प्रकार उत्पन्न हुए । इस दृष्टि के साथ पुरुषसूक्त में अधिक स्पष्ट, दार्शनिक दृष्टि से भी सोद्देश्य एवं सुविस्तृत सृष्टि प्रक्रिया का विवरण मिलता है । जहाँ एक विराट् तत्त्व है जिसकी विराटता का अनुभव कराने के लिए उसके सहस्रत्रसिर, सहस्रत्रनेत्र, सहस्रत्रपाद कहे गये, वह पृथ्वी से भी विस्तृत है । काल की सत्ता का मापक और उससे परे भी यही पुरुष है । वह स्वयं अमृत ही नहीं अपितु अमरत्व का तथा अन्न से बढ़ने वालों का स्वामी है । इसके एक चौथाई पाद में सारे भुवन हैं और तीन पाद द्युलोक में हैं । ऋतु चक्र का प्रवर्तन भी इसी से हुआ । यज्ञ भी यही है । उस सर्वहुत यज्ञ से वायव्य, आरण्यक एवं ग्राम्य पशु उत्पन्न हुए । उसी से ऋक्, साम, और यजुष् उत्पन्न हुए । और अन्य जीव भी उत्पन्न हुए । समाज के वर्गीकरण का

१ ऋग्वेद १०.१२१

२ ऋग्वेद १०.१९०

३ ऋग्वेद १०.८०.३, १०.८१

आधार पर चतुर्वर्ण पुरुष के, शरीर के अङ्ग मुख, बाहु, जाँघें और पैर से उत्पन्न हुए। उसके मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि तथा प्राण दिशाएं तथा लोकों की रचना हुई।

पुरुषसूक्त का यह संक्षिप्त विवरण पाञ्चरात्र आगम की सृष्टि प्रक्रिया के बहुतनिकट है। यह निकटता आधारभूत तात्त्विक आधार पर है। यह तथ्य अवश्य ध्यातव्य है कि पाञ्चरात्र परम्पराकी दृष्टि तो इन्हीं मूल तात्त्विक सन्दर्भों की ओर दृष्टिपात करती प्रतीत होती है। पर भी पाञ्चरात्र संहिताओं में उल्लिखित सृष्टि प्रक्रिया में, संहिताओं के प्रबन्धन का समय पर्याप्त परवर्ती काल का होने के कारण और आगमिक दृष्टि से सृष्टि प्रक्रिया के सिद्धान्तों के प्रवर्तन के फलस्वरूप यत्किंचित अन्तर दिखाई देता है। पर एक विराट् तत्त्व से सम्पूर्णसृष्टि एकायण परम्परा के निकट है। शुद्ध-सर्ग एवं अशुद्ध अथवा प्राधानिकसर्ग का आधार यही एकायन परम्परा के अनुकूल है। न केवल पुरुषसूक्त अपितु अन्य सूक्त में एक देव तत्त्व से सृष्टि की उत्पत्तिका उल्लेख अनेक स्थलों पर प्राप्त होते हैं। देव-तत्त्व के नाम अलग हो सकते हैं, परसृष्टि का आधार एक ही है।

यही कारण है कि एक के बाद एक सृष्टि की क्रिया शक्ति काम करती है। तब अशुद्ध अध्वा अर्थात् सृष्टि, जो अस्पष्ट होती है। सुषुप्ति अवस्था में सङ्कर्षण संसार को धारण करते हैं। अतः बीज रूप में एवं सूक्ष्म धरातल पर सर्जन कार्य अशेष भुवनाधार, सङ्कर्षण करते हैं। नियमानुसार ब्रह्माण्डव्यापी वैश्विक गुण ही ज्ञान कहे गये हैं, अतः बल गुण प्रधान होने के कारण उन्हें बलदेव भी कहा गया। प्रद्युम्न के माध्यम से प्रकृति-पुरुष) पहली बार सृष्टि प्रक्रिया में ऐश्वर्य के द्वारा प्रगट होते हैं। इस प्राधानिक सर्ग को वैद्य अथवा जड सर्ग भी कहते हैं, जहाँ बीज उत्पादक और ब्रीहिकण उत्पाद्य होते हैं और अनिरुद्ध इस मिश्र सृष्टि को व्यक्त करते हैं। अथवा अपनी शक्ति से ब्रह्माण्ड के शासक तथा स्वामी बन जाते हैं। इस प्रकार से विष्वक्सेन संहिता के अनुसार अनिरुद्ध सृजन, प्रद्युम्न स्थिति, और सङ्कर्षण प्रलय करते हैं। जयाख्य संहिता में सृष्टि क्रम-ब्रह्मसर्ग, प्राधानिकसर्ग, और शुद्धसर्ग से है।

ब्रह्मसर्ग में विष्णु की नाभि से ब्रह्मा हुए, उनको मैं हूँ (अस्मि) की प्रतीति हुई जिससे अभिमान से रजोगुण का उद्रेक होने से विविध सृष्टि रचना हुई, परन्तु रजोगुण के आधिक्य से वे उसे धारण नहीं कर सके। तो भगवान् वासुदेव ने उसे योगनिद्रा में ग्रहण किया। और ब्रह्मा के रजोगुण के आधिक्य के फलस्वरूप प्रसृत स्वेद बिन्दुओं से असुर मधु और कैटभ उत्पन्न हुए। तब उन के कारण जगत् और वेदों की दुरव्यवस्था से भयाक्रान्त ब्रह्माजी ने ईश्वर की स्तुति की। तदुपरान्त उन्होंने प्रसन्न होकर राक्षसों का वध और वेद ब्रह्माजी को प्रदान किए। यह ब्रह्मसर्ग है। शुद्धसर्ग में वासुदेव से अच्युत, और अच्युत से भास्वर सत्य का आर्विभाव हुआ। इसीक्रम में सत्य ने स्वयं को पुरुष रूप में रूपान्तरित किया। अतएव सृष्टि के सर्जन, पालन हेतु अर्न्त्यामी वासुदेव इन त्रिदेव में आर्विभूत होकर जीवों को मुक्ति प्रदान करते हैं।

प्राधानिकसर्ग-में सांख्योक्त एवं त्रैगुण्यसहित (सत्त्व, रजस्, तमस्) सृष्टि रचना की जाती है। प्रथम तो अनादि, अजन्मा अव्यक्त से सत्त्व, रजस्, तमस् इस त्रिगुण के योग उत्पादक तत्त्व हुए। सांख्य में प्रकृति से जड़तत्त्व हुए, और महत् से अहंकार, बुद्धि से प्रकाशात्मा, विकृत्यात्मा, और भूतात्मा के माध्यम से पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, पञ्चतन्मात्राएँ और पञ्चमहाभूत हुए। जिन्हें प्राधानिक सर्ग में उत्पाद्य कहा गया। अहिबुध्न्य संहिता में और लक्ष्मीतन्त्र में शुद्धसृष्टि एवं अशुद्धसृष्टि अथवा शुद्धेतर सृष्टि का विवेचन किया गया है। शुद्धसृष्टि में प्रलयकालीन ब्रह्म और शक्ति के उन्मेष से क्रियाशक्ति एवं भूतिशक्ति द्वारा श्रीलक्ष्मी की सौदर्शनीकला से अनुलोमप्रवृत्ति के द्वारा सर्ग तथा सृष्टिप्रक्रिया होती है। और प्रतिलोमप्रवृत्ति से प्रलय होता है। शुद्धेतरसृष्टि के अर्न्तगत मुख्यसृष्टि के दो अवान्तर भाग होते हैं-जिनमें माध्यमिक सृष्टि से क्रियाशक्ति व भूतिशक्ति कार्यरत होती हैं। भूतिशक्ति से व्यूह और विभव आदि का आर्विभाव भव सागर को पार करने होता है। इसके तीन प्रकार होते हैं-पुरुष, काल, एवं गुण

पुरुषश्चैव कालश्च गुणश्चेति त्रिधोच्यते।^१

पुरुष को चतुर्वर्णों के स्त्रीपुरुषात्मक-युग्म-समष्टि कहा गया। जिसमें प्रद्युम्न के मुख से सङ्कल्प मात्र से ब्राह्मण मिथुन उत्पन्न हुआ। हृदय से क्षत्रिय मिथुन, उरुस्थल से वैश्ययुग्म, और चरणों से शूद्र मिथुन की उत्पत्ति हुई।^२ इसी से प्रद्युम्न के ललाट, भ्रू एवं कर्ण से नियति, काल, तथा गुणों की सूक्ष्म अवस्था^३ अभिव्यक्त हुई। इस तरह उसके संवर्धन के कार्य को अनिरुद्ध नियति, काल एवं गुणों के आधार पर सृष्टि की प्रयोजन सृष्टि करते हैं।

अपर सृष्टि-सांख्य दृष्टि पर आधारित है जिसमें वैकारिक, तैजस, और भूतादि के माध्यम से सृष्टि प्रक्रिया होती है।^४ इसके अतिरिक्त इसी क्रम में लक्ष्मीतन्त्र में शुद्ध सृष्टि में-चातुरात्म्यसृष्टि, चातुर्यूह-सृष्टि, व्यूहान्तर, विभव और अर्चा को सृजन कार्य का माध्यम माना गया है। अशुद्धसृष्टि-यहाँ आद्य, द्वितीय, एवं अन्तिमपर्व में अशुद्ध सृष्टि की रचना प्रक्रिया का विवरण है। प्रथम पर्व में सिसृक्षाशक्ति और त्रैगुण्य से महालक्ष्मी, महामाया, और महाविद्या का आविर्भाव हुआ।

तब प्रद्युम्न और महालक्ष्मी के अंश से मानसधाता तथा श्री सङ्कर्षण और महामाया के अंश से रुद्र तथा त्रयी एवं अनिरुद्ध और महाविद्या से विष्णु तथा गौरी आविर्भूत हुए। यहाँ भी राजस ब्रह्मा और तामस त्रयी, तामस रुद्र एवं सात्त्विक गौरी तथा सात्त्विक विष्णु और राजसश्री के दाम्पत्य युग्म की अवधारणाएं की गई।

द्वितीयपर्व में ब्रह्मा का प्रयोजन प्रकृति की सृष्टि एवं इन दम्पतियों द्वारा क्रमशः अण्ड की सृष्टि, उसका भेदन, एवं मध्य में स्थित प्रधान का

- १ अहिबुध्न्य संहिता ६.८
- २ अहिबुध्न्य संहिता ६.१३
- ३ अहिबुध्न्य संहिता ६.१४
- ४ अहिबुध्न्य संहिता ७.१७

रक्षण सृजन कार्य किया।^१ तृतीयपर्व में सांख्य दर्शन के तत्त्वों की अवधारणाओं को पुष्ट करते हुए अन्तःकरण, ज्ञानेन्द्रियों, एवं कर्मेन्द्रियों के लक्षण तथा व्यापारों को वैशिष्ट्य के साथ रेखाङ्कित किया है।^२ अतएव यह सर्वविध स्पष्ट है कि पाञ्चरात्र आगमों की दृष्टि मुख्यतः वैदिक दर्शन के तत्त्वों के निकटतम होते हुए भी अपने वैशिष्ट्य को दर्शाती है। जहाँ पर 'इष्ट' का अभीष्ट कार्य सृष्टि रचना है। और जीव तथा जगत् का अभीष्ट 'इष्ट' है।

ज्ञान, योग, क्रिया एवं चर्यापाद संहिताओं के विशिष्ट मन्तव्य का आकलन कराते हैं। मूलतः ज्ञानपाद में परतात्त्विक सन्दर्भ, संसार की प्रकृति एवं सृष्टि प्रक्रिया का प्रयोजन विविध प्रकार से वर्णित है। योगपाद में परतत्त्व अर्थात् विष्णु, नारायण, वासुदेव से जगत् का सम्बन्ध, साधन, मोक्ष, मोक्षकी प्रकृति एवं वेद, दर्शन और उपनिषदों के आधार पर योग, उपासना तथा मोक्षोपाय का विवेचन स्थान-स्थान पर दृष्टव्य है। क्रिया पाद में जीव का लक्ष्य, जैसे पञ्चकालिक सर्पया, वैदिक ऋचाओं से अनुष्ठान क्रम, अर्चा, अर्चक और अर्चना के विभिन्न स्तर एवं महत्ता, भक्ति, शरणागति, तदाकारवृत्ति, अतः न्यास-योग, मन्त्र-विधान, मन्दिर-वास्तु मूर्ति के विविध पक्ष इत्यादि विषयों पर गम्भीरता से चिन्तन किया गया है। इसी भाँति चर्यापाद में भी अभीष्ट सिद्धि हेतु विविध उपाय वर्णित हैं-जैसे मण्डलादि विधान, मुद्राओं के विभिन्न प्रकार, अर्चक की दिनचर्या, परार्थपूजा वैदिक यज्ञादि का विवरण, विष्णु, नारायण, वासुदेव महिमा, स्तुति इत्यादि विषयों का अलग-अलग संहिताओं में वर्णन है। जिनमें सर्वत्र वैदिक दृष्टि का प्रभाव परिलक्षित होता है।

साधन विचार -यहाँ साधन अथवा साधना की दृष्टि से चार अवस्थाएँ हैं।

१. साधक का इष्ट के प्रति साधना का सम्बन्ध प्रारम्भ होता है।

१ लक्ष्मी तन्त्र ५.१६-१८

२ लक्ष्मी तन्त्र ५.८१-८२

२. जब साधक इष्ट के लिए दीक्षा ले कर साधना के सोपानों को गन्तव्य बनाता है और अनायास ही इष्ट की कृपा का पात्र होने की अनुभूति से साधना की कठिन भूमिका में पहुँच रहा होता है।
३. साधना और साधक के तादात्म्य से इष्ट साधक को देख रहे होते हैं एवं साधना की परिपक्वावस्था में साधक स्वतः सिद्धावस्था को पा लेता है।
४. पञ्चकालिक सर्पया की भावभूमि में उतर कर साधक इष्ट को देखते हुए प्रतीति करते हुए, ईश्वर भूमि में होता है, जहाँ साधक दृष्टा और जाग्रत है। तब इष्ट उसमें समाहित होता है। और तब साधन छूट जाते हैं, साधक साधना और इष्ट के तादात्म्य से परिपूर्ण साधक सब में परमात्मा को देखता हुआ, अर्चा, अर्चक और अर्चना के ऐक्य को साकार कर देता है। पाञ्चरात्र संहिताओं की यही अभीष्ट विषय -वस्तु है। जो पुरुषार्थ चतुष्टय की अभिव्यक्ति देती है। और प्रणव शब्द को शब्दब्रह्म के महनीय स्वरूप में प्रतिष्ठित करती हैं

मोक्ष विचार - इस सम्बन्ध में संहिताओं की दृष्टि से पहले भी विचार किया जा चुका है। शरणागति छह प्रकार की कही गई है। अनूकूलता का सङ्कल्प, प्रतिकूलता की वर्जना, ईश्वर रक्षा करेगा यह दृढ़ विश्वास, भक्ति की गोपनीयता का रक्षण, आत्म निक्षेप अर्थात् समर्पण, प्रपत्ति, शरणागति की सर्वविध धारणा, और कार्पण्य, तात्पर्य यह कि भगवान् की प्राप्ति के लिए प्रार्थना-अर्चना करते हुए सदैव दैन्य भाव होना चाहिए। मुमुक्षु जब अहन्ता का त्याग करते हुए वासुदेव की परम शरणागति में अपने को समर्पित कर देता है, और भगवद्कृपा का अधिकारी हो जाने पर सान्निध्य, सालोक्य, सारोप्य, और सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है। अतएव ऋग्वेद की शाश्वत वाणी को सार्थक करता है-

तद् विष्णोः परमं पदं, सदा पश्यन्ति सूरयः ।

प्राप्यते परमं धामं यतो न वर्तते पुनः ॥



तृतीय अध्याय

वैष्णव आगम में आचार विधि एवं मन्त्र-वर्ण विचार

ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक वाङ्मय में 'भक्ति' और भज् धातु से निष्पन्न होने वाले शब्दों की संख्या प्रचुर है, परन्तु वे सभी भक्ति शब्द के उस अर्थ को द्योतित नहीं करते जो उपासना, अर्चा तथा भक्ति पद से वैष्णव आगम साहित्य में ग्रहीत है। एक देववाद अथवा बहुदेववाद के रूप में स्वीकृत सूक्तों में सर्वत्र एक सहज समर्पण की धारा दृष्टि-गोचर होती है पूज्य और पूजक का सम्बन्ध वेद की ऋचाओं का मुख्य स्वर है। यही कारण है कि मन्त्र-दृष्टा, ऋषि, अभिव्यक्ति की लयात्मक व्यवस्था छन्द तथा वक्तव्य के लक्ष्य देवता, प्रत्येक ऋचा से सम्बद्ध है। प्राकृतिक शक्तियाँ तथा अन्य दृष्ट-तत्त्वों को प्रत्यक्ष देव स्वीकार कर उनकी मन्त्रात्मक-स्तुति ऋग्वेद में सहज दृष्टव्य है।

काल, सामाजिक परिवेश तथा वेद की पौराणिक व्याख्या के सन्दर्भों में प्राचीन आगमशास्त्र में, विशेषतः एकायन-आश्रित पाञ्चरात्र वैष्णव-आगम में मूर्ति और अर्चा के आधार पर उपासना-परक क्रियाएं प्रवर्तित हो गईं। इसमें मुख्य रूप से विभिन्न शुद्धियों को जोड़ा गया जो प्रतिमा, ब्रह्माण्डीय परिवेश एवं जीवावरण सम्बन्धी शुद्धियाँ प्रतिप्रदित की गईं हैं। आगम के प्रवर्तक एवं संवर्धक आचार्यों ने वैदिक सम्पर्ण की मूलधारा से अपने को अविच्छिन्न एवं आश्रय के रूप में सम्बद्ध बनाए रखने के लिए इन सभी उपचारों और क्रियाओं में वेद-मन्त्रों का अत्यधिक प्रयोग किया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि जिस प्रकार विज्ञान के सत्य सार्वभौम होते

हैं, उसी प्रकार आध्यात्म-विज्ञान की अपनी सार्वलौकिक प्रतिष्ठा है। ज्ञान वस्तु के अधीन रहता है और उपासना उपासक की इच्छाधीन होती है; अतः उपासक और उपासना में उपास्य-तत्त्व का रूप अधिक निकट है। अर्चक अनुभूति से तादात्म्य स्थापित करता है। इसीलिए आगम ऐसा परिपूर्ण ज्ञान है जो सर्वतोमुखी, सम्यक् विकास यात्रा प्रारम्भ कराता है।

पाञ्चरात्र संहिताओं में विषय-वस्तु की दृष्टि से मुख्यतः विषयसामग्री ज्ञानपाद, योगपाद, क्रियापाद और चर्यापाद में प्राप्त होती है। पारमेश्वर, जयाख्य, अर्हिबुध्न्य, सनत्कुमार, सात्वत, सङ्कर्षण, और विष्णु संहिताएँ ज्ञान, दर्शन और पाञ्चरात्र के सिद्धान्त पक्ष को विवेचित करती हैं। जिनमें परतत्त्व, जीवतत्त्व, सृष्टिप्रक्रिया, साधन-योग, न्यास, मुद्रा, ध्यान, व्रत, तपश्चर्या, शस्त्रीय विधि-विधान भगवद्-निष्ठा, समर्पण, प्रपत्ति और शरणागति, परमात्म स्वरूप मूर्ति की सेवा, सर्पया संहिताओं में वर्णित आचार क्रमानुसार दी गई है। और सिद्धान्त पक्ष के विवेचन में विष्णु-नारायण-वासुदेव के ऐक्य की प्रतिष्ठा करके वैदिक सिद्धान्त के अनुरूप एकदेववाद की पुष्टि की गई है। इसके साथ ही विभवादि अवतारों के माध्यम से वेदों में वर्णित बहुदेववाद की सर्वविध पुष्टि की गई है। सृष्टि प्रक्रिया में सर्वप्रथम चतुर्व्यूह सिद्धान्त की उद्भावना अति महत्वपूर्ण है, यहाँ पर 'एकोऽ हं बहु स्याम' अथवा 'एकधा चतुर्धा भवति' की वैदिक दृष्टि स्वतः सिद्ध होती है।

इस तरह संहिताओं में दर्शन-शास्त्र की तरह केवल सैद्धान्तिक चर्चा मात्र नहीं है, अपितु संहिताएं वैष्णव धर्म का व्यवहार-शास्त्र हैं। कारण कि जगत् में ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय रूप जो त्रिपुटी है, उसमें ज्ञाता के साथ ज्ञेय का जो भावनात्मक सम्बन्ध है वह संहिताओं में बहुत प्रगाढ़ता के साथ प्रस्तुत किया गया है। अतः अधिकांश संहिताओं में शास्त्रावतरण के माध्यम से संवाद करते हुए विषय प्रवर्तन किया जाता है, तथा वक्ता स्वयं नारायण, विखनस् ऋषि, सनत्कुमारादि, नारद, सङ्कर्षण, शाण्डिल्य, अत्रि, भृगु आदि आद्यपरम्परा के सभी प्रवर्तक आचार्यों एवं सूत-शौनकादि ऋषि-परम्परा को स्रोता के रूप में उपस्थिति को दर्शाया गया है। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय में जो परम-दृष्टा है, वह इन तीनों में अभिन्न रूप से व्याप्त है

और उन्हें ग्रहण भी करता है; अतएव इस अखण्ड, अद्वय, विश्वातीत, विश्वात्मक तत्त्व की सगुण और गुणातीत चर्चा ही संहिताओं का प्रमुख प्रतिपाद्य है। इसके साथ ही धार्मिक विधि-निर्देशों के साथ मन्दिर के निर्माण के लिए प्राप्त भूमि के परीक्षण, भूमि शोधन, वर्णादि क्रम से भूमि चयन, मूर्ति प्रतिष्ठा, अर्चा-विधि, न्यास आदि उपासना परक विषयों का विस्तार से विचार किया गया है। मन्दिर शिल्प के सम्बन्ध में भी विशेष चर्चा संहिताओं में प्राप्य है।^१ इसी क्रम में प्रतिमा निर्मिति के सभी पक्षों पर व्याख्या की गई है। यथा-मूर्तिनिर्माण, मूर्तिनिर्माणविधि, दारुसंग्रहण, शिलासंग्रहणादिविधान, प्रतिमामान, मूर्ति के प्रकार - मूलबेर, उत्सवबेर, नित्यबेर आदि की प्राण-प्रतिष्ठा का विधि पूर्वक विवेचन किया गया है। मुहूर्त को ध्यान में रख कर इन सभी क्रियाविधियों को सम्पन्न किया जाता है। प्रत्येक विधि, वैदिक-ऋचाओं के सस्वर पाठ से, अनुष्ठान पूर्वक सम्पन्न होती है।^२ जिनमें स्नपनविधि-सहस्रत्रकलशाभिषेक, एकाशीतिस्नपन, उत्तम-मध्यमादि अनेक स्नपन विधियाँ, कर्मार्चनालक्षण, बिम्बप्रतिष्ठा, प्रतिष्ठाकर्म, प्रतिष्ठाविधि, परिवारादिपूजा, उपकरण, स्थान निर्णयस्वरूप, पञ्चकालिक सपर्या अर्चक, सहदेशिक, आचार्य योग्यता लक्षण कार्य एवं महत्व, नित्य-याग, मानस-याग, वाह्य-याग, ध्वजारोहण, पुष्पहवि, पवित्रादिउत्सव, नित्याराधन- प्रायश्चित्त, व्रतानुष्ठानक्रम, वसन्तोत्सव, प्लवोत्सव, ज्येष्ठस्नपनोत्सव, कृष्णजन्मोत्सव, श्रीरामनवमी उत्सवविशेष (अगस्त्य संहिता), मोक्षोत्सव- अग्निदीपोत्सव- पञ्चपर्वोत्सव- कल्हारोत्सव-प्रायश्चित्त (श्रीप्रश्नसंहिता), प्रमुख रूप से वर्णित है।

उपासना पद्धति

पाञ्चरात्र आगम वैष्णव परम्परा के पोषक ग्रन्थ हैं। 'आगच्छति इति आगमः' अतः श्रुति को अनुभूति और व्यवहारिकता की कसोटी पर कसने का श्रेय आगम-परम्परा को है। आगम वस्तुतः अन्तरानुभव के सर्वोच्च प्रतीक हैं। पाञ्चरात्र शब्द की तात्त्विक व्याख्या के अनुसार सम्पूर्ण विश्वात्मा की सम्पूर्ण रूप से पूजा के द्योतक एवं उपसना के सर्वाङ्गीण स्वरूप के विस्तारक ग्रन्थ पाञ्चरात्र आगम हैं।

१ पाञ्चरात्र -प्रासाद प्रसाधनम्। पाद्मसंहिता के क्रियापाद का प्रथम अध्याय (डेनियल स्मिथ ने १९६३ में मुद्रित किया है)

२ दृष्टव्य इस ग्रन्थ का चतुर्थ अध्याय

इन संहिताओं में अर्चा, अर्चना और अर्चक परस्पर सम्बद्ध हैं। नित्य नैमित्तिक पूजा के अङ्ग प्रत्यङ्ग के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंश को लेकर सम्पूर्ण समर्पण भाव से उपासना-पद्धति का विस्तार पूर्वक आलेखन ही पाञ्चरात्र संहिताओं की विशेषता है, यहाँ सामान्य वैष्णव जन को भी अर्चक की श्रेणी में मान्य किया जाता है। क्योंकि सामान्य भक्त भी जब अर्च्य की उपासना करता है, तो वह भी अर्चक की भाव-भूमिका सहज ही ग्रहण कर लेता है। अतः अर्चक या वैष्णवभक्त की उपासना पद्धति का क्रम लगभग समान होगा, जो निम्नाङ्कित है-

स्नान विधि - अर्चक की स्नान विधि उपासना पद्धति का प्रथम चरण है। पाञ्चरात्र साहित्य में स्नान विधि दो प्रकार से वर्णित की गई है।

१. सामान्य अथवा लौकिक स्नान
२. विशिष्ट अथवा मन्त्र स्नान

प्रातः कालीन जागरण के अनन्तर सामान्य स्नान के समय इष्ट के सोलह नाम संकीर्तन करने का अर्चक को निर्देश है। तदुपरान्त आन्तरिक पवित्रीकरण के लिए अर्चक को आचमन करना एवं विशिष्ट मन्त्रादि उच्चारण के द्वारा मन्त्र स्नान का विवरण प्राप्त होता है। नदी अथवा तीर्थ स्थल पर स्नान करने पर नाम संकीर्तन एवं मन्त्र स्नान की उपर्युक्त प्रक्रिया निर्वाह करने का वर्णन मिलता है। तदनन्तर सूर्य देव, इन्द्र देव, पृथ्वी आदि देवी देवताओं को मन्त्र पूर्वक वहीं जल अर्पण करे, एवं ऋषि, पितृ गण आदि को भी मन्त्र सहित जल तिलादि का तर्पण अर्चक जब कर लेता है, तभी विधि पूर्वक किए गए, इस पार्थिव स्नान को 'सर्वपापहरं शुभम्' कहा गया है। यह विवरण प्रायः सभी संहिताओं में समान रूप से प्राप्त है।

समाधिख्यानम् - अर्चक स्नान प्रक्रिया के अनन्तर उर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं। फिर न्यास पूर्वक अपने सम्पूर्ण अङ्गों को पवित्र करते हुए, विष्णु को अपने प्रत्येक अङ्ग में धारणा पूर्वक रक्षण के लिए आह्वान करते हैं। वे इस तरह ललाट में वासुदेव, हृदय में सङ्कर्षण, आदि की उद्भावना करते हैं।

यह प्रक्रिया श्री विग्रह के समक्ष कपाटोद्घाटन के अनन्तर होती है। शिष्यादि को पूजा-पात्र शोधन एवं बन्धपूजोपकरणों की आज्ञा देकर अर्चक न्यास योग के अनन्तर प्राणायाम के माध्यम से आत्मशुद्धि करता है। पारमेश्वर संहिता में समाधिख्यानम् के न्यास, प्राणायाम, योग के रेचक कुम्भक आदि नाडी शोधन, से भूतशुद्धि: एवं तदन्तर ध्यान और समाधि का आख्यान अन्य संहिताओं की अपेक्षा अधिक विस्तार से वर्णित है।

भूतशुद्धि: - यह कुम्भक, रेचक, सुषुम्ना पिङ्गला नाडी के शोधन की विधि, पूर्ण प्राणायाम की प्रक्रिया है। पञ्चमहाभूत से बने हुए शरीर के शोधन के लिए भूतशुद्धि अनिवार्य है। अर्चक सम्पूर्ण मनोयोग से पूर्ण ध्यानस्थ होकर अपने इष्ट का आह्वान, आराधन, अर्चन, षोडशोपचार विधि से कर सके। प्राणायाम की वह शक्ति ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा अनुभूत होती है। इसे धारणा पञ्चक भी कहा गया 'धारणा-पञ्चकम् चैव संक्षिप्तम् विहितं द्वयम्'। इस प्रकार आत्मशुद्धि के साथ इसे भूत शुद्धि भी कहा गया है। भूतशुद्धि समाधिख्यानम् का ही एक अङ्ग है। जिसे न्यास प्राणायाम योगादि के माध्यम से सम्पन्न किया जाता है। अर्चना विधि के अर्चक के द्वारा की जाने वाली शारीरिक पवित्रीकरण की अनिवार्य क्रिया-विधि भूतशुद्धि से निर्देशित की गई है। अगस्त्य संहिता में स्नानविधि को भूतशुद्धि के अन्तर्गत माना गया है। अन्तर-वाह्यशुद्धिकरण के लिए योग प्राणायाम एवं न्यास का विधि पूर्वक विधान पूर्ण करने से आत्म शुद्धि होती है। विष्वक्सेन संहिता में प्राणायाम की प्रक्रिया के पूर्व दिग्बन्ध का निर्देश है। प्राणायाम भी उत्तम मध्यम तीन प्रकार का यहाँ वर्णित है।

योग आन्तरिक पवित्रता को दृढ़ करता है, एकाग्र चित्त अर्चक पूजन के विधान में मनोयोग पूर्वक अपने स्व को विनियोजित करता है। तत्त्वतः दिग्बन्ध प्राणायाम एवं योग की सम्पूर्ण प्रक्रिया ही प्रस्तुत संहिता में भूतशुद्धि को पूरा करती है। श्रीप्रश्न संहिता में प्राणायाम का उल्लेख नित्य पूजा विधि में नहीं है, केवल पूजा काल में पञ्च-शुद्धि का उल्लेख है। 'पूजाकाले पुरा कुर्यात् पञ्चशुद्धिः गुरुस्ततः'। अतः पञ्चशुद्धि अर्थात्-

भूतशुद्धि - अर्चक की शारीरिक आन्तरिक पवित्रता

स्थान शुद्धि - पूजा स्थल का परिमार्जन

पात्र शुद्धि - पूजा पात्रों का परिमार्जन

बिम्ब शोधन - मूर्ति का पवित्रीकरण

मन्त्रेण शुद्धि - मन्त्रों द्वारा सर्वभावेन शुद्धि

अतः प्रस्तुत संहिता में उक्त पञ्चशुद्धि के माध्यम से भूतशुद्धि प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है। लक्ष्मी तन्त्र में भूतशुद्धि के स्थान पर न्यास योग को मोक्ष प्राप्ति के अन्तिम उपाय, शरणागति के रूप में स्वीकार किया गया है। स्पष्ट है कि लक्ष्मी तन्त्र में दर्शनिक पृष्ठभूमि ही सर्वोपरि है, अतः वहाँ कर्मकाण्डीय क्रियाओं को बहुत प्रमुखता से स्वीकार नहीं किया गया।

प्रथमोपचार न्यास विधि

अगस्त्य संहिता के आधार पर उपासक द्वारा मन्त्रों से परिवार के देवताओं- गणपति, विधाता, गंगा, यमुना, विष्वक्सेन, गरुड़ देवताओं का स्तवन किया जाता है। राम, माहत्म्य नामक, षडक्षरी राम मन्त्र को कई तरह से दुहराया जाता है। अर्चक के लिए स्तोत्रों का यह स्तवन कण्ठाग्र होना ही श्रेयस्कर है।

न्यास सम्बन्धी विधान में मातृका-न्यास की चर्चा विशेषरूप से अगस्त्य संहिता में षडन्यास की दृष्टि से की गई है, इसमें ऋष्यछन्दोन्यास, मन्त्रदेवता न्यास, मातृका न्यास, केशवादिन्यास, तत्त्वन्यास, मूर्तिपंजर न्यास आदि षडन्यास प्रक्रियाओं का विस्तार से वर्णन है। न्यास का यहाँ विशिष्ट अर्थ है, सम्पूर्ण विश्वात्मा की दिव्य शक्ति या स्वयं देवता का अपने भीतर अवतरण। विष्वक्सेन संहिता में प्राणायाम न्यास आदि के अतिरिक्त उर्ध्वपुण्ड्र विधि को अपने इष्ट के सम्मुख किये जाने वाले हस्त-न्यास के अन्तर्गत दर्शाया गया है।

मन्त्रन्यास विधि

अर्चक के द्वारा प्राणायाम योग में षडन्यास का विशिष्ट महत्व है। कारण कि मन्त्र प्रत्येक पूजा विधान का प्राण तत्त्व है। पारमेश्वर संहिता में द्वादशक्षर मन्त्र के साथ उपासक के द्वारा मणिवन्ध के मूल से अग्र भाग

तक करन्यास विधि 'अथ हस्त द्वयेनास्य दीपितम् द्वादशाक्षरम्' वर्णित है। अङ्गन्यास को मन्त्रन्यास विधि के द्वारा सम्पन्न करके सिर से पैर तक सृष्टि न्यास की प्रक्रिया पूरी की जाती है। इस प्रकार मन्त्र न्यास के माध्यम से पूजक को अन्तर्बोध स्वरूप का पूर्ण परिज्ञान हो जाता है। सम्पूर्ण मुद्राबन्ध का तदनुसार आचरण करते हुए प्रत्येक मन्त्र में पारमेश्वर का निवास निर्देशित किया है। इस तरह ऋग्वेद, मन्त्र और ओंकार न्यासादि से अर्चक द्वारा मन्त्र न्यास विधि सांगोपाङ्ग पूर्ण की जाती है।

श्रीप्रश्न संहिता में आराधन क्रम में न्यास विधि का विस्तार से उल्लेख हैं। मन्त्र का महत्त्व सर्वत्र न्यास प्रक्रिया के साथ परिलक्षित होता है। यहाँ भी वही स्थिति है, अर्चक की करन्यास विधि से न्यास प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, जो षडन्यास के अन्तर्गत न्यास क्रम में प्रत्येक अङ्ग के विभिन्न इष्ट नामों द्वारा देवाभिधान की विशिष्ट प्रक्रिया से सम्पन्न होती है। सभी संहिताओं का उद्देश्य एक ही है, कि सम्पूर्ण अङ्गों में परम-तत्त्व का अवतरण हो, अर्चक सम्पूर्ण भाव से इष्ट की दिव्यार्चना, आराधना उपासना करते हुए उससे तादात्म्य कर सके। लक्ष्मी तन्त्र में गीता में कहे गए 'मामेक शरणं ब्रज' के आधार पर शरणागति के षडङ्ग वर्णित हैं—

१. अनुकूल सङ्कल्प २. प्रतिकूल सङ्कल्पाभाव ३. ईश्वर रक्षा करेगा ४. रक्षक के रूप में ईश्वर का वरण (यह विश्वास) ५. आत्म निक्षेप ६. कार्पण्य ।

इसमें अन्तिम अङ्ग कार्पण्यमें, अकिञ्चनता तथा साधन हीनता की स्थिति मान कर अर्चक गर्व रहित हो कर स्वात्मसमर्पण का निवेदन करते हुए न्यास को प्रयोजनीय बनाता है।

शरणागति

निश्चित रूप से शरणागति पाञ्चरात्र आगमों का प्रतिपाद्य विषय है, एवं जिसे न्यास पद्धति के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। इसी प्रकार ब्रह्म विद्याओं का वर्णन भी लक्ष्मी तन्त्र के सत्रहवें प्रकाश में किया गया है, जिनमें न्यास योग का प्रयोजन निर्देशित किया गया है। उपासना प्रक्रिया का मुख्य

आधार प्रतिमा है। प्रतिमा शब्द का अर्थ है। प्रतिरूप, प्रतिकृति, बिम्ब छाया आदि ऋग्वेद में यज्ञ के रूप के विषय में प्रतिमा शब्द का प्रयोग हुआ है। शुक ने भी 'अपि श्रेयस्करं नृणां देव विम्बाभिरक्षणम्' कहा है। पतंजलि ने प्रतिमा के लिए अर्चा शब्द का प्रयोग किया है। आगे चलकर प्रतिमा के लिए वपु तनु, विग्रह, रूप, बेर आदि अनेक शब्द पुराणों में, संहिताओं में उल्लिखित हैं, अतः स्पष्ट है कि निराकार परब्रह्म की उपासना की दृष्टि से प्रतिमा में सगुण-साकार परमेश्वर के अवतरण का माध्यम सर्वग्राह्य रहा होगा। उपासना की दृष्टि से चल अचल और चलाचल प्रतिमाएं भी चार प्रकार की हैं-

- कौतुक बेर -** जिनकी नित्य अर्चना होती है।
उत्सव बेर - जिनकी किसी विशेष उत्सव के समय जनसमूह के बीच में पूजा होती है।
बलि बेर - जिनको नित्य भोग लगाया जाता है।
स्नपन बेर - जिन्हें नित्य स्नान कराया जाता है।

अचल प्रतिमाएं मूल विग्रह तथा ध्रुव बेर कहलाती हैं। स्थानक, आसन, और शयन आदि अचल प्रतिमाओं की केवल वैष्णव विग्रहों के अन्तर्गत योग, भोग, बीर अभिचारिक रूपों की उद्देश्य विशेष की दृष्टि से उपासना की जाती हैं।

अगस्त्य संहिता में भगवान राम की प्राण-प्रतिष्ठा युक्त प्रतिमा ही सर्वोच्च है, विष्णु का प्रतीक है, उसकी उपासना ही राम अर्चना है साथ ही कहा गया कि षोडशोपचार प्रक्रिया में सर्वप्रथम प्रथमोपचार आह्वानादि के अनन्तर मुद्रा एवं मन्त्रों के माध्यम से प्रतिमा पवित्रीकरण की प्रक्रिया पञ्चविधि से की जाती है। परमेश्वर संहिता में स्थान-स्थान पर मूल बेर प्रतिमा के पूजन के सङ्केत हैं। श्रीप्रश्न संहिता में प्रतिमा के माध्यम से परमात्म भाव की पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। लक्ष्मीतन्त्र में लक्ष्मी मूर्ति महिमा, प्रतिष्ठा विधान आदि के साथ प्रतिमा के आध्यात्मिक पक्ष की पुष्टि की गई है।

१. प्रोक्षण २. अप्रोक्षण ३. वीक्षण ४. तद्ध्यान ५. अर्चन दूध, दही, सुगन्धित जल और पवित्र जल से मन्त्रोपचार के साथ स्नान विधि होती है। फिर वस्त्रादि सामग्री के मूर्तिश्रृंगार प्रमुख। उपाचारों के अन्तर्गत करते हैं। तदन्तर अन्य प्रविष्ट देव प्रतिमाओं का यथा विधि अभिषेक श्रृंगार एवं अर्चन होता है। प्रस्तुत संहिता में शालिग्राम शिलापूजा का विशिष्ट महत्त्व है। श्रीराम की अर्चना तुलसी पुष्प, चन्दन जलादि से ही समर्पण भावना के साथ की जानी वर्णित है।

अग्निकार्य विधि - पूजा विधान के अन्तिम चरण है। हवन विधि वैदिक याज्ञिक विधि का सार्वभौमिक प्रभाव सरलीकृत होकर नित्य होम पूजन का आधार बना।

कुण्डादि स्थापन- फिर मन्त्र पूर्वक हवि अन्न का हवन विधि पूर्वक अर्चक द्वारा किया जाता है। तदन्तर ब्राह्मण भोजन, अग्नि- परिक्रमा एवं समर्पणपूर्वकप्रणाम निवेदन का विधान है।

प्रयोग भेद -कभी कभी उत्सव पूजा विधि बलि अर्पण से पूर्व होती है। कहीं कहीं अग्नि कार्य के बाद प्रसाद अर्पण विधि है। फिर ध्यानादि है। इस प्रकार षोडशोपचार में भी क्षेत्र विशेष के आधार पर भेद परिलक्षित होता है।

पुरश्चरण विधि - १. पञ्चागम पूजा दिन में नित्य तीन बार की जानी चाहिए २. होम नित्य एक बार विधान पूर्वक हो ३. जप तीन बार नित्य मनोयोग पूर्वक किया जाना चाहिए ४. तर्पण में केवल पवित्र जल का प्रयोग हो, संक्षिप्त हवन नित्य एक बार, ५. ब्राह्मण भोजन यथा शक्ति कराये जाने का निर्देश है।

पारमेश्वर संहिता में मन्त्र न्यास के अनन्तर मानसयागः और बर्हियागः नाम के दो अध्याय मानसिक पूजन और प्रत्यक्ष प्रतिमा पूजन विधान का विस्तृत विवरण देते हैं। मानस यागः में ध्यान में ही द्रव्यकल्पित मानस पूजा क्रम स्वरूपभोगयाग, परमात्मस्वरूप अभिव्यक्ति-भाव,

स्वरूपगत मानस मन्त्र, धूप, दीप, होम-विधि, मानस याग मात्र निष्ठस्य मन्त्रोपसंहार आदि का विस्तृत विधि-पूर्वक उल्लेख है। बर्हियागः में सम्पूर्ण पूजोपचार का क्रमशः विस्तृत विधि-सम्मत उल्लेख है। बिम्बस्यभद्रासन रोपणं पाद्याचमनीय स्नानीयानि द्रव्याणि, सर्वेषां भोगनां शुद्धित्रयम् प्रोक्षण रूप विशेष शुद्धिः, प्रदक्षिणाविधि, हविनिवेदनमधुर्यक इत्यादि प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्ग का विधि पूर्वक आलेख है।

अनुयाग तदनन्तर अग्निष्टोम और पितृयाग का भी उल्लेख करते हुए अगस्त-संहिता में प्रथमोपचार और षोडशोपचार के माध्यम से पूजा विधान की उद्भावना की गई है, वहीं उपासना के लिए पारमेश्वर संहिता में अष्टाङ्ग- पूजा का स्वरूप विवेचित किया गया है। बलि प्रक्रिया एवं प्रायश्चित्त विधि में पारमेश्वर संहिता में बलि कर्म का प्रारम्भिक विधान उल्लिखित है। परन्तु वहीं पर वैकल्पिक समाधान भी दिया है।

नित्योत्सव में मयूर की बलि के विधान के साथ ही मयूर न मिलने पर उस को चित्रित करके उसकी बलि दे देने की वैकल्पिक व्यवस्था भी है। पूजा लोप होने पर प्रायश्चित्त विधि के विभिन्न स्वरूप भी दर्शाये गए हैं। श्रीप्रश्न संहिता में नित्य पूजा दो भागों में विवेचित है। नित्ययाग विधि में मानस पूजा स्नानादि भोज्यासनान्तविधि भोगयाग विधि भगवत्स्वरूप वर्णन, ध्यान, प्रार्थना सभी देवों की सन्निधि हेतु षोडशोपचार आराधनक्रम अगस्त्य संहिता की भांति विवेचित है। द्वितीय भाग में नित्य होम-विधि तर्पणादि कर्मों का विस्तृत विवरण है। प्रस्तुत संहिता में भी पारमेश्वर संहिता की तरह अष्टाङ्ग पूजा विधि सविस्तार वर्णित है। नित्य होम विधि के अन्त में बिम्बादि के आह्वान के अनन्तर सुदर्शन की नित्य पूजा है। 'सुदर्शन प्रत्यहं पूजामात्रमेव न होमो न बलि क्रिया न नित्योत्सवो वा।' अतः उस समय प्रचलित बलि कर्म, एवं होम आदि के जटिल विधान का स्पष्ट निषेध किया गया है। नित्य उत्सव को भी यहाँ बहुत प्रतिष्ठा नहीं मिली भक्ति की निष्ठा ही सर्वोपरि मानी गई तभी पूजामात्र प्रकुर्वीत् कहा गया। यद्यपि पूजा में व्यवधान पर प्रायश्चित्त का भी उल्लेख यहाँ भी है। विष्वक्सेन संहिता में भी नित्यार्चन में द्वार पूजा भगवत् आसन, कल्पन (योगपीठ) विधि

देव परिवार आदि अर्चन विधि पूर्वक करने का विधान है। इस आराधन क्रम में इष्ट प्रकार के पूजोपचार (द्वात्रिंशदुपचारः) षोडशोपचार और कनीयसी पूजा के एकोदशोपचार एवं उपचार विनियोग और उपचार समर्पण का भी आत्मार्थ एवं परार्थ नित्य पूजा विधि का समावेश है। इसके अनन्तर अग्निकार्य होम आदि कर्म, पुरुष सूक्त आदि के द्वारा मन्त्र पूर्वक करने का विधान है। प्रस्तुत संहिता में परार्थ नित्य अर्चन विधि में बलि पूजा कर्म का वैधानिक विवरण है एवं अन्त में विष्णु पूजा महिमा का स्मरण करते हुए विष्णु निर्माल्य आदि के विनियोग के लिए नित्यार्चना उपासना पूर्ण होती है।

लक्ष्मी तन्त्र की पीठिका पूर्णतः दार्शनिक पृष्ठ भूमि में निर्मित संहिता है। अतः इसमें पारमेश्वर संहिता की तरह प्रमुख रूप से कर्म काण्डीय पद्धति का अनुसरण नहीं किया गया है। न ही विष्णुसेन संहिता की भाँति प्रासाद मण्डप आदि लक्षण विधि से लेकर उत्सव आदि विधियाँ प्राण प्रतिष्ठा या नित्य पूजा अर्चना के प्रकारों का बृहत् विवेचन ही अभीष्ट है। और न ही अगस्त्य संहिता की तरह भूत शुद्धि मातृकादिन्यास, पूजा साधन लक्षण, द्रव्य शुद्धि, उत्सव विधि, एवं पुरश्चरणविधि आदि का प्रमुखता से उल्लेख है। प्रश्न संहिता के अनुरूप मूर्तिनिर्माण, प्राण प्रतिष्ठा बिम्ब प्रतिष्ठा एवं महोत्सव विधि आदि की बात यथास्थान कही गई है परन्तु लक्ष्मीतन्त्र में सर्वत्र आध्यत्मिक धारणा एवं दार्शनिक पक्षों को प्रकाशित करने का प्रयास पूरी तरह से परिलक्षित होता है। यहाँ अध्यायों को प्रकाश की संज्ञा दी गई है। नित्य उपासना में अन्तर्यामि प्रकाश नामक अध्याय में मानसिक ध्यान आदि का विवेचन है।

वर्हियाग प्रकाश में पूजा मण्डपादि परिकल्पनम् अर्ध्य आदि परिकल्पना पूजाद्रव्य संस्कार, परिवार ध्यान, देव-सात्रिध्य लक्ष्मीनारायणध्यान, मन्त्रासनार्चन लययाग, देवीयाग, स्नानासनार्चन, अंलकारासनार्चन, भोज्यासनार्चन पर्यकासनार्चन, मन्त्रोपनियम, अक्षमाला लक्षण आदि का विधि पूर्ण उल्लेख है। इसके अनन्तर नित्य-विधिप्रकाश में अक्षमाला प्रतिष्ठा-विधि पूजाकाल में घण्टनादि की

आवश्यकता, प्राणों का आदान बर्हितर्पण इत्यादि नित्य उपासना पद्धति के प्रमुख बिन्दु हैं।

लक्ष्मी तन्त्र में अन्य संहिताओं की भांति नित्य पूजा विधान में बलि कर्म एवं अन्त में प्रायश्चित्त विधि का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। पञ्चकाल प्रक्रिया अर्थात् सम्पूर्ण अहोरात्र को पाँच भागों से विभाजित करके सम्पूर्ण पूजन उपासना स्वाध्याय आदि उपासना क्रम को अर्हनिश करने का विधान है। इन पञ्चकाल को भगवत् कर्म द्वारा अछिद्र बनातें हुए व्यतीत करना ताकि एक-एक क्षण भी भगवत् ध्यान में ही अर्पित हो। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि जयाख्य संहिता में भी लक्ष्मी तन्त्र की भांति पञ्चकालिककृत्य का दिग्दर्शन प्राप्य है। अतः सम्पूर्ण अहोरात्र को पाँचभागों में इस तरह विभाजित किया गया है।

पञ्चकालिकसर्पया -

अभिगमन-ब्रह्ममुहूर्त से लेकर दिन के प्रथम प्रहर तक, उपादान- दिन के दूसरे पहर पर्यन्त, इज्याकाल-साध्वं तृतीय प्रहर दिन, स्वाध्याय काल-चतुर्थ प्रहर का अवशिष्ट काल, योग काल-रात्रि के आरम्भ से लेकर दूसरे दिन के ब्रह्म-मुहूर्त पर्यन्त। इसी कारण पञ्चरात्र आगमों में 'काल पञ्चक' का धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है - 'इज्या काल में अष्टाङ्ग योग के द्वारा इष्टोपसना का विधान है। इसलिए इज्या-कालीन

कृत्यों में अर्न्तयाग योगयाग, मध्वादियाग (मधुपर्क) अन्नयाग, सम्प्रदान, बह्नि घर्षण, पितृयाग, अनुयाग यही अष्टाङ्ग पूजा विधि है। जिस तरह योगयाग की चर्चा बाह्य उपचारों से की गई, आराधना भी योग याग है। उसी प्रकार अनुयाग का भी विशिष्टवर्णन है। लक्ष्मीतन्त्र में दीक्षितों को अस्त्र तारा के द्वारा प्रोक्षण-परिषेचन-अप्रोक्षण-तर्पण-प्राणाहुति करतें हुए अनुयाग का इष्ट में न्यास करना उल्लिखित है।

निष्कर्ष : नित्य उपासना में अर्चक की स्नान आदि भूतशुद्धि से लेकर भगवत् प्रबोधन कराकर फिर स्नान, वस्त्रालंकार आदि का मन्त्र आदि सहित इज्या, भोग, मधुपर्कदयार्पण, तदनन्तर नित्य देव, पितृ हवन आदि

विधान, ध्यान प्रार्थना आत्मनिवेदन प्ररिक्रमा आदि का सम्पूर्ण समर्पण भाव से एकाग्रचित होकर किए गए ये विशिष्ट कर्म हैं। इन विशिष्ट कर्मों को आध्यात्मिक उर्जा से परिपुष्ट करके अपने इष्ट के प्रति पूर्ण समर्पण भावना ही पांचरात्र संहिताओं की अभीष्ट सिद्धि है। इन संहिताओं में वर्णित विशिष्ट वैधानिक पूजोपकृत्य के माध्यम से कर्म ही पूजा है। जिसकी सार्थकता आज भी अभिव्यक्त होती है।

काल की नश्वरता का आकलन करते हुए समय का सर्वाधिक सात्त्विक उपयोग करने के लिए मनुष्य के दैनन्दिन जीवन की नितान्त बहुमूल्य निधि सर्वश्रेष्ठ संस्कार जाग्रत करते हुए, नित्य उपासना ही उसकी स्वाभाविक प्रकृति को परमोच्च बनाती है। परमतत्त्व के साथ एक निष्ठ सम्बन्ध स्थापित करा सकती है। भक्ति और समर्पण भावना के साथ की गई, तात्त्विक साधना ही पञ्चरात्रिक निधि है, नित्य उपासना पद्धति है जो कि प्रत्येक अर्चक के लिए अभीष्ट सिद्धि का द्वार खोलती है। इन विधियों का यद्यपि वैदिक वाग्मय में उल्लेख नहीं है फिर भी वेद-सूक्तों का घनीभूत प्रार्थनामय समर्पण वैष्णव आगम की उपासना विधि की अहर्निश तन्मयता हेतु तथा 'तत्सुखसुखित्वम्' की भावना से प्रेरित स्वीकृत विधियों का विवरण संहिताओं के क्रिया, चर्यापाद के अन्तर्गत प्राप्त है, जो प्रत्येक वैष्णव का अभीष्ट है।

वैष्णव आगम और वेद-मन्त्र

ब्रह्म इति मन्त्र नामधेयम् यह कथन मन्त्र को ब्रह्म की संज्ञा देता है। यहाँ पद का अभिप्राय ब्रह्म पद का अभिप्राय उपनिषद् और दर्शन प्रस्थानों में प्रचलित पर-तत्त्व वाचक लें, तो मन्त्र की ब्रह्म-सदृश महत्ता और यदि विस्तार की क्षमता सम्पन्न अक्षर-संहिता ग्रहण करें, तो भी मन्त्र और उसके अङ्ग-भूत वर्ण-सामान्याय का महत्त्व स्वयं सिद्ध हो जाता है। ऋषि, देवता और छन्द की त्रिस्तरीय व्यवस्था का आधार मन्त्र है। वह ऐसा काव्य है जो न पुराना पड़ता है, न कभी समाप्त होता है। इस अक्षर राशि का संरक्षण ऋषियों ने बड़े प्रयत्न एवं तप के साथ किया है। सर्व-प्रथम ब्राह्मण ग्रन्थों में इन अक्षर-समूहों की विविध-दृष्टियों से व्याख्या की गई है; फिर

ज्ञान-काण्ड और कर्म-काण्ड की दृष्टि से उपनिषद् और मीमांसा-दर्शन प्रस्थान में व्याख्यान हुआ है। उपनिषद् में भी प्रणवाक्षर ॐ और अन्य कतिपय वर्णों का दार्शनिक विवेचन देते हुए मन्त्र-गत वर्णों का महत्त्व स्थिर किया है। मीमांसा-दर्शन का भी मुख्य आधार ही श्रुति के अर्थ को प्रमाणिक रीति से निर्धारित करना और यज्ञादि-कर्म विधियों में उसके विनियोग को व्यक्त करना है। इन दोनों परम्पराओं में मन्त्रस्थ वर्णों को प्रतीक बनाना, उनके प्रतीकात्मक अभिप्राय स्पष्ट करना और उनके बहुविधमहत्त्व को स्थापित करना समान रूप से उपलब्ध है।

वेद-संहिताओं के अभि-प्राय ग्रहण का तीसरा भाग उपासना काण्ड है। इन काण्डत्रय में दृष्ट वेद-राशि प्रयोजन-वशात् काण्ड-त्रय विभक्त होते हुए भी अखण्ड अक्षर राशि है।

पाञ्चरात्र आगम के त्रिरत्न में महत्त्वपूर्ण रूप से ग्रहीत जयाख्य-संहिता में निश्चेयसार्थ प्रयत्नशील साधक को श्रुति के शिरोभूत ब्रह्म-तत्त्व का ज्ञान कराते हुए इन वर्णों को ही ब्रह्म-विग्रह माना है। इन वर्णों को भगवदंश कहा है।^१ मैत्रायणी उपनिषद् में शब्द-ब्रह्म और पर-ब्रह्म ये दोनों ही वेद्य हैं।^२ अ इसमें भी शब्द-ब्रह्म में निष्णात होने पर ही शब्दातीत पर-ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है।^३

जयाख्य संहिता मन्त्र की सामर्थ्य बताते हुए कहती है कि उपनिषद् में प्रतिपादित प्रेय और श्रेय अर्थात् मुक्ति और मुक्ति मन्त्र से ही प्राप्त होती है।^४ यही नहीं दृष्ट और अदृष्ट की फल की प्राप्ति मन्त्र से ही होती है।^५ वर्णात्मक शब्द, जो वेद में मन्त्र के रूप में असाधारण रूप में प्रतिष्ठित है

१ एतो भवादंशश्च शब्दाः भास्वरविग्रहः । जयाख्य संहिता ४५.२०

२ द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परंचतत ।

शब्द ब्रह्मणि निष्णातः प्राप्येयुः परांश्रियम् ॥ मैत्रायणी उपनिषद् २२।६

३ शब्द ब्रह्मणि निष्णातः शब्दातीतं प्रपद्यते । लक्ष्मी तन्त्र ५१।३२

४ तस्मान्मन्त्रं प्रवक्ष्यामि मुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् । जयाख्य संहिता ६।४

५ दृष्टादृष्टाफल प्राप्तिस्तस्य मन्त्रेण जायेते । जयाख्य संहिता ६।२४

उन्हें वैष्णव-आगम भी अत्याधिक महत्त्वपूर्ण प्रदान करते हुए परम-उपास्य भगवदंश-मानता है।^१ इसका पर-तत्त्व वस्तुतः वर्णमय पिण्ड एवं मन्त्र विग्रह ही है; भले ही वह अशेष भुवन का आधार हो अथवा त्रैलोक्य को ऐश्वर्य देने वाला हो।^२ सात्वत संहिता चारों वेदों का उल्लेख करते हुए उनके स्वाध्याय की अनिवार्यता स्थापित करती है। अनुष्ठान के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्ग के रूप में पुरुष-सूक्त तो हर तरह से है ही साथ ही ब्रह्मा, देवगण, ऋषिगण, मारीचि और सनकादि ने अपने स्वरूप को इसी वर्ण पिण्ड रूप पर-तत्त्व की साधना से प्राप्त किया है।^३ वैष्णव आगम की प्रत्यः सभी संहिताओं ने अक्षर-वर्ण के सम्बन्ध इसी प्रकार की महत्ताधारक वचन प्राप्त होते हैं, जिनमें इनके प्रतीकात्मक स्वरूप को व्याख्या तो की ही है साथ ही उन की भगवत्ता, पर-तत्त्व साधन में उपादेयता पर भी प्रकाश डाला है।

जयाख्य, लक्ष्मी, सात्वत आदि संहिताओं में महत्त्वाधारक विवरण समान होते हुए भी प्रतीकात्मक एवं उपसनात्मक प्रतिपादन में उनमें अन्तर है। सात्वत संहिता में वेद-व्यास ध्यान के सन्दर्भ में वाग्देव मण्डल का उल्लेख है। शब्द-ब्रह्म और वाग्देव मण्डल एक ही है। इसका स्वरूप की प्रकाशात्मक है। यह अपने को ही त्रिधा विभक्ति करती है। यह विभाजन ही पश्यन्ती मध्यमां, और वैखरी हैं।^४ लक्ष्मी तन्त्र में इससे सम्बन्धित पूरी प्रक्रिया को बोधान्मेष दृष्टि से विवेचित किया है। उसके अनुसार बोधान्मेष

१ ऐते भगवदंशश्च शब्दाः भास्वर विग्रहाः।

कारणं सर्व-मान्त्रणां भगवच्छक्तिर्बृंहितः। जयाख्य संहिता ६।२४

२ अशेषभुवनाधारं त्रैलोक्यैश्वर्यद्रव्यकम्।

एव वर्णमयःपिण्डः परो मे मन्त्र-विग्रहः ॥ जयाख्य संहिता ६।२४

३ ब्रह्ममूयं गतोब्रह्मा, देवमयं च देवताः।

ऋषयाच्च मरीचाद्याः मुनयः सकानादियः ॥

मन्त्रमहात्म्यमाश्रित्य जग्मुः पद्मनुत्तमम्। सात्वत संहिता २४।३३-३४

४ वाग्देव मण्डलं यो वै स्वरूपद्युतिलक्षणम्।

स्वयं स्वोत्थं विभजाति त्रिधा पश्यन्ति पूर्वकम् ॥ सात्वत संहिता १२।१५३

ही शब्द है। शब्द का उन्मेष ही अर्थ है। उद्यत शक्ति की प्रथम मूल अवस्था शान्त है। इस तरह शान्त, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चार अवस्थाओं के स्थान क्रमशः मूलाधार, नाभि, हृदय और कण्ठ हैं। इन्हीं से नाद का प्राकट्य होता है।^१ इन्हीं अवस्थाओं और स्थानों में रहती हुई लक्ष्मी श्री विष्णु की सेवा करती है।^२

वह शब्द (वर्ण) ब्रह्म रूपी पर-तत्त्व भगवान् कला के रूप में परिणमित होता है। पर-ब्रह्म की निरञ्जन मूर्ति षड्गुण सम्पन्न कला रूपा द्वारा यदि परिगमन न करे तो फिर उस अमूर्त पर-तत्त्व का ग्रहण कैसे होगा? उत्पत्ति और प्रलय से सम्बद्ध, वासुदेव से अध्वक्ष पर्यन्त सभी कलात्मक तत्त्व अविर्भूत होते हैं। तत्त्वों के द्वारा अमिमादि से गुण से युक्त ज्ञानेश्वर्य सहित षड्गुणात्मक मन्त्र प्रकट होते हैं। मन्त्रों से तुयादि पद, और त्रिगुणात्य, चतुर्दश भुवन उत्पन्न होता है। इस प्रकार षड्ध्वात्मक जगत् प्रगट होता है।^३ भुवनाध्व के इस षड्ध्व में हेय और उपेय के आधार पर कुछ छोड़ा जाता है और कुछ लिया जाता है। पदाध्व के अन्तर्गत सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत को हेय अर्थात् त्याज्य तथा मन्त्राध्व के अन्तर्गत बीज पिण्ड, संज्ञा तथा पदक्रम की उपेय अर्थात् ग्रहण करने की श्रेणी में आता है। अपेक्षा के आधार पर ये हेय और उपेय होते हैं,^४ जैसे शुद्ध स्वरूप वाले मुमुक्षुओ अपेक्षा न रहते के कारण उनके लिए उपेय भी हेय हो जाते हैं। यहाँ यह भी धर्य्य है कि षड्ध्वा की अवधारण शैवागमों में भी उपलब्ध है अतः इसे आगमों के सामान्य सिद्धान्त के रूप में षड्ध्व में प्रथम तीन वर्ण, पद और मन्त्र शब्द के और शेष कला, तत्त्व और भुवन अर्थ के अध्व हैं।^५

१ लक्ष्मी तन्त्र १८।२२-२८

२ लक्ष्मी तन्त्र ५०।८१

३ सात्वत संहिता उपाध्याय डॉ. ब्रज बल्लभ द्विवेदी पृ. ३८

४ लक्ष्मी तन्त्र २२।१५-२७

५ लक्ष्मी तन्त्र धर्म और दर्शन - डॉ. अशोक कालिया पृ. १०२

पाञ्चरात्र आगमों में वर्ण विचार

शब्दार्थ विमर्श के सन्दर्भ में शब्द और अर्थ की सामान्य चर्चा अभीष्ट नहीं है। बल्कि श्री प्रश्न संहिता में स्पष्ट यह उल्लेख है कि शब्द और अर्थ का विवेचन केवल वेद्य वाच्य ज्ञेय और वेदक अर्थात् वाचक ज्ञापक भाव के लिये नहीं है वरन् मोक्ष ही उसका अभीष्ट है। यही तथ्य लक्ष्मी तन्त्र में भी अपनी समग्र दार्शनिक अवधारणाओं के साथ प्रतिलक्षित हैं। वहाँ शब्द-ब्रह्म जिसे कहा गया वह चैतन्य के ज्ञान की अनुभूति कराने वाली महान् शक्ति के प्राकट्य एवं आनन्द का प्रतीक है। विष्वक्सेन संहिता में ऋषि छन्द देवता के विवरण में अनेकशः वर्ण शब्द का प्रयोग देवता के अभीष्ट रंग के अर्थ में भी हुआ है। वही उसका ग्रहण गुह्य अर्थ परमात्मा के स्वरूपों की अभी व्यक्ति में भी हुआ है। इस तरह यहाँ पर वेद वेद्यक भाव की अपेक्षा वर्णाध्व के माध्यम से मोक्षमार्ग प्राप्ति के लिये वर्णादि का उपयोग किया गया है। अतः इसमें शब्द अर्थ का सामान्य सम्बन्ध ग्रहण न करके प्रतीकात्मक एवं दार्शनिक पीठिका की अभिव्यक्ति स्पष्ट दृष्टव्य है।

आगमों में प्रमुख प्रयोजन - शब्द-ब्रह्म का सम्बन्ध परमात्मा या उसकी शक्ति से स्थापित करना शब्द-ब्रह्म के रूप में अपनी शक्ति के द्वारा स्वयं ही परमेश्वर से उदित हुई ये आद्याशक्ति जीवों को मुक्ति के लिये है।

यहाँ पर अक्षर और वर्ण का भेद किया है जो अव्यक्त है, कण्ठ का स्वर मात्र है। वह अक्षर है और जो व्यक्त है वह वर्ण है। काकली ध्वनि कण्ठ का अस्पृष्ट स्वर अथवा ध्वनि अक्षर है जो अव्यक्त है और व्यक्त होने पर वर्ण अ, इ, उ आदि हो जाता है। अतः वर्ण माला से वर्ण स्वरूप की कल्पना लक्ष्मी तन्त्र में विशिष्ट प्रयोजन से की गई है। जिसमें पन्द्रह दशाष्ट-पञ्चदश स्वर अ सं अं तक है। पच्चीस तत्त्व-कादयोमावसाना स्पर्शः ककार से मकार तक एवं धारणा चतुष्क - य, र, ल, व वर्णाध्व के चतुष्टक अन्तर्गत विस्तार से अभिव्यक्त किया गया है।

मैत्रायणी उपनिषद् के अनुरूप आगम ग्रन्थों में भी ब्रह्म के दो रूप का उल्लेख किया गया है।^१ १. शब्द ब्रह्म २. परं ब्रह्म

शब्द ब्रह्म से सृष्टि

शब्द ब्रह्म जगत् के रूप में होने के लिये छः रूपों की धारणा करता है। जिसे षड्ध्व कहते हैं।

१. वर्णाध्व
२. कालाध्व
३. तत्त्वाध्व
४. मन्त्राध्व
५. पदाध्व
६. भुवनाध्व

वर्णाध्व - शब्द-ब्रह्म के रूप में प्रथम उन्मेष वर्णाध्व को समझने की तीन रीतियों में प्रथम आद्या के परिज्ञान से साधक लक्ष्मी से सादृश्य प्राप्त कर सकता है। यही अहंता नाम की पर-तत्त्व से अभिन्न है जो नित्योदित या सदोदित रूप में है। अनस्तम्भि अर्थात् प्रकट प्रकाश सम्पन्न वह शक्ति वेद्य-वेदक भाव से परे है।^२ सिसृक्षा दशा में अहंता और सृष्टि-दश में यह पराशक्ति कहीं जाती है। 'सोलह स्वर, पच्चीस स्पर्श चरमअन्तस्थ, तथा हकार को छोड़कर तीन ऊष्म मिलाकर^३, अड़तालिस वर्ण उत्पत्ति क्रम में तथा अप्यय उपसंहार क्रम^४ में इसी भाँति हकार से आकार तक अड़तालीस वर्ण होते हैं। इन वर्णों का बारह विभा किए जाएं तो प्रत्येक में

- १ द्वेवब्रह्माणि वेदितव्ये शब्दब्रह्मपरं च यत्।
शब्द ब्रह्माणि निष्णातः परं ब्रह्माभिगच्छेत् ॥ मैत्रायणी उपनिषद् २२.६
- २ अहंता नाम सा शक्तिस्तदभिन्ना सदोदिता।
अनस्तामितभारूपा वेद्यवदेकवर्जिता। लक्ष्मी तन्त्र २०।५
- ३ सृसृक्षालक्षणा पूर्वा वर्णाहिता हरेरहम्।
सृष्टि रूपा परा-शक्ति रूपेत्येवोदितास्म्यहम्। लक्ष्मी तन्त्र २०।१
- ४ लक्ष्मीतन्त्र - धर्म दर्शन डॉ. अशोक कुमार कालिया पृ. १०३

चार वर्ण आते हैं। ये चार-चार वर्ण क्रमशः वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध द्वारा अधिष्ठत हैं। यह वर्णों का चातुरात्म्य है। प्रति विभाग में स्थित वासुदेव आदि को क्रम से विज्ञाम, उदय, व्यप्ति और व्यक्ति के रूप में जाना जाता है। उत्पत्ति क्रम में अकार को विश्रामव्यवस्थापन्न वासुदेव समझना चाहिए। आकार को उदय स्थानापन्न सङ्कर्षण, इकार को व्यप्ति स्थापन्न प्रद्युम्न और ईकार की व्यक्ति स्थापन्न अनिरुद्ध जानना चाहिए। अव्यय (उपसंहार) क्रम में हकार को विश्रमा स्थापन्न वासुदेव, सकार को उदय स्थापन्न सङ्कर्षण, समझना चाहिए। इस प्रकार चातुरात्म्य का वर्णों के आधार पर, चिन्तन करना धारणा है।

शब्द ब्रह्म के प्रथम उन्मेष का नाम वर्णाध्व है। आगम संहिताओं में वर्णाध्व को प्रायः तीन रीतियों में विभाजित किया गया है। इन्हें स्तर भी कहा जा सकता है।

आद्या = या प्रथमा, मध्यमा, चरमा - या अन्तिमा

लक्ष्मी तन्त्र में इस संदर्भ में स्पष्ट उल्लेख है -

वर्णाध्वनिस्त्वयं रीर्तिमध्यमा कथिता एव ।

आद्यामन्तां च देवेश गदन्त्या में निशामया ॥^१

उत्पत्ति क्रम में द्वादश भाग के अन्त में हकार होगा तथा अप्यय क्रम में द्वादशांत अकार होगा प्रत्येक विभाग में स्थित वासुदेव आदि को क्रम से विश्राम, उदय, व्यप्ति और व्यक्ति के रूप में माना जाता है।

उत्पत्ति क्रम में अकार को विश्राम स्थानापन्न वासुदेव समझना चाहिये।

ल्यावस्था में सङ्कर्षण आदि तत्त्व यहीं पर विश्राम करते हैं। आकार को उदय स्थापन्न सङ्कर्षण जानना चाहिये। इकार को व्यप्ति

स्थापना प्रद्युम्न कहा गया है। ईकार की व्यक्ति स्थापना अनिरुद्ध जानना चाहिये।

अप्यय क्रम में हकार को विश्राम स्थानापन्न वासुदेव तथा सकार को उदय स्थापनापन्न सङ्कर्षण समझना चाहिये इस प्रकार अकर पर्यन्त वर्णों में चातुरात्म्यता का चिन्तन करना चाहिये।

इस क्रम में वर्णाध्व की प्रथम रीति के अन्तर्गत ये धारणाओं के द्वादश आध्यात्म लक्षण दो षट्क हैं।

सोपान भूत इन धारणाओं को अतिक्रम करके द्वादशान्त से परमतत्त्व पर वासुदेव में प्रवेश करना अभष्टि है।

अतः इसी क्रम में सिसृक्षा हेतु पञ्चदश रूपी अङ्गों से पूर्ण हो कर सृष्टि रूपी परा-शक्ति पञ्च-विधति तत्त्वों को उत्पन्न करती है। ककार से लेकर मकार पर्यन्त अक्षरों से पुरुषादि पृथिव्यन्तः २५ तत्त्वों की उत्पत्ति होती है।

मध्यमा रीति

लक्ष्मी सिसृक्षावस्था में अहंता के नाम से विख्यात होती है। जब सृष्टि की अवस्था होती है तो परा-शक्ति के नाम से ख्यात होती है। इसलिए लक्ष्मी तन्त्र में कहा गया है कि ब्राह्मी और प्राकृति-दशा के मध्य में पुरुष की धारणाएं अभिव्यक्त होती हैं, तभी श्री (लक्ष्मी) के द्वारा सृष्टि-प्रक्रिया का उन्मेष होता है। इस मध्यमा रीति में पञ्चदश स्वर सिसृक्षा हेतु होते हैं, चार धारणाएं, ब्रह्म-पञ्चक तथा वर्ण समूह के तेईस तत्त्व भी व्यक्त होते हैं यह वर्णाध्व की मध्यमा रीति कही गई है।

पराशक्ति का उन्मेष होने पर पञ्चदश स्वरों का आविर्भाव होता है। अतः यही स्वर पञ्चदश दशाओं के नाम से अभिहित है। और विसर्ग को इन दशाओं की प्रकृति की संज्ञा दी गई है।^१

१.	अ -	अनुतर
२.	आ -	आनन्द रूप
३.	इ -	इच्छा रूप
४.	ई -	ईशान रूप
५.	उ -	उन्मेष रूप
६.	ऊ -	उर्जता रूप
७.	ऋ -	
८.	ॠ -	इच्छादि के विकार
९.	लृ	मध्यम चतुष्क इच्छा आदि के विकार
१०.	लृ -	
११.	ए -	अ : इ = अनुतर + इच्छा संयोग से एकार
१२.	ऐ -	अ + ए = आनन्द + एकार = जगद्योनि
१३.	ओ -	अ + उ = अनुतर + उन्मेष ओकार
१४.	औ -	अ + आ = अनुतर + ओङ्कार = सयोजात
१५.	अं -	अनुस्वार = अनुस्वार सूक्ष्मदशा बिन्दुः ये पञ्चदशस्वर या दशाएं हैं।

सृष्टि करते समय जो पराशक्ति का सृष्टि के आदि में क्षुभित रूप होता है वही क्षकारात्मक सत्य नामक क्षोभिका महाशक्ति है। इस महाशक्ति की पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और आकाश ये पाँच दिव्य शक्तियाँ हैं। वैदिक परम्परा में यही पञ्च महाभूत है। इन दिव्य शक्तियों के अधान से प्रकृति क्रमशः सृजन कार्य करती है।

पञ्चदश अङ्गो या दशाओं से सम्पन्न है विसर्ग चन्द्रमा है उसे सोममयी शक्ति कहा गया है- अ, ऊ, ऋ, लृ, ए

औ - योग्य नाम वाली ये सोम रूपा शक्ति की सात किरणें, जो शीतल आह्लाद कारणी तथा पोषक हैं। इसलिये युग्म में स्थित बाद के सात वर्णों की चन्द्र किरणात्मकता का तथा अन्य अनेक गुणों का वर्णन किया गया है।

उस शक्ति से और उन्मेष विशिष्ट क्ष, ह, स, ष, श, रूप ब्रह्म पञ्चक उदित होता है। अग्निषोमात्क इन किरणों से युक्त हो कर अन्त्य स्वर विसर्ग के रूप में यह शक्ति प्रवृत्ति होती है।

ब्रह्म-पञ्चक

श ष स ह क्ष को विशुद्ध ब्रह्म पञ्चक कहा गया है। अतः ब्रह्म पञ्चक का स्वरूप निम्नाङ्कित दृष्टव्य है -

क्र.	वर्ण	देवता	पराशक्ति की दिव्य शक्तियाँ
१.	शकार	अनिरुद्ध	बल
२.	ष	ऋम्भ	ऐश्वर्य
३.	स	सङ्कर्षण	वीर्य
४.	ह	वासुदेव	शक्ति
५.	क्ष	सत्य नामक	तेज

धारणा चतुष्टय - य, र, ल, व इन चार वर्णों को धारणा चतुष्टय कहते हैं इन चारो वर्णों की धारणा संज्ञाओं को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है।

यकार = किञ्चित् क्रिया रूपा कला

रेफ - किञ्चितज्ञानात्मिका विद्या पावक

लकार = स्तम्भ मोहत्मिका मया पृथ्वी

वकार = रंजनात्मिका राग - शक्ति वरुण

यह चार धारणायें ही पुरुष को धारण करती है।

बिन्दु अनुस्वार

पञ्चदश दशाओं (अङ्गों में अन्तिम बिन्दु या अनुस्वार सूर्य है।)

इसलिये चतुर्दश स्वर इन अनुस्वार अर्थात् सूर्य और विसर्ग अर्थात् चन्द्र दोनों देवताओं की सात-सात किरणें हैं।

इनमें प्रथम स्वर - भोक्ता या संहारक नाम सूर्य रूपा शक्ति की शोषक किरणें हैं। अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ। अकार से लेकर उकार तक स्थित सात पूर्ववर्णों की सूर्य किरणात्मकता तथा अनेक गुणों का वर्णन लक्ष्मी तन्त्र में किया गया है।

इसी संदर्भ में ककारादि का वर्णों के अधिष्ठातृ देवता पद्मनाभ से लेकर कृष्ण पर्यन्त विभक्त माने हैं। विभवों में अन्तिम चार श्रीराम, वेदवित्, कल्किन् तथा पातालशायन क्रमशः अनुस्वार, यम जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय के अधिष्ठातृ देवता हैं। विभवों की धी आदि शक्तियाँ ही कादि वर्णों की शक्तियाँ हैं।

विशिष्ट भाव यह है कि जिस प्रकार भूखी बालिकामाता की शरण में जाती है उसी प्रकार सभी देवता गण-मातृका देवी की शरण ग्रहण करते हैं। यह मातृका सभी मन्त्रों, विद्याओं, तत्त्वों, तात्त्विकों और सभी ज्ञानों की कारण-भूत है। जिसे चरमा रीति कहा गया है

इन पूर्ववर्णित चार धारणाओं की चार अवस्थायें हैं। जो कि व, ल, र, य से उद्भूत हैं।

तुर्य = तुरीय	व
सुषुप्ति	ल
स्वप्न	र
जाग्रत	य

चारधारणाएं संसृति की संभावना धारण करती हैं। ब्रह्मदशा तथा भकारादि ककारान्त, प्रकृति पृथ्वी तक के तत्त्वों के मध्य में जाग्रत आदि विभेद से युक्त ये धारणाएं ही पुरुष को धारण करती हैं। पुरुष मकार वाच्य है। लक्ष्मीतन्त्र का कथन है कि यदि पुरुष को, धारणाएं ब्राह्मी और प्राकृती दशा के मध्य में धारण न करें तो वह ब्राह्मी अथवा प्राकृती दशा को वह प्राप्त नहीं हो जायेगा। इस प्रकार संसृति अर्थात् सृष्टि ही असम्भव हो जायेगी। इस कारण चार धारणाएं अविर्भूत हुईं।

यदि न ध्रियते ताभिर्दशामन्यतरां व्रजेत ।
ब्राह्मीं वा प्राकृतीं वाऽपि नैव स्यात् संसृतिस्ततः ॥

इत्थं धारणाः मत्तः प्रादुर्भूताः ममाज्ञया ॥ १

इस प्रकार चार दशाओं के मध्य में स्थित भोग और अपवर्ग के योग्य मकार अर्थात् भोक्तृसंज्ञक उत्पन्न हुआ ।^१ पुरुष के भोगों की उत्पत्ति के लिए अचेतन, सूक्ष्म, गुणसाम्य, अव्यक्त आदि विशेषणों से युक्त योनि और भकार अथवा प्रकृति उत्पन्न हुई ।^२ भोग करते हुए पुरुष के भोग्य और भोग आदि की सिद्धि के लिए बकार से लेकर ककार पर्यन्त वर्ण समूह से तेइस तत्त्व व्यक्त हुए । ब, फ, प से बुद्धि, अहङ्कार और मन की, नकार से लेकर तकार पर्यन्त वर्णों से स्रोतादि पाँच ज्ञानेन्द्रियों की, णकार से लेकर टकार पर्यन्त वर्णों से वागादि पाँच कर्मेन्द्रियों की, अकार से लेकर चकार पर्यन्त वर्णों से शब्द आदि पञ्च तन्मात्राओं की तथा ङकार से लेकर ककार पर्यन्त वर्णों से आकाश आदि पाँच भूतों की उत्पत्ति होती है ।^३ इन पच्चीस तत्त्वों को निम्न रूप में रखा जा सकता है ।

चरमा रीति

चरमा रीति बैखरी है जो प्रयत्न और स्थान भेदिनी है । प्रयत्न और स्थान के भेद से प्राप्त होने वाली बैखरी ही वर्णाध्व की चरमा रीति है । व्यक्त वाणी के उच्चारण पर यही स्फुटता को प्राप्त होती है । जो कि देहबद्ध जीवों को सन्मार्ग की दर्शिका निरूपित की गई है । वासुदेवादि चार व्यूह वासुदेव सङ्कर्षण, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न केशावादि वारह, व्यूहान्तर, सोलह स्वरो के अधिष्ठान देवता हैं । लक्ष्मी, कीर्ति, जया और माया ये चार व्यूहों की शक्तियाँ

१ लक्ष्मी तन्त्र १९।३७-३८

२ लक्ष्मी तन्त्र १९।३८-३९

३ लक्ष्मी तन्त्र १९।४०

४ लक्ष्मी तन्त्र १९।४१-४४

है, श्री वागीश्वरी, कान्ति, क्रिया, शान्ति विभूति, इच्छा, प्रीति, रति, माया, धी, और महिमा क्रमशः केशवादि व्यूहान्तरों की शक्तियाँ हैं।

सोलह स्वर - आदिरन्त्येन संहिता - अण् स्वराः पच्चीस स्पर्श क से भू तक कादयोमावसाना स्पर्शः चार अन्तस्थ - य-र-ल-व ह य व ह ल ण् हकार छोड़कर तीन उष्म शल उष्माणः श ष स ह ये ४८ वर्ण उत्पत्ति क्रम में होते हैं। अप्यय प्रलय क्रम में हकार से लेकर अकार पर्यन्त ४८ वर्ण होते हैं।

यदि इन ४८ वर्णों के बारह विभाग किये जायें तो प्रति विभाग चार-चार वर्ण आयेंगे। यह चार-चार वर्ण क्रमशः वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध से अधिष्ठित हैं। इस प्रकार वर्णों के रूप में ईश्वर का चातुरात्म्य ही समझा जाता है।

कलाध्व - द्वितीय उन्मेष कलाध्व है। ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तथा तेज ये ईश्वर के छह गुण ही कला शब्द से अभिहित होते हैं। अर्थात् ज्ञान आदि षड्गुणों के रूप में शब्द ब्रह्म परिणमित होता है।

तत्त्वाध्व - लक्ष्मीतन्त्र में शब्द ब्रह्म का तृतीय विवर्त तत्त्वमार्ग से होता है। तत्त्व का अर्थ है सङ्कर्षण आदि देवता।

सङ्कर्षणादयो देवास्तत्त्वानि सुरसत्तम् ॥

शब्द ब्रह्म ईश्वर के षाड्गुण्य के तीन युगल वाले तत्त्व मार्ग से परिणमित होता है। वासुदेव आदि व्यूह, पद्मनाभ आदि विभव तथा अन्य जो भी भगवन्मय व्यूहान्तर या विभावान्तर है सभी तत्त्वाध्व के अन्तर्गत आते हैं।

व्यूहाश्च विभावाश्चैव यश्चान्मद भगवन्मयम्।

तत्त्वाध्वनो विवृति सा कीर्तिता परमात्मनः ॥

मन्त्राध्व -पहले कलाध्व और तत्त्वाध्व को लेकर शब्द ब्रह्म चिन्मय रूप मन्त्र मार्ग में परिणामित होता है। मन्त्राध्व कभी बीज रूप से, कभी पिण्ड

रूप से, कभी संज्ञा रूप से तथा कभी पद रूप से प्रवृत्त होता है। यह बीज, पिण्ड, संज्ञा तथा पद क्रम से तुरीय सुषुप्ति स्वप्न तथा जाग्रत इन चार पदों से युक्त होते हैं। उनकी व्याख्या साधना की दृष्टि से प्रस्तुत किए गए हैं। श्रीप्रश्न संहितायें भी यही तथ्य दर्शाये गये हैं। बल्कि वहाँ श्लोक में जो प्रथम पंक्ति हैं वह लक्ष्मी तन्त्र की द्वितीय पंक्ति है।

बीज—तुरीय एक स्वर (अ) दो स्वर आ इ स्वर और व्यंजन से युक्त क् + अ = क अथवा बहु स्वर वाला अ, ई, उ होता है।

पिण्ड — मध्य में स्थित व्यंजनों ग, ज, ब, ड, द को पिण्ड कहते हैं यह व्यंजन कभी कभी अ, आ, इ, ई, उ, ऊ स्वर से भी युक्त होते हैं।

संज्ञा — नाम और प्रणव से युक्त अभिधा को संज्ञा कहते हैं क्रिया, कारक के संयोग, स्तुति और सम्बोध रूप तथा विभिन्न प्रकार की संज्ञाओं से युक्त मन्त्रों को पद कहते हैं। अतः मन्त्रों के चार प्रकार माने गए हैं— बीज, पिण्ड, संज्ञा और पद मन्त्र मन्त्राध्व-गुरु से मन्त्र का प्रसाद पाकर जीव सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्त होकर, भुवनाध्व से पार उतरते हुये, तथा पदाध्व से विरक्त होते हुये क्रमशः तत्त्व, कला और वर्ण मार्गों में प्रविष्ट होता हुआ अन्ततः परमतत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है। भव सागर में मग्न जीवों का उद्धार करने, वैराग्य उत्पन्न करने, मर्यादित अभीष्ट कामना मन की प्राप्ति के लिये तथा मन के आलम्बन के लिये मन्त्राध्व है।

पदाध्व — स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय अवस्था में विद्यमान साधक के ध्यान के लिये पदों के अधिष्ठातृ देवताओं के द्वारा स्वीकृत रूपों को पदाध्व कहते हैं।

स्वप्न — जब बाह्येन्द्रियों का विभवतम से अभिभूत हो जाता है, उस समय संस्कार से मुक्त अन्तःकरण की वृत्ति को स्वप्न कहते हैं।

सुषुप्ति — अहंकार का अभाव होने पर उसी वृत्ति को सुषुप्ति कहते हैं।

तुरीय - तुरीय और तमोगुण से अनभिभूत, सत्त्व गुण में स्थित विद्वान् के बाह्य अन्तःकरण की वृत्ति का उपशम हो जाने पर शुद्ध सत्त्व की प्रसाद सन्तति को तुरीय कहते हैं।

जाग्रत- अवस्था का केवल नामोल्लेख किया गया है।

भुवनाध्व - माया से लेकर पृथ्वी पर्यन्त भुवन पद्धति को भुवनाध्व कहते हैं। यह भुवनाध्व चौदह विभागों से युक्त है। भुवनाध्व को अशुद्ध तथा भवपंक्ति कहा गया है।

इस प्रकार षड्ध्व के माध्यम से आगम संहिताओं में शब्द विचार बहुत विस्तार से किया गया है।

यद्यपि यह पूर्णतया साधना परक चिन्तन है, दार्शनिक दृष्टि से इस दिशा में वर्ण विचार पर विचार विमर्श किया जाना संभव है।

इस प्रकार शब्द-ब्रह्म की वैदिक अवधारणा आगमों में वर्ण के प्रतीकों के आध्यम से व्यक्त हुई है। इसमें एक-एक वर्ण शक्ति तथा अन्य रूपों में ध्यान करने का निर्देश बार-बार दिया गया है।



चतुर्थ अध्याय वेद एवं वैष्णव आगम में देव-तत्त्व विष्णु

देव तत्त्व का मानवीयकरण वैदिक सूक्तों में विष्णु के स्वरूप की अवधारणा कई विविधताओं के अद्भुत सामञ्जस्य से ओत-प्रोत है। देवत्व का मानवीय स्वरूप में विकास वैदिक पुरा-कथाओं की दिव्य सृष्टि है। इस सन्दर्भ में वैदिक व्याख्याकार यास्क, देवता की प्रकृति का और पञ्चतत्त्वों की विशेषताओं के साथ उन की मानवीय संरचना के स्वरूप को भी रेखाङ्कित करते हैं।

देवत्व का आकलन दिव्य गुणों के आधान से होता है। यही कारण है कि लगभग सभी देवताओं में देदीप्यमानता, शक्ति सम्पन्नता, उपकारशीलता पञ्च जन रक्षण और विदग्धता आदि गुण समान रूप से उपलब्ध हैं। प्रकृति के तत्त्वों, मनुष्य से सम्बद्ध अनेक जीवों, पदार्थों, मनोवृत्तियों, ज्ञान के साधक उपकरणों आदि को भी देव-तत्त्व से मण्डित कर वैदिक वाङ्मय में, विशेषतः संहिताओं में, उनके मानवीयकरण को स्थापित कर उस मनुष्य का एक प्रकार का आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने का सावधानतया प्रयत्न हुआ है। यहाँ तक कि अक्ष (छूत के पाँसे) और मण्डूक भी सूक्त के देवता के रूप में प्रतिष्ठित हो गए, अपितु उनको मानवीय स्वरूप भी दे दिया गया। इससे देव-तत्त्व से स्तुतिकर्ता अन्तरङ्गता तो हुई ही साथ ही परवर्ती वाङ्मय पुराण और आगमों में उनके स्वरूप के विकास का द्वार भी खुल गया। कदाचित् अवतारवाद की अवधारणा का बीज भी वैदिक देवताओं के मानवीयकरण में निहित है।

विष्णु और रुद्र आद्य देवता हैं। वे क्रमशः सृष्टि-प्रलय के नियामक माने गये हैं। रुद्र-शिव की उपासना समस्त भरतखण्ड में की

जाती है। वैदिक देवता विज्ञान में निर्दिष्ट देवताओं में से विष्णु एवं रुद्र शिव ये दो देवता ही ऐसे हैं कि, जिनके प्रति भारतीयों की श्रद्धा एवं भक्ति स्थान कालदि के सारे बंधन लाँघ कर शताब्दियों से अबाधित रूप से प्रवर्तित रही है। यही कारण है कि, ये देवता भारतीय जन के केवल दैवत ही नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति के एक अविभाज्य एवं अक्षय कोष बन गये हैं।

भारतीय इतिहास में विष्णु की मानवाकृति की अवतारवाद की उपासना मुख्य आधार रही है। इन देवों का मानवीकरण प्राचीनतम काल से ही वेद मन्त्रों में व्यक्त हुआ है किन्तु उत्तर वैदिककाल में इसका विकास एवं विस्तार हुआ, वेदों के द्वारा प्रणीत यज्ञयागात्मक क्रिया पद्धति अधिकाधिक तन्त्र-बद्ध, एवं नित्याचरण के लिए बाध्यता होने के कारण कठिन होती जा रही थी, तब पुराणों आगमों एवं संस्कृत के ललित साहित्य में विष्णु और रुद्र-शिव के स्वरूप में परिवर्धन होता गया। जिस प्रकार वेदों में निर्दिष्ट विष्णु-नारायण-वासुदेव का विकसित परिवर्धित मानवीय स्वरूप वैष्णव-उपासना पद्धति के द्वारा साकार हुआ, उसी प्रकार वेदों में निर्दिष्ट रुद्र-शिव देवता का परिवर्धित मानवीय रूप शैव-उपासना में सम्प्रदायों के द्वारा आविष्कृत हुआ।

आगम परम्परा में विष्णु देवता के इस नये परिवर्धित स्वरूप में, वैदिक साहित्य में निर्दिष्ट विष्णु को, सात्वत लोगों के द्वारा पूजित वासुदेव से, एवं ब्राह्मणादि ग्रंथों में निर्दिष्ट जगत्संचालन के देवता नारायण से सम्मिलित करने का महनीय प्रयत्न किया गया। आगे चल कर पौराणिक साहित्य में विष्णु के अनेकानेक अवतारों की उद्भावना प्रसूत हुई, जिसके अनुसार कृष्ण, राम दाशरथि आदि देवतातुल्य पुरुषों को विष्णु का ही अवतार मान कर, वैष्णव उपासना के क्षेत्र में कक्षा और भी विस्तार किया। इस लिए कि ऋग्वेद में विष्णु के सर्व व्यापक देवता के लोकप्रिय रूप को पौराणिक काल में एक सर्वश्रेष्ठ देवता के रूप में मान्य किया गया।

ऋग्वेद में विष्णु

इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि देवताओं की तुलना में विष्णु का स्थान कनिष्ठ प्रतीत होता है, क्योंकि ऋग्वेद के केवल पाँच ही सूक्त विष्णु को देवता मान कर रचे गये हैं। इन सूक्तों में भी इन्हें स्वतन्त्र महत्त्व प्रदान नहीं

दिया गया, बल्कि सूर्यदेवता के प्रतिरूप एवं इन्द्र के सहायक के नाते इनका वर्णन किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित प्रथम दृष्टया विष्णु के कनिष्ठ अर्थात् वामन रूप में होना स्वाभाविक रूप से आवश्यक रहा होगा। तभी विष्णु-तत्त्व दृष्टि से ऋग्वेद में वे वामन से विराट हुये हैं, अन्यथा व्यापकत्व की अवधारणा आकार कैसे ग्रहण कर पाती।

यहाँ विचारणीय बिन्दु यह भी है कि पुरुष-सूक्त में वर्णित पुरुष भी विष्णु हैं, जिसके स्वरूप में ही वेदों, द्वारा बहुदेववाद-एकदेववाद अथवा परमेश्वरवाद की अन्विति की गई है। अतः तभी तो एकान्तिन धर्मानुयायी, जिनका प्रारम्भ एंकायन वेद से है। वैदिक-विष्णु की महत्ता की प्रतिष्ठा को पाञ्चरात्र संहिताओं में अभिव्यक्त कर सके। यही नहीं अपितु एकदेववाद के प्रारम्भिक आधम् अर्थात् पुरुषसूक्त एवं अन्य एक तत्त्व परक वैदिक सूक्तों से पाञ्चकालिक सपर्या क्रम को आज भी सञ्चालित किया जा रहा है।

स्वरूपवर्णन - ऋग्वेद में एक बृहदाकार शरीर वाले नवयुवक के रूप में इनका स्वरूप वर्णन प्राप्त है। इन्हें 'उरुगाय' (विस्तृत पाद-प्रक्षेप करनेवाले) एवं 'उरुक्रम' (दीर्घ पग रखनेवाले) कहा गया है, अपने इन पगों से यह सारे विश्व का नापते हैं।

निवास स्थान - अपने तीन पगों के द्वारा विष्णु ने पृथ्वी अथवा पार्थिव स्थानों को नाप लिया था, ऐसे निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त हैं। इनमें से दो पग अथवा स्थान मनुष्य को दिखाई देते हैं, किन्तु इनका तीसरा अथवा उच्चतम पग मनुष्यों के दृष्टि कक्षा के बाहर है। यही नहीं, पक्षियों के उड़ान के भी बाहर है।^१ विष्णु के इस उच्चतम स्थान परम पदम् अग्नि, को उच्चतम स्थान के समान माना गया है। वहाँ अग्नि, विष्णु के रहस्यात्मक गायों (मेघ) की रक्षा करते हैं।^२ पुरुष सूक्त में एक पद से सम्पूर्ण सृष्टि और तीन पद द्यु लोक के अमृत-स्थान पर कहे गये हैं। ये सभी कथन उनके

१ ऋग्वेद १.१५.५

२ ऋग्वेद ५.३३

व्यक्तिगत की न केवल विराटता बताते हैं अपितु सर्वातिशायी रहस्यात्मक शक्तियों की ओर भी इङ्गित करते हैं।

इसी स्थान पर विष्णु का निवास रहता है, एवं पुण्यात्मा लोग आनंद से रहते हैं। वहाँ मधु का एक कूप है, जहाँ देवतागण सुखपूर्वक रहते हैं।^१ इसी तेजस्वी स्थान में इन्द्र एवं विष्णु का निवास करते हैं, जहाँ पहुँचने की कामना प्रत्येक साधक करता है। ऋग्वेद में अन्यत्र इन्हे तीन निवास स्थानों वाला त्रिषधस्थ एवं पर्वत में रहने वाला गिरिक्षित् भी कहा गया है।^२

पराक्रम - विष्णु के पराक्रम की अनेकानेक कथाएँ ऋग्वेद में प्राप्त हैं। इन्हे साथ लेकर इंद्र ने वृत्र का वध किया था।^३ इन दोनों ने मिलकर दासों को पराजित किया, शंबर के ९१ दुर्गों को ध्वस्त किया, एवं वर्चिन् के दल पर विजय प्राप्त की।^४

विष्णु के तीन पग - विष्णु का सब से बड़ा पराक्रम (विक्रम) इनके 'त्रिपदों' को है, जहाँ इन्होंने तीन पगों में समस्त पृथ्वी, द्युलोक, एवं अंतरिक्ष का मापन किया।^५ अधिकांश यूरोपीय विद्वान् एवं यास्क के पूर्वाचार्य औरणवाभ के अनुसार, विष्णु के इन त्रिपादों का अर्थ सूर्य का उदय, मध्याह्न, सूर्यास्त आदि न होकर, पृथ्वी, अंतरिक्ष, एवं आकाश इन तीन लोकों का विष्णु के द्वारा किया गया व्यापन मानना ही अधिक योग्य होगा, ऐसा मानने से विष्णु का 'परम पद' स्वर्गलोक से समीकृत किया जा सकता है, जो समीकरण 'परम पद' के अन्य वर्णनों से मिलता-जुलता है।

नियमबद्ध गतिमानता - पराक्रमी होने के साथ-साथ, विष्णु अत्यंत गतिमान, द्रुतगामी एवं तेजस्वी भी हैं। यह अग्नि, सोम, सूर्य उषस् की भाँति

१ ऋग्वेद १.१५४.५; ८.२९

२ ऋग्वेद १.१५४

३ ऋग्वेद ६.२०

४ ऋग्वेद ७.९७

५ ऋग्वेद १.२२.१७-१८

विश्व के विधिनियमों के पालन करने वाले, एवं उन नियमों के प्रेरक भी हैं। इसी कारण, इन्हे 'क्षिप्र' 'एष', 'एवया', 'स्वर्दश', 'विभूतद्युम्न' 'एवयावन्' कहा गया है।^१ सृष्टि का नियम गति की निरन्तरता पर निर्भर करता है। संसरति इति संसारः, अर्थात् जो निरन्तर सरक रहा है, चल रहा है। इस नियम बद्ध गति का संचालन स्वयं विष्णु करते हैं अतएव सर्वोपरि देव वही हैं।

सौरदेवता - ऋग्वेद में प्राप्त उपर्युक्त निर्देशों से प्रतीत होता है कि, अपने विस्तृत पगों के द्वारा समस्त विश्व को नियमित रूप से पार करनेवाले सूर्य के रूप में ही विष्णु-देवता की धारणा वैदिक साहित्य में विकसित अपने नब्बें अश्वों (दिनों) को विष्णु एक घूमते पहिये की भाँति गतिमान बनाते हैं, ऐसा एक रूपकात्मक वर्णन ऋग्वेद में प्राप्त है।^२ यहाँ साल के ३६० दिनों को प्रवर्तित करनेवाले सूर्यदेवता का रूपक स्पष्टरूप से प्रतीत होता है। इस कारण विष्णु ही आदित्य हैं।

ब्राह्मण ग्रंथों में विष्णु का कटा हुआ मस्तक को ही सूर्य बनने का निर्देश प्राप्त है।^३ इनके हाथ में प्रवर्तित होने वाले चक्र हैं, जो सूर्य सदृश ही प्रतीत हो रहे हैं।^४ विष्णु का वाहन गरुड़ है जिसे 'गरुत्मत्' एवं 'सुपर्ण' ये 'सूर्यपक्षी' अर्थ की उपाधियाँ प्रदान की गयी है।^५ विष्णु के द्वारा अपने वक्षःस्थल पर धारण किया गया कौस्तुभ मणि, हाथ में स्थित पद्म, पीताम्बर एवं इनके 'केशव' एवं हृषीकेश' नामान्तर वे सारे इनके सौर स्वरूप की ओर सङ्केत करते हैं।

कई विद्वानों के अनुसार, विष्णुदेवता की आविष्कृति सर्वप्रथम 'सूर्यपक्षी' के रूप में हुई थी, एवं ऋग्वेद में निर्दिष्ट 'सुपर्ण' (गरुड़ पक्षी)

१ ऋग्वेद १.१५५.५; १.५६.१

२ ऋग्वेद १.१५५.६

३ शतपथ ब्राह्मण १४.१.१.१०

४ ऋग्वेद ५.६३

५ ऋग्वेद १०.१४४.४

यही विष्णु के आद्य स्वरूप की प्रतीति के प्रथम सोपान रहे होंगे।^१ तभी विष्णु के 'श्रीवत्स' 'कौस्तुभ' 'चतुर्भुजत्व' एवं 'नाभिकमल' आदि के सारे गुण विशेष और उपाधियाँ, इनसे प्राप्त करके पक्षीस्वरूप को महिमावान करने के ही द्योतक प्रतीत होते हैं।

भक्तवत्सलता - विष्णु की भक्तवत्सलता का उल्लेख ऋग्वेद में अनेक बार प्राप्त है। अपने सारे पराक्रम इन्होंने त्रस्त मनुष्यों को आवास प्रदान कराने के लिए एवं लोकरक्षा के लिए किये थे।^२ विष्णु की इसी भक्तवत्सलता का विकास आगे चल कर विष्णु के अनेकानेक अवतारों की संरचना में आविर्भूत हुआ, जहाँ नानाविध स्वरूप धारण करने की श्रीविष्णु की अद्भुत शक्ति का भी प्रकटीकरण देखने को मिलता है।^३ और भक्त-भगवान् और भक्ति की महिमा का विविध रूपों में वर्णन मिलता है।

विष्णु के अवतारों का सुस्पष्ट निर्देश यद्यपि ऋग्वेद में अप्राप्य है, फिर भी वामन एवं वाराह अवतारों का सङ्केत वहाँ पाया जाता है।^४ इन्हीं अवतारवाद का संरचनात्मक विकास आगे चल कर ब्राह्मण ग्रंथों में किया हुआ प्रतीत होता है।

सृजन के देवता - डॉ. दांडेकर जी के अनुसार ऋग्वेद में निदिष्ट विष्णु सृजन (फर्टिलिटी) के देवता हैं, एवं 'इंद्र-वृषाकपि-सूक्त' में निदिष्ट 'वृषाकपि' स्वयं विष्णु ही हैं।^५ ऋग्वेद में अन्यत्र विष्णु को 'शिपिविष्ट' (गूढ़रूप धारण करनेवाला) कहा गया है, एवं इनकी प्रार्थना की गयी है। 'अपने इस रूप को हमसे गुप्त न रखो'।^६ यही भूणों के रक्षक हैं, एवं गर्भाधान के लिए अन्य देवताओं के साथ इनका भी आवाहन किया गया

१ ऋग्वेद १०.१४९.३

२ ऋग्वेद ६.४९.१३; ७.१००.१.१५५

३ ऋग्वेद ७.१००.१

४ ऋग्वेद १.६१.७; ८.७७.१०

५ ऋग्वेद १०.८६

६ ऋग्वेद ७.१००.६

है।^१ एक अत्यन्त सुन्दर बालक गर्भस्थ करने के लिए भी इनकी प्रार्थना की गयी है।^२

व्युत्पत्ति - विष्णु शब्द का मूल रूप 'विष्' (सतत क्रियाशील रहना) धातु माना जाता है। मँकडोनेल, श्रेडर आदि विद्वानों ने इसी मत को स्वीकार किया है, एवं उनके अनुसार सतत् क्रियाशील रहनेवाले सौर स्वरूपी विष्णु की यह उपाधि सुयोग्य है। अन्य विद्वत्तवर्ग विष्णु शब्द का मूल रूप 'विश्' (व्यापन करना) मानते हैं, एवं विश्व की उत्पत्ति करने के बाद विष्णु ने उसका व्यापन किया, यह अर्थ वे 'विष्णु' शब्द से ग्रहण करते हैं। पौराणिक साहित्य में इसी व्युत्पत्ति का स्वीकार किया गया है, जैसा कि विष्णु-सहस्र नाम की टीका में कहा गया है:-

चराचरेषु भूतेषु वेशनात् विष्णु रूच्यते ।

डॉ. दांडेकरजी के अनुसार, विष्णु का मूल रूप 'वि+स्ना' था, एवं उससे हवा में तैरनेवाले पक्षी की ओर सङ्केत पाया जाता है।^३

ब्राह्मण ग्रन्थों में - विष्णु ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वश्रेष्ठ देवता माने गये प्रतीत होते हैं।^४

ऐतरेय ब्राह्मण कहा है कि यज्ञविधि में सर्वश्रेष्ठ देवता विष्णु हैं, एवं सर्वाधिक कनिष्ठ देवता अग्नि हैं।

अग्निर्वै देवानावमो, विष्णुः परमः ।

तदन्तरेण सर्वाः अन्याः देवता ॥

अथर्ववेद में यज्ञ को उष्णता प्रदान करने के लिए विष्णु का स्तवन किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु के तीन पगों का प्रारम्भ पृथ्वी से होकर

१ ऋग्वेद ७.३६

२ ऋग्वेद १०.१८४.१

३ डॉ. दांडेकर, पृ. १३५, प्राचीन चरित्र कोश, विष्णु, पृ. ८८१

४ शतपथ ब्राह्मण १४.१.१.५

द्युलोक में समाप्त होता है, ऐसा माना गया है। विष्णु के परमपद को वहाँ मनुष्यों का चरम अभीष्ट, सुरक्षित शरणस्थल माना गया है।^१

उस विष्णु की श्रेष्ठता का साक्षत्कार कराने के लिए अनेकानेक कथाएं वर्णित की गयी हैं जिनमें दो कथाएं प्रमुख हैं।

एक बार देवों ने ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए एक यज्ञ किया, जिस समय यह तय हुआ कि, जो यज्ञ के अंत तक सर्व प्रथम पहुँचेगा वह देव सर्वश्रेष्ठ माना जायेगा। उस समय यज्ञस्वरूपी विष्णु अन्य सारे देवों से सर्वप्रथम यज्ञ के अंत तक पहुँच गये, जिस कारण वे सर्वश्रेष्ठ देव की प्रतिष्ठा को प्राप्त हुए। आगे चल कर इनका धनुष टूट जाने के कारण, इनके मस्तक पर भीआघात हुआ, जिसने सूर्यबिम्ब का आकार धारण किया।^२ उसी सिर को अश्विनी के द्वारा पुनः जोड़ कर, द्युलोक के स्वामी हो गये।^३

एक बार देवासुर-संग्राम में देवों की पराजय हुई, एवं विजयी असुरों ने पृथ्वी का विभाजन करना प्रारम्भ किया। वामनाकृति विष्णु के नेतृत्व में देवगण असुरों के पास गये, एवं पृथ्वी का कुछ हिस्सा माँगने लगे, फिर विष्णु के तीन पगों में जितनी आती हो उतनी ही भूमि देवों को देने के लिए असुर तैयार हुए। तत्काल विष्णु ने विराटरूप धारण किया, एवं अपने तीन पगों में तीनों लोक, वेद एवं वाच् को नाप लिया।

विष्णु के दो अन्य अवतारों के स्रोत भी ब्राह्मण ग्रंथों में प्राप्त हैं, प्रलयजल से मनु को बचाने वाले मत्स्य, एवं आद्य-जल में भ्रमण करने वाले कच्छप ये दोनों शतपथ ब्राह्मण में वर्णित हैं। यह पौराणिक साहित्य में विष्णु के अवतार के नाते सुविख्यात हुए।^४

१ शतपथ ब्राह्मण १.९.३.

२ शतपथ ब्राह्मण १४.१.१

३ तैत्तिरीय आरण्यक ५.१.१-७

४ शतपथ ब्राह्मण १.८.१; ७.५१

उदनिषदों में - मैत्रायणी उपनिषद् में, समस्त सृष्टि धारण करनेवाला अन्न परब्रह्म को भगवान् विष्णु कहा गया है। कठोपनिषद् में साधक के आध्यात्मिक साधना का अंतिम-‘श्रेयस्’ विष्णु का परम पद बताया गया है। इन निर्देशों से प्रतीत होता है कि, उपनिषद् काल में विष्णु इस सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ देवता माने जाने लगे थे। डॉ. भांडारकर जी के अनुसार, उपनिषदों में वर्णित ‘परमब्रह्म’ की विचारणा वैदिक साहित्य में निर्दिष्ट विष्णु के ‘परमपद’ की उद्भावना से काफी मिलती जुलती है।

इसी वैचारिक साधर्म्य के कारण, वैदिकोत्तर काल में विष्णु तत्त्वज्ञों के द्वारा पूजित एक सर्वमान्य देवता हुए।

गृह्यसूत्रों में - आपस्तम्ब, हिरण्यकेशिन, पास्कर आदि आचार्यों के द्वारा प्रणीत विवाह विधि में, सप्तपदी-समारोह, के समय निम्नलिखित मन्त्रों का वैदिक मन्त्रों के साथ अत्यन्त श्रद्धाभाव से पाठ किया जाता है:-

विष्णुस्त्वां आनयतु।

इस जीवन में विष्णु सदैव तुम्हारा मार्गदर्शन करते रहें। इससे परवर्तीकाल में विष्णु अधिक महत्त्वपूर्ण देवता हो गए। भले ही ऋग्वेद में नारायण व विष्णु का ऐक्य अथवा तादात्म्य न रहा हो, पर ऋग्वेदीय पुरुष को सहस्रशीर्षा, सहस्राक्ष और सहस्रपात् कहा गया। और इन विशेषणों की उपादेयता विष्णु, नारायण की महनीयता को अभिव्यक्त करती है। महाभारत में नारायणीयोपाख्यान में नारायण के द्वारा नारद जी को पाञ्चरात्र सिद्धान्त का आख्यान किया जाना, शतपथ ब्राह्मण में पाञ्चरात्र सत्र की अभियोजना पुरुष नारायण के द्वारा, यह प्रमाणित करती है कि पाञ्चरात्र और नारायण का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। अतः संहिताओं में उन्हें पुरुष, अच्युत, सत्य, अनिरुद्ध, भगवान् वासुदेव, विष्णु, सङ्कर्षण, चतुर्भुज, यज्ञपुरुष, वृष्णि, चतुरानन, वैकुण्ठपति, एवं वैकुण्ठमूर्ति आदि अनेकों नामों और स्वरूपों में अभिवन्दित किया गया है।

महाभारत में - महाभारतकाल में वह समस्त सृष्टि के नियन्ता एवं शास्ता देवता माने गये। महाभारत में प्राप्त ब्रह्मदेव-परमेश्वर संवाद में ब्रह्मा के द्वारा 'परमेश्वर' को नारायण, विष्णु एवं वासुदेव आदि नामों से संबोधित किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि, महाभारतकाल में विष्णु, वासुदेव, नारायण के ऐक्य स्वरूप की प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी थी।^१

महाभारत में प्राप्त 'अनुगीता' में वासुदेव कृष्ण एवं श्रीविष्णु का साधर्म्य स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है। भगवद्-गीता तक के समस्त साहित्य में एक ही 'वासुदेव-कृष्ण' की उपासना प्रतिपादित की गयी है, एवं वहाँ कहीं भी विष्णु पद का निर्देश प्राप्त नहीं है, वह सर्वप्रथम अनुगीता में प्राप्त है।

महाभारत-युद्ध के पश्चात्, द्वारका आते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की भेंट भृगुवंशीय उत्तङ्क ऋषि से हुई। महाभारत युद्ध के संहारसत्र की वार्ता सुन कर उत्तङ्क ऋषि अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, एवं श्रीकृष्ण को शाप देने के लिए प्रवृत्त हुआ उस समय कृष्ण ने उसे 'अनुगीता' के रूप में आध्यात्म तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया, एवं उत्तङ्क को अपना विराट् स्वरूप दिखाया। किन्तु उस विराट् स्वरूप को अनुगीता में 'विष्णु का सत्य स्वरूप' (वैष्णव रूप) कहा गया है, जिसे भगवद्गीता में 'वासुदेव का सत्य स्वरूप' (वैष्णव रूप) कहा गया।^२

महाभारत में अन्यत्र युधिष्ठिर के द्वारा किये गये कृष्ण-स्तवन में कृष्ण को विष्णु का अवतार कहा गया है।^३ महाभारत में बहुधा सर्वत्र विष्णु को 'परमात्मा' माना गया है, फिर भी विष्णु-स्वरूपों में नारायण एवं वासुदेव-कृष्ण के उल्लेख वहाँ अधिक बार उपलब्ध हैं।

१ महाभारत भीष्मपर्व ६१.६२

२ महाभारत आश्वमेधिकपर्व ५३-५५

३ महाभारत शान्तिपर्व ४३

विष्णु-उपासना के अन्य सन्दर्भ - जैसे पहले ही कहा गया है, महाभारत में एवं उस ग्रंथ के उत्तरकाल में प्रचलित विष्णु-उपासना में, वैदिक विष्णु में वासुदेव कृष्ण एवं नारायण ये दो रूप सम्मिलित हो गये। विष्णु-उपासना में प्राप्त, वैदिक विष्णु के साथ कृष्ण धर्म चक्र के इस आवर्तन में, सात्वतधर्म की वासुदेव पूजा में स्वयं कृष्ण वृष्णीवंशीय वासुदेव पुत्र थे। अतः वे सर्वश्रेष्ठ पूज्य देव हुए। महाभारत के बाद भक्ति की महत्ता, एवं मूर्तिपूजा का वैशिष्ट्य उत्तरोत्तर महनीय, एवं सभी वर्णों को ग्राह्य और सुलभ तथा सर्वविध प्रिय होता गया।

राजपूताना में स्थित घोंसुंडि ग्राम में प्राप्त २०० ई. पू. के शिलालेख में वासुदेव एवं सङ्कर्षण की उपासना का निर्देश प्राप्त है। बेसनगर ग्राम में प्राप्त हेलिओदोरस के २०० ई. पू. के शिलालेख में भी वासुदेव की उपासना प्रीत्यर्थ एव गरुडध्वज की स्थापना करने का निर्देश प्राप्त है, जहाँ उसने स्वयं को भागवत कहा है। इससे प्रतीत होता है कि, पूर्व मालव देश में २०० ई. पू. में वासुदेव की देवता मान कर पूजा की जाती थी, एवं उसके उपासकों को भागवता कहा जाता था। हेलिओदोरस स्वयं तक्षशिला का यूनानी राजदूत था, अतः सम्भव है, कि भागवतधर्म का प्रचार उत्तरी-पश्चिम प्रदेश में रहनेवाले यूनानी लोगों में भी प्रचलित रहा हो। इसी प्रकार नानाघाट में प्राप्त ई. स. पहली शताब्दी के शिलालेख में भी वासुदेव एवं सङ्कर्षण देवताओं का निर्देश प्राप्त है।

पतञ्जलि में महाभाष्य में वासुदेव का स्पष्टीकरण देते समय, उन्हें वृष्णि-वंश में उत्पन्न क्षत्रिय राजा न मानकर, एक स्वतन्त्र दिव्य-देवता प्रतिपादित किया हैं, ऐसा स्पष्टीकरण प्राप्त है। फिर भी भागवत-सम्प्रदाय में सर्वत्र वासुदेव-कृष्ण को वृष्णि राजकुमार ही माना जाता है, साथ ही वे विष्णु के अवतार और प्रभावशील व्यक्तित्व सम्पन्न भी कहे गए हैं।

वासुदेव-कृष्ण उपासना - वासुदेव उपासना का सर्वाधिक प्राचीन निर्देश पतञ्जलि के व्याकरण-महाभाष्य में प्राप्त है, जहाँ वासुदेव को एक

उपासनीय देवता कहा गया है^१ इससे प्रतीत होता है की, पाणिनि के काल में वासुदेव की उपासना की जाती थी।

डॉ. भांडारकर के अनुसार, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध ये सभी वृष्णि अथवा सात्वत राजकुमार थे, जिनमें से वासुदेव की पूजा परमात्मा के रूप में पतञ्जलि-काल से सात्वत लोगों में प्रचलित थी। वासुदेव-कृष्ण की इसी पूजा का निर्देश मेगस्थनीस के प्रवास वर्णनों में प्राप्त है, जहाँ यमुना नदी के तट पर स्थित शूरसेन देश में इन देवता की उपासना प्रचलित होने का उल्लेख है।

नारायण उपासना - महाभारत के शान्तिपर्व में 'नारायणीय' नामक उपाख्यान में नारायण की उपासना का सविस्तार विवेचन दृष्टिगत होता है। नारायण शब्द के निर्वचन में-नार शब्द का सम्बन्ध द्रविड शब्द नीर से जोड़ा गया है, और अयन शब्द लेटना, विश्राम करना अर्थ का द्योतक है। इस का अर्थ किया गया कि समुद्र में निवास करने वाले देवता। जब कि महाभारत के उद्योगपर्व एवं नारायणीयोपाख्यान के एक अनुच्छेद में कहा गया है कि परमात्मा ही सभी नरों का आश्रय स्थान है। आर.जी. भण्डारकर ने यह निर्वचन किया है। यद्यपि मेधातिथि ने उक्त शब्द की व्याख्या में कहा है कि ब्रह्मा नरों की चिर निद्रा के धाम हैं इसलिए नारायण कहे गये हैं। यहाँ नर तथा अयन के योग से नारायण शब्द की युति की गई है। जब कि पाणिनी के अनुसार -नङ् धातु से व्युत्पन्न नाडायन गोत्र का सूचक शब्द है, अथवा उस स्थान का जहाँ नङ् समुदाय होता है। अर्थात् नङ् से नर शब्द की उद्भावना की जाती है। यहाँ पर व्यष्टिगत सत्ता का समष्टिगत सत्ता में समविष्ट हो जाना है। 'पाञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता नारायणः स्वयम्' (रामानुजाचार्य रचित श्री भाष्य में पाञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य कह कर उद्धृत करते हुए कहा गया है कि वेद वेद्यश्च पर ब्रह्म भूतो नारायणः, अतो वेदान्त वेद्य परब्रह्म भूतो नारायणः स्वयमेव पाञ्चरात्रस्य वक्ता....) महाभारत के शान्ति पर्व में नारायण के मुख से उद्गीथ पाञ्चरात्र धर्म को नारद ने अधिगत किया, एवं नारद ने इस धर्म को ऋषिपरम्परा तक पहुँचाया। तभी सर्वत्र यह उल्लेख है कि 'नारायण मुखोद्गीतं

नारदोऽश्रावयन्मुनीन् स्पष्ट है कि प्रथम वक्ता स्वयं नारायण हैं। इस तथ्य के अनुसार इस सृष्टि के परमात्मा नारायण ने एकान्तिक धर्म का कथन सर्वप्रथम नारद को किया था, जो आगे चल कर उन्होंने 'हरि-गीता' के द्वारा जनमेजय को उपदेश किया था। यही उपदेश महाभारत युद्ध के प्रारम्भ में कृष्ण-नारायण ने अर्जुन को किया था। इस सात्वत धर्म का उपदेश नारायण प्रत्येक मन्वन्तर का प्रारम्भ में स्वयं नारायण करते हैं, एवं मन्वन्तर के अन्त में वह नष्ट हो जाता है। इस मन्वन्तर के प्रारम्भ में भी नारायण ने अपने इस धर्म का निवेदन दक्ष, विवस्वत्, मनु एवं इक्ष्वाकु राजाओं को किया था।

यज्ञ में की जाने वाली पशुहिंसा ऋषियों के द्वारा त्याज्य मानी गयी है, एवं शरीर को सुखा कर की जाने वाली निष्ठुर तपस्या की अपेक्षा, नारायण की निष्ठापूर्वक भक्ति प्रतिपदित की गयी है। इसी संदर्भ में बृहस्पति के द्वारा की गयी यज्ञसाधना, एवं एकत, द्वित, एवं त्रित आदि ऋषियों के द्वारा हजारों वर्षों तक की गयी तपः साधना निष्फल बतायी गयी है, तथा इन दोनों उपासना पद्धति को त्याग कर हरि की भक्ति करनेवाला उपरिचर वसु वैष्णवराजा श्रेष्ठ माना गया है।

इससे प्रतीत होता है कि, हिंसा-युक्त यज्ञमार्ग एवं कठोर तपस्यामार्ग छोड़ कर आरण्यकों में निर्दिष्ट मार्गों से के रूप में प्रतिष्ठित हुआ भक्ति सिखाने वाला-‘नारायण सम्प्रदाय’ एक श्रेष्ठ कोटि का भक्ति-सम्प्रदाय होकर प्रतिष्ठित हुआ।

कंसवध के लिए मथुरा में उत्पन्न हुए कृष्ण को ‘नारायण’ अथवा ‘वासुदेव’ का अवतार स्वीकार किया गया। नारायण के इसी अवतार द्वारा प्रणीत ‘भगवद्गीता’ के द्वारा वैष्णवधर्म का पुनरुत्थान हुआ, एवं देशव्यापी धार्मिक आन्दोलन के रूप में यह सम्प्रदाय पुनरावैष्कृत हुआ।

विष्णु देवता की उत्क्रान्ति

वैदिक साहित्य में एक सौर देवता के रूप में वर्णित किया गया विष्णु, ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ-देवता बन गये। आगे चल कर यज्ञ-यागादि कर्मकाण्डों की लोकप्रियता जब कम होने लगी, तब इन कर्म-काण्डों से प्राप्त होनेवाला पूर्ण भाग केवल विष्णु की उपासना से ही प्राप्त होता है, ऐसी

धारणा समाज में बद्धमूल हुई।^१ इसी काल में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश इस त्रिमूर्ति की अवधारणा प्रचलित हुई, एवं ये तीन देवता क्रमशः सृष्टि के उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय की अधिष्ठात्र देवता बन गये।^२ समान्यतः तभी विष्णु को ॐकार उपासना में स्थान प्राप्त हुआ ॐकार में से 'उ' कार के साथ श्रीविष्णु को समीकृत किया जाने लगा। उपनिषदों में अन्यत्र विष्णु के नाम से एक गायत्री-मन्त्र दिया गया है, एवं गोपीचन्दन को विष्णु-चंदन कहा गया।

पौराणिक साहित्य- इस साहित्य में इन्हें सत्त्वगुण प्रधान देवता माना गया, जगत्संचालन एवं पालन का कार्य इन्हीं के अधीन माना गये। विष्णु ही विभिन्न युगों में, यह नानाविध अवतार धारण कर पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं, तथा दुष्टों के संहार का एवं पृथ्वी के पालन का कार्य करते हैं।

विष्णु का विस्तृत स्वरूप वर्णन पुराणों में प्राप्त है, जहाँ इन्हे चतुर्हस्त, एवं शंख, चक्र, पद्म, गदाधारी बताया गया है। इनके आयुधों में शार्ङ्ग धनुष एवं नन्दन खड्ग और आभूषणों में पीताम्बर, वनमाला, किरीट-कुंडल एवं श्रीवत्स प्रमुख हैं। नारायण की शक्ति लक्ष्मी, श्री, विभूति है, एवं वे उनकी अर्धांगिनी हैं। वैकुण्ठलोक में नारायण उनके साथ निवास करते हैं, और क्षीरसागर में शेषनाग पर शयन करते हैं। विष्णु के इन्हीं गुण वैशिष्ट्यों के आधार पर इनके सहस्र-नाम प्रचलित हुए, जो 'विष्णुसहस्रनाम' के रूप में उपलब्ध हैं।

भागवत में विष्णु का निम्नलिखित वर्णन प्राप्त है:-

क्षीरोदं मे प्रियं धाम, श्वेतदीपं च भास्वरम् ।
श्रीवत्सं कौस्तुभं मातां, गदां कौमोदकी मम ॥
सुदर्शनं पाञ्चजन्यं सुपर्णं पंतगेश्वरम् ।
शेषं सत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवी महाश्रयाम् ॥

१ मैत्रायणी उपनिषद् ६.१६.

२ मैत्रायणी उपनिषद् ४.५; शिखा. २

वैष्णव संहिताओं में स्थान-स्थान पर विष्णु-नारायण-वासुदेव की महिमा, स्तुति विशेष वर्णित हैं। सात्वत संहिता में उल्लिखित है कि-

देवो वामनदेहस्तु सर्वव्यापी त्रिविक्रमः ।

नरो नारायणाश्चैव हरिः कृष्णस्तथैव च ॥ १

जयाख्य संहिता में ब्रह्मसर्गाख्यानम् में देवर्षि नारद भगवान् की स्तुति करते हैं-

नमोऽस्तु परमेशाय कारणाय पराय च ।

सहस्रत्रशिरसे तुभ्यं सहस्रत्रचरणाय च ।

सहस्रत्रनयनस्रोत सहस्रान्द्रुतविक्रम ॥ २

लक्ष्मीतन्त्र में श्रीसूक्तभावप्रकाश नामक अध्याय में शक्र और श्री के संवाद में कहा गया है कि -

देवो नारायणो नाम जगतस्तस्थुस्पतिः ।

आत्मा च सर्वलोकानां षाड्गुण्यानन्दविग्रहः ॥ ३

मार्कण्डेय संहिता में -वासुदेवो गदाशङ्खचक्राम्बुजधरस्मृतः ।^४

पाद्म संहिता में अध्याय समाराधनाङ्गमन्त्रोद्धारः में पद्म और संवर्त संवाद में पद्म कहते हैं-

वासुदेवः परं ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ।

अथ विस्मयमानात्मा ब्रह्मलोकपितामहः ॥ ५

१ सात्वत संहिता नवमः परिच्छेदः ८२.पृ.१८९

२ जयाख्य संहिता पृ.२१. ५-६

३ लक्ष्मीतन्त्र श्रीसूक्तभावप्रकाश ५०.४

४ मार्कण्डेय संहिता ८.१०

५ पाद्म संहिता पृ.५५६.१९३

सङ्कर्षणः - स्वरूप परिचय

कृष्धातु से सम् उपसर्गपूर्वक - ल्युट् प्रत्यय पूर्वक सङ्कर्षण शब्द जोतने या लीक बनाने की प्रक्रिया के अर्थ में सिद्ध होता है।

पाञ्चरात्र संहिताओं में तालध्वजधारी सङ्कर्षण - वासुदेव रोहणी के पुत्र महाबली बलराम हैं जो भीम और दुर्योधन के गदा शास्त्र के आचार्य थे महाभारत में उनका उल्लेख मुख्यतः महाभारत के प्रेरक बिन्दु अनुज वासुदेव कृष्ण की इच्छा एवं ऐश्वर्य के संवर्धन के रूप में है।

भागवत पुराण के अनुसार योगमाया ने कंस के भय से देवकी के सातवें शिशु को उसकी कुक्षि से रोहणी की कुक्षि में स्थानान्तरित कर दिया था, गर्भस्थ शिशु को एक कुक्षि से दूसरी कुक्षि में सङ्कर्षित किया गया था - इसीलिये इसका नाम सङ्कर्षण हुआ।

सङ्कर्षण का सन्दर्भ

चतुर्थ शतक ई. पू. के प्रचलित विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों तथा मिथ्या धर्मों का निर्देश जो पाली बौद्ध धर्म गणक निदेस नामक टीकाग्रंथ है, इसमें वासुदेव बलदेव का उल्लेख है। यहीं भी कहा गया है कि बलदेवोपासना - अग्नि, सूर्य, चन्द्र एवं ब्रह्मा की तथा अधम पशुओं की मिथ्या उपासनाओं को दबा कर भारत के विशाल भूभाग का प्रमुख धर्म बन गई थी।

समाज के सर्वग्राही देव स्वरूप के सम्पन्न सङ्कर्षण का कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में उल्लेख करते हुए कहा कि गुप्तचरों को चाहिये कि वे भगवान् सङ्कर्षण के संन्यासी उपासकों के छद्म वेश में यज्ञीय सुरा में मदन मादन पौधे का रस मिलाकर उसे शत्रु के चरवाहों को दें। उक्त उल्लेख उनका यज्ञीय सोम रस पान करने वाले देवता के रूप का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है, जिनके नेत्रों निरन्तर मदोन्मत्त की स्थिति में घूर्णमान रहते हैं।

अन्य स्रोतों में पाणिनि और भाष्य करते हुए पतञ्जलि ने वासुदेव की उपासना का उल्लेख किया है।

सङ्कर्षण के संदर्भ में चिलास और गिलगित क्षेत्र में वासुदेव और सङ्कर्षण के शैल चित्रों को उल्लेख एवं अगाथा क्लीज नामक शासक की प्राप्त मुद्राओं में वासुदेव और सङ्कर्षण के चिह्नित बिम्ब लगभग ई. पू. द्वितीय शताब्दी के काल के हैं। एवं नारायणीयोपाख्यान में वर्णित श्वेत द्वीप जो सुमेरु के पश्चिम में स्थित है, वह भी सम्भवतः भारत के पश्चिमोत्तर भाग की सीमाओं पर स्थित था, अतः वासुदेव सङ्कर्षण की उपासना स्वरूप भागवत् धर्म की ख्याति तब तक उन क्षेत्रों में हो चुकी थी।

नानाघाट की विशाल गुफा के अभिलेख क्रं. एक में प्रारम्भिक वन्दन में अन्य देवों के नामों के साथ सङ्कर्षण एवं वासुदेव के नाम द्वन्द्व समास में प्राप्त होते हैं। अक्षरों की आकृति से यह अभिलेख ई. पू. प्रथम शतक का प्रतीत होता है।

सात्वत परम्परा और सङ्कर्षण -

द्वापर युग के अंत में सङ्कर्षण ने सात्वत-विधियों के ज्ञान का दर्शन एवं प्रकाशन किया। विष्णु पुराण के तृतीय खंड के बारहवें अध्याय के अंत में यादवों और वृष्णियों की वंशवाली के विवरण में यह बतलाया गया है कि 'सात्वत' अंश का पुत्र था तथा उसी के वंशज सात्वत कहलाये। सङ्कर्षण और वासुदेव को सत्वतर्षभ भी कहा गया।

भागवत् पुराण में सात्वतों के परम ब्रह्म को भागवत् या वासुदेव एवं उनकी विशिष्ट पूजा पद्धति के करने वाले सात्वत कहा गया।

'सङ्कर्षण वासुदेवों' राजवंशीय वृष्णि नामों को द्वन्द्व समास के रूप में दिया गया है, अतः वे कृष्ण के अग्रज एवं वृष्णियों के नायक के रूप में चित्रित हैं।

सम्भवतः नाग देवता सङ्कर्षण भी वृष्णियों के बलदेव के साथ प्रचलित हुए हों, वृष्णि वंशीय बलदेव की मान्यता पतञ्जलि के पूर्व ही

स्थापित हो चुकी थी। यद्यपि ई. पू. पहली शताब्दी का एक अभिलेख सङ्कर्षण वासुदेवाभ्यां कह कर दोनों को समान स्तर का देवता सिद्ध करता है।

पतञ्जलि के महाभाष्य में प्राप्त उक्त अवतरण के आधार पर यह युक्ति दी गई थी कि पाञ्चरात्र का व्यूह सिद्धान्त कम से कम ई. पू. २०० वर्ष पुराना है। किन्तु कुछ पूर्वोक्त अभिलेखों के सही विश्लेषणों के उपरान्त उक्त मान्यता में यह संशोधन करना पड़ा कि भागवत् धर्म पूर्व से पर्याप्त प्रचारित हो चुका था, परन्तु व्यूह सिद्धान्त के अन्तर्गत सङ्कर्षण की स्थिति बाद की है, यह इन अभिलेखों में सङ्कर्षण को वासुदेव का पूर्ववर्ती कहा गया है, जो व्यूह योजना के विपरीत है। अतः अभिलेखीय स्रोत यद्यपि व्यूह सिद्धान्त की क्रम योजना को रेखाङ्कित न कर पायें तो भी त्रिःसंदेह और वासुदेव के ईश्वरत्व का व्यापक प्रभाव दर्शाते हैं। यहाँ यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि व्यूह की अवधारणा दार्शनिक सिद्धान्त है उसके क्रम को ऐतिहासिक दृष्टि से देखना कहा तक उपयुक्त है।

मुद्राओं के साक्ष्य

प्राचीन काल में सिक्कों पर प्राप्त चिह्न प्रायः धार्मिक देवी देवता के आयुध या ध्वज आदि के प्रतीक चिह्नों से टंकित होते थे। तक्षशिला की कुछ ठप्पेदार मुद्राओं पर जहाँ वैष्णव चिह्न अङ्कित हैं वही कुछ मुद्राओं पर सङ्कर्षण के चिह्न तालवृक्ष शीर्ष का चित्र अङ्कित है आगे जाकर गुप्त सम्राटों एवं उनके सामन्ती राजाओं के सिक्कों पर प्रायः अङ्कित है, अङ्कित गरुण के चिह्न अधिकृत वैष्णव धर्म के प्रभाव की पुष्टि करते हैं।

यद्यपि सङ्कर्षण वासुदेव, पुरातात्विक एवं अभिलेखीय सन्दर्भों में ई. पू. चतुर्थ शताब्दी से ही उल्लिखित हैं परन्तु व्यूह-सिद्धान्त में उनका द्वितीय क्रम में उल्लेख ई. सन् चतुर्थ शताब्दी के लगभग प्रारम्भ हुआ होगा।

स्वरूप एवं वेश

सङ्कर्षण गौरवर्ण के हैं तथा वे काले और नीले वस्त्र पहनते हैं। उनकी प्रतिमाओं पर नागछत्र सज्जित है। अतः हो सकता है कि बलदेव के पौराणिक चरित्र का विकास किसी नागदेवता के चरित्र से हुआ है।

इसीलिये सङ्कर्षण की प्रतिमाओं और नागमूर्तियों में मूर्तिकला विषयक समानताओं के आधार पर के बोगेल के अनुसार जब कृष्ण के सम्प्रदाय की ख्याति फैली तो नाग बलदेव की उपासना कृष्णमत में समाविष्ट हो गई।

सङ्कर्षण का तालध्वज

सुवीरा जयसवाल का मतवय है कि सङ्कर्षण की क्रोधी प्रकृति, व्यसन में मद्यपान एवं नागाङ्कित छत्रधारी सङ्कर्षण के विकास में अवश्य ही मूल में कोई नागदेव रहा होगा। उनका प्रतीक तालपत्र भी इस ओर सङ्केत करता है। तथा पौराणिक परम्परा में शेष-नाग के अवतार के रूप में उनके उल्लेख से इस धारणा की पुष्टि होती है।

रामायण में जो सहस्रफणवाले अनन्त नाग हैं, उसका भी ध्वज तीन शिराओं वाला स्वर्णिम तालपत्र ही है। यह ध्वज देवताओं के द्वारा पूर्वदिशा के एक ऊँचे पर्वत का सङ्केत देने के लिये स्थापित किया गया है। यह तीन शिराओं वाला प्रतीक चिह्न महत्वपूर्ण है क्योंकि यह नागमूलक प्रतीक तो है ही साथ ही बलदेव का ध्वज दंड भी त्रिशिर्ष के रूप में भी हैं।

सङ्कर्षण का वैदिकरुद्र के साथ भावात्मक पर्याय सैधव मुहरों पर एक तीन सींगों वाले त्रिवदन देवता का चित्र है। श्री कोसांबी^१ के अनुमान का आधार है कि वह देवता तीन सिर वाले ब्राह्मण पुरोहित त्वाष्ट्र हैं जो इन्द्र एवं त्रित आप्त्य^२ के द्वारा मारे गये थे। वे अवेस्ता के एक आख्यान का उल्लेख करते हैं, जिसमें श्वेतोन अथव्य के द्वारा अजहाक के शिरोच्छेदन का वर्णन है। 'अजि' संस्कृत के अहि (नाग) का पारसी रूपान्तरण है तथा जोहक जो अजिदहाक ही है के कंधों पर से दो नाग शिर निकाले हुये वर्णित हैं। अतः उस वैदिक आख्यान के अवेस्तीय प्रतिरूप से यह अनुमान किया जा सकता है कि अजिदहाक के समान त्वाष्ट्र भी नागवंशीय थे और ऋग्वेदीय कथा संभवतः इन्द्र एवं त्रिता के द्वारा किसी प्राक् आर्यीय सम्प्रदाय के पराभव का सङ्केत करती है। सर्वत्र सैधव सीलों पर तीन सींगों

१ इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ इन्डियन हिस्ट्री पृ. ८४-८६

२ ऋग्वेद १०-८

का चित्रण रैप्सन द्वारा विवेचित प्रतीक के परम्परागत रूप के बिल्कुल समान है।^१ इसके वे वर्णन आलंकारिक त्रिशूल का प्रतीक चिह्न मानते हैं और इस दृष्टि से भी सङ्कर्षण अपने त्रिशीर्ष तालध्वज के कारण रुद्र शिव के भावत्मक पर्याय रूप में वैष्णव आगमों में अभिज्ञापित हैं। कतिपय बसाढ़ मुद्राओं में पर भी यह चिह्न है अतः यह पवित्र नाग प्रतीक जिस बौद्ध जैन, शैव तथा वैष्णव धर्मों में समान रूप से मान्यता मिली। सङ्कर्षण के साथ भी नाग का घनिष्ठ सम्बन्ध द्योतक है।

सङ्कर्षण का नाम जोतने या लीक बनाने की क्रिया-अर्थात् उनके कृषिसम्बद्ध चरित्र की सूचना देता है। जो प्राक् आर्य संस्कृति को संकेतित करता है।

सङ्कर्षण का कार्य उर्वरता का है तथा उनके आयुध हल एवं मूसल कृषि संस्कृति के वैशिष्ट्य को रेखङ्कित करते हैं।

सङ्कर्षण और वैदिक रुद्र का साम्य स्वरूप-वैदिक साहित्य में रुद्र कोशर्व, पशुपति, उग्र, अर्शान, भव ईशान महादेव आदि कहा गया है तथा अग्नि से अभिन्न माना गया है। सम्भवतः रुद्र की प्रकृति में अग्नि-तत्त्व की प्रधानता इसका कारण रहा है। वैदिकरुद्र की यह उग्रता हलायुध सङ्कर्षण में भी आविष्ट प्रतीत होती है।

भगवान् शिव का भी उर्वरता एवं कृषि से घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनका वाहन नंदी कृषि बल का साधक होकर पूज्य माना गया। अतः पूजा विशेषतः कृषकों के वर्ग में ही प्रचलित थी, ऐसी मान्यता है। अपने एक अवतार में रुद्र हलायुध अर्थात् सङ्कर्षण के रूप में प्रसिद्ध थे अर्थात् मूसल, चावल खाण्ड करने का उपकरण, उठाने या चलाने के लिए वे विख्यात हैं। इसीलिये हलायुध, मुसलि नाम सङ्कर्षण के हुये और हलायुध रुद्र भी उन्हें कहा गया।

१ कैंट, आन्ध्र आदि पृ. १७६ (व्यूहलर) ए. इ. २ पृ. ३/२) और क्लाइ आ. स. इ. ऐ. रि. १९ ०३-४ पृ. १०५

पुराणों में वर्णित है कि न हल के फाल से यमुना की धारा के रुख को उग्र प्रकरण एवं मूसल से ठेल कर हस्तिनापुर को गंगा की ओर मोड़ने का वह घटनाक्रम तथा फसल नष्ट करने वाले बन्दर राक्षस द्विविद का संहार भी उन्होंने किया। अर्थशास्त्र का वह संदर्भ सङ्कर्षण को मुंडित सिर या गुम्फित केश वाले सन्यासियों का देवता बतलाता है। कपर्दिन जो कि गुम्फित और जटिल केश धारण किये शिव के लिये भी यह उपाधि प्रयुक्त होती है। सङ्कर्षण के उपासक भी जटिल केश धारण करते थे परम्परा के शेष-सङ्कर्षण शिव के समान महान योगी थे। वैदिक रुद्र के मूल स्वरूप के साथ सङ्कर्षण का बहुत सीमातिक तादात्म्य है। दोनों ही देवता उर्वरता के प्रतीक हैं, योगी हैं, उग्र प्रकृति के देव हैं; त्रिशालीय ताल-ध्वज सङ्कर्षण शिव के त्रिशूल से साम्य रखता है, सङ्कर्षण वैदिक रुद्र तथा शेषनाग परसपर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। ऐक्य रखते हैं।

पौराणिक आख्यानों में रुद्र सङ्कर्षण की एकरूपता

यद्यपि ब्रह्माण्ड पुराण में अवतार के रूप में हलायुध अर्थात् सङ्कर्षण की चर्चा है। विष्णु पुराण में सङ्कर्षण रुद्र की उल्लेख है, जो प्रत्येक कल्प में शेषनाग के मुख से बाहर आते हैं। हरवंश पुराण में सङ्कर्षण के साथ शेष के दूसरे नाम अनंत को रुद्र से उत्पन्न कहा गया है। भागवत पुराण में सङ्कर्षण वरुण लोक में नाग समुदाय से सेवित हैं।

तथ्यों का यह सामंजस्य ताल वृक्ष सङ्कर्षण से सम्बद्ध है और यह भार शिव नागों के जो शिव के उपासक थे, सिक्कों पर अङ्कित है। यद्यपि इस में तथ्य में वैदिक रुद्र का यह व्यापक प्रभाव और चमत्कारी रूप आगे जाकर पौराणिक आख्यानों में, कभी विष्णु के समकक्ष या उनके स्वरूपगत आवेशों में समाहित हुआ तो कभी सङ्कर्षण के वैशिष्ट्य में समाविष्ट हो गया है। पाञ्चरात्र संहितायें भी सङ्कर्षण को प्रायः रुद्र शिव के साथ सम्बद्ध करती हैं।

इस प्रकार सङ्कर्षण सांस्कृतिक सन्दर्भों में कृषि संस्कृति के प्रतीक भी हैं। नाग जाति का प्रतिनिधित्व भी करते हैं एवं रुद्र के पर्याय बन

कर वैदिक रुद्र की छवि को आत्मसात करते हुए वैष्णव पाञ्चरात्र संहिताओं में संबलित होते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार भागवत और पाञ्चरात्र जो शुरू-शुरू में परस्पर सम्बन्धित थे, गुप्तकाल में आकर एक दूसरे से एकदम भिन्न हो गये। परन्तु बाद में फिर सम्बद्ध मान लिये गये।

इसलिये यह भी माना जाता है कि पाञ्चरात्र से पूरी तरह सम्बद्ध व्यूहवाद सैद्धान्तिक दर्शन के आधार पर अवतारवाद से भिन्न था। व्यूहवादी विचारक प्रथम पाञ्चरात्र संहिता के समय से ही अवतारवाद को सिद्धान्त से परिचित थे। कृष्ण और बलराम को अवतार माना गया था। फिर भी भागवत में विष्णु मत आते थे और पाञ्चरात्र में विभव भेद जो अवतार परम्परा को व्यूह के बाद मानते थे। सुवीरा जायसवाल लिखती हैं कि मौलिक परम्परा में भागवत वासुदेव तक सीमित था, गुप्तकाल में वृष्णि वंशीय कृष्ण और बलराम की उपासना भी दुर्गा, कार्तिकेय और गणेश जैसे नये देवताओं के विकास क्रम के प्रचलित हो गई जिससे बाद में कुछ प्राचीन देवों की प्रतिष्ठा समाप्त हो गई इनमें उल्लेखनीय है सङ्कर्षण। अतः कृष्ण के भाई बलराम व्यवहारतः कृष्ण के साथ अभिन्न हो गये। यद्यपि कुछ महत्त्व रहा भी तो बाद में केवल विष्णु के ही, शेषनाग अवतार रूप में एवं वासुदेव के व्यूह सङ्कर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के साथ चतुर्व्यूह में ही उनकी स्थिति रह गई।

चतुर्व्यूह विभिन्न सन्दर्भ

गुप्तकाल के अभिलेखों में व्यूह सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध की स्वतन्त्र रूप से पूजा होना का कोई उल्लेख नहीं है। यद्यपि इस काल में विकसित पाञ्चरात्र साहित्य में व्यूहवाद को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया। श्रैडर के मत में बहुत सी संहितायें चौथी से आठवीं सदी के बीच कश्मीर में रची गईं। कश्मीर व्यूह सम्प्रदाय का महान केन्द्र था विष्णु के वैकुण्ठ चतुर्मुखी रूप की उपासना को चतुर्व्यूह कहा गया। वैकुण्ठ चतुर्मूर्ति का, विष्णुधर्मोत्तर पुराण में नृसिंह, वराह और कपिल के साथ चतुर्व्यूह के अन्तर्भावित रूप में उल्लेख किया गया, इस मूर्ति का आरंभ में कैलाश क्षेत्र

में पूजा होने लगी। इन तथ्यों से प्रसिद्ध श्वेत द्वीप और नर-नारायण की परम्पराओं से हिमालय क्षेत्र के देशों में पाञ्चरात्र मत की व्यापक लोकप्रियता का सङ्केत मिलता है।

खुजराहों में ९५४ ई. एक अभिलेख में इस वर्ग की मूर्ति का आकर्षक इतिहास मिलता है। उड़ीसा में सङ्कर्षण बलराम और वासुदेव जगन्नाथ स्वरूप में प्रतिष्ठित हुए। वहाँ व्यूहवाद का बदला हुआ स्वरूप बलदेव, कृष्ण, सुभद्रा या एकानंशा में दिखाई देता है, इस प्रकार सङ्कर्षण का स्वरूप चतुर्व्यूह में अभिव्यक्त होकर सर्वत्र पूजा जाने लगा। यद्यपि प्रद्युम्न और अनिरुद्ध की पृथक् पूजा का उल्लेख पूर्ववर्ती काल में भी नहीं था। जबकि सङ्कर्षण पृथक् देव के रूप में अपना महत्त्व रखते थे और चतुर्व्यूह देवता के रूप में भी थे।

महाभारत के शान्ति पर्व में एकान्तिक धर्म की संरचना एवं दर्शन, व्यूह सिद्धान्त के आधार पर है। भगवान् नारायण के द्वारा ब्रह्मा के मानव-जन्म के समय उनके चतुर्मुख से जो श्रवण हुआ और उससे प्रतीत होता है कि एकान्तिक धर्म परम्परा व्यूह समबद्ध है। सात्वतों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। यह विचार पूर्ण तया समीचीन नहीं क्योंकि महाभारत में चतुर्व्यूह का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। यद्यपि सात्वतो का और सात्वत धर्म का उल्लेख अनेकशः है पर व्यूहवाद का वर्णन नहीं है।

वृष्णिवंशी बलदेव का तादत्म्य शेष नाग एवं नारायण

नारायण की उपासना के साथ सङ्कर्षण वासुदेव की उपासना का मेल वैष्णव धर्म के इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना थी। सङ्कर्षण और वासुदेव ई. पू. चौथी शताब्दी के लोक प्रिय देवता थे। मैगस्थनीज एवं कौटिल्य उनका उल्लेख करते हैं। ये दोनों मूलतः जनजातीय देवी एकानंशा के सहायक देवता थे। किन्तु वृष्णि जन जातीय समाज के मातृवंशीय से पितृवंशीय अवस्था में संक्रमण से उसके द्वारा पूजे जाने वाले देवताओं का महत्त्व अधिक हो गया, और वीरता पूर्ण उदात्त चरित्र की अनुश्रुतियाँ इन दोनों बलदेव कृष्ण के स्वरूप में अन्तर्हित हो गई प्रारम्भ में

दोनों देवता समान स्तर पर थे। पर आगे चलकर वासुदेव का नारायण के साथ एकीकरण हो गया और वे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नरावतार नारायण कहलाये। जबकि सङ्कर्षण बलदेव उनके अधीनस्थ सहायक बन कर पृष्ठ भूमि में चले गये। उनका नारायण की शैया एवं शेषनाग के अवतार के रूप में नारायण के साथ अभिन्न सहयोगी की मान्यता मिली, एवं भागवत् धर्म के प्रचार में सङ्कर्षण के पर्याप्त योगदान को संहिताओं में प्रमुखता से रेखाङ्कित किया गया है।

चतुर्व्यूह सिद्धान्त में वर्णित सङ्कर्षण के व्यक्तित्व परक विश्लेषण को पाञ्चरात्र संहिताओं से ग्रहीत किया जा सकता है। और सात्वत, जयाख्य अर्हिबुध्य पारमेश्वर, लक्ष्मीतन्त्र, पाद्म तन्त्र एवं विष्वक्सेन आदि संहिताओं में उनके सन्दर्भ स्थान स्थान पर हैं। इनमें से कुछ संदर्भ भी लिये हैं; जिनमें सङ्कर्षण का व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है। वे ज्ञान और बल के आधिक्य से परिपूर्ण है।

सङ्कर्षणात् सम्पूर्ण विज्ञान बल संकुलात् ।
पूर्णाङ्ग केसरि स्कन्ध पृथगस्थलराजितम् ॥

दूसरे स्थान पर उनके स्वरूप के विषय में कहा गया कि हलधारी है और श्वेत वर्ण को कहा गया।

ऋकाख्यं सितनिष्ठं च त्रेताभो हि महामते ।

वर्ण युगानुरूप शुभ वस्त्र इत्यादि धारण करने के प्रश्न का उत्तर देते हुये चक्रपाणि सङ्कर्षण से कहते हैं जब सत्त्वगुण का आधिक्य होगा तब शुद्ध सात्विक शुभ्र वर्ण होगा। यह वर्ण विपर्यय लोगों की प्रकृति के अनुसार होगा। त्रेता में रक्त वर्ण, अनुराग पूर्ण प्रकृति, से रक्तवर्ण हो गया।

षाडगुण्य सम्पन्न वासुदेव के दो-दो गुण प्रत्येक सङ्कर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध में है। सङ्कर्षण ज्ञान और बल से युक्त हैं। सङ्कर्षण के कार्य द्विविध है प्रलयकर्ता और शिक्षणात्मक। जगत् की सृष्टि और सात्वत धर्म का उपदेश। यद्यपि उन्हें संहारक शक्ति का प्रतीक भी कहा गया है। फिर भी वे सृष्टि में जीव का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहाँ केवल सङ्कर्षण की बात हम

कर रहे हैं। उनका रक्त वर्ण है, अलसी के पुष्प के समान उनके वस्त्र हैं। कहीं द्विभुज कहीं चतुर्भुज, अभय हस्त, शंख, तीर, मूसल-आयुध धारण करते हैं। कहीं-कहीं गदा भी धारण की है।

और कहीं-कहीं पुण्डरीक हाथ में लिये हैं। वलदेव सूर्य के प्रतीक रक्त कौसेय वस्त्र भी धारण करते हैं कहीं पीताम्बर भी पहने हैं सङ्कर्षण जीव स्वरूप है कारण कि गर्भ सङ्कर्षणात् तं रामेति लोक रमणात् उन्हें सङ्कर्षण बलराम कहा गया।

सात्वत और अहिर्बुध्न्य में चतुर्व्यूहों से व्यूहान्तर बताया गया है। जिसमें सङ्कर्षण से गोविन्द विष्णु से मधुसूदन और उनकी शक्तियाँ हैं क्रिया, शान्ति और विभूति। इसी तरह विशाखयूप की कल्पना में सङ्कर्षण सुषुप्ति में दृश्यमान हैं। विशाखयूप में वे द्वितीय व्यूह हैं और द्वितीय व्यूह में नृसिंह वामन और श्रीराम परशुराम अवतार का प्रतिनिधित्व करते हैं।

पद्म संहिता में पूँछा गया है कि भगवान् सृष्टि स्थिति और अन्त समय के मुक्तिदाता हैं। वे अपने को दो प्रकार के चक्र में क्यों लगाते हैं। तब संवर्त मुनि सङ्कर्षण आदि की व्यूहरचना के सन्दर्भ में कहते हैं कि उनमें से एक शुद्ध वासुदेव से युक्त नारायण दूसरे नील अम्बुद के समान प्रभायुक्त हो कर सङ्कर्षण बने हैं। फिर सङ्कर्षण प्रद्युम्न होते हैं और प्रद्युम्न अनिरुद्ध होते हैं। सङ्कर्षण के आवाहन से ज्ञानाधिक्य से वे और उपदेष्टा सात्वत धर्म के संप्रवर्तक के रूप में ख्याति पाते हैं। सत्वत संहिता में कह गया है कि वे बल से आधिक्य में प्रद्युम्न ऐश्वर्य के आधिक्य में अनिरुद्ध होते हैं। आगे वे कहते हैं कि चतुर्व्यूह के यथाक्रम से मत्स्य कूर्म वराह वासुदेव से हुए नृसिंह वामन, राम, जामदग्न्य-सङ्कर्षण से हुये, प्रद्युम्न से बलराम हुए और अनिरुद्ध से कृष्ण और कल्की ऐसे दशावतार हुए।

अहिर्बुध्न्य में सङ्कर्षण

आहिर्बुध्न्य संहिता में कहा गया है कि जब द्वापर युग समाप्त हो रहा था तो अहिर्बुध्न्य ने जो कुछ भी सङ्कर्षण से ज्ञान प्राप्त किया था वही इस संहिता का मन्तव्य है।

सङ्कर्षण का शास्त्र ज्ञान अध्येता और अध्ययापन का है। यह विधि के अन्तर्गत शास्त्रों की व्याख्या, शास्त्र चर्चा कार्य ये सङ्कर्षण के द्विविध कार्य हैं।

आहिर्बुध्न्य संहिता के अनुसार ज्ञान का जो भी स्रोत है वह सङ्कर्षण से ही प्रारम्भ होता है। सम्पूर्ण विश्व की व्यवस्था का सञ्चालन भी जो सङ्कर्षण से प्रारंभ होता है। यह पाञ्चरात्र में भी प्राप्त है।

यदि वैखानस और पाञ्चरात्र के चतुर्व्यूह पर दृष्टिपात करें तो वैखानस में पुरुष, सत्य, अच्युत, अनिरुद्ध और पाँचरात्र में वासुदेव, सङ्कर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध है। प्रद्युम्न को विष्णु का प्रतीक बहुत स्थानों पर कहा गया। पुरुष तो पर वासुदेव अतः सत्य ही सङ्कर्षण हो सकते हैं। वैखानस में नामतः सङ्कर्षण का समावेश न हो पर भी विचार होना चाहिये।

संहिताओं में स्वरूप विवेचन में कहीं साम्य और वैषम्य मिलता है। पुरुष सूक्त से विष्णु वासुदेव की अर्चना की जाती है। नारायण, विष्णु वासुदेव के गायत्री मन्त्र उपलब्ध हैं। और द्वादश एवं अष्टाक्षर मन्त्रों का भी स्थान-स्थान पर उल्लेख है।

उसी प्रकार पौष्कर संहिता में व्यूह भेद लक्षण में 'आत्मव्यूहादिक कुर्यात् संज्ञामन्त्र चतुष्टयम् के अन्तर्गत कहा गया कि चतुर्व्यूह में चार-चार मन्त्रों का प्रयोग होना चाहिए।

सात्वत में सङ्कर्षण के पूछने पर भगवान् चक्रपाणि कहते हैं प्रभु चतुर्व्यूह मन्त्रों के माध्यम से पूजे जाते हैं।

यद्यपि पहले ब्राह्मण ही मन्त्रोच्चारण करता था परन्तु बाद में ये मन्त्र किसी भी वर्ण के द्वारा बोले जाने लगे। इस प्रकार वैदिक मन्त्रों को जन सामान्य तक लाने का श्रेय बहुत सीमा तक पाञ्चरात्र संहिताओं का भी है।

सुषुप्ति व्यूह अर्थात् सङ्कर्षण ही मन्त्रद्वार में ही वर्ण उनकी गहरी निद्रा का प्रतीक हैं। इस प्रकार मन्त्र और वर्ण चक्र का सामंजस्य भी

संहिताओं में वैदिक परम्परा की जीवन्तता का प्रतिध्वनित करता है। इस तरह निष्कर्ष स्वरूप कृष्ण समाज एवं वैश्यवर्ण के देवता जो नागों से एवं रुद्र से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं जिन्हें सङ्कर्षण, हलायुध, रोहिण्य, बलराम, बलदाऊ, बलभद्र (जगन्नाथ के साथ) एवं वासुदेव के अग्रज परन्तु चतुर्व्यूह परम्परा में द्वितीय क्रम में सृष्टि संहरण जिनके कार्य एवं सम्पूर्ण शास्त्र-पराम्परा के अधीत आचार्य तालशीर्ष ध्वज के धारक भगवान् सङ्कर्षण पाञ्चरात्र परम्परा में, भागवत् सम्प्रदाय में, सात्वत धर्म एकान्तिन अनुयायियों के आराध्य वैष्णवों के लिये प्रेरणा स्रोत हैं।

वन्दे तं जगदीश्वर सुरगुरुं सङ्कर्षणाख्यं प्रभुम् ॥

प्रद्युम्न

(सो. क्रोष्टु.) एक सुविख्यात यादव राजकुमार, जो सनतकुमार के अंश से भगवान् कृष्ण को रुक्मिणी से उत्पन्न हुए थे।^१ इन्हें श्रीकृष्ण का तीसरा स्वरूप माना जाता है।^२

प्रद्युम्न का पूर्व जन्म का वृत्तान्त -

प्रद्युम्न मदन के अवतार थे, जिसने शंबरासुर का वध करने के लिए रुक्मिणी की कोख में जन्म लिया था। शंबरासुर की पत्नी मायावती थी, पूर्वजन्म से मदन पत्नी रति को शंबरासुर भगा लाया, इसी का बदला लेने के लिए इन्हे अवतार लेना पड़ा।

बाल्यकाल - शंबरासुर को जैसे ही ज्ञात हुआ कि मदन ने उसका वध करने के लिए प्रद्युम्न के रूप में रुक्मिणी के गर्भ में जन्म लिया है। वह तत्काल सूतिकागृह में जा कर छः दिन के शिशु प्रद्युम्न को लेकर भागा, तथा इसे ले

१ महाभारत आदिपर्व ६१.९१

२ महाभारत अनुशासनपर्व १५८.३९

जाकर समुद्र में फेंक कर निश्चिंत हो गया। दैवयोग से, इस शिशु को एक मछली ने निगल लिया, तथा वहाँ उसके पेट में प्रद्युम्न जीवित रहे। यह मछली एक मछुहारे को मिली। मछुहारे ने अच्छी मछली देखकर उसे शंबरासुर को भेंट की।

शंबरासुर हँसी-खुशी घर आया तथा उक्त मछली को अपनी स्त्री मायावती को दे दी। जैसे ही मायावती ने मछली काटी वैसे ही उसमें एक दिव्य बालक को देखकर वह आश्चर्य-चकित हो गयी, एवं उसके मन में विभिन्न शंकाएँ उटने लगी। उसी क्षण भ्रमण करते हुए नारद जी वहाँ आ पहुँचे तथा उन्होंने मायावती की शंका का समाधान करते हुए कहा, 'यह दिव्य बालक साधारण न होकर साक्षात् मदन है, जिसने रुक्मिणी के गर्भ से जन्म लिया है। पूर्वजन्म में तुम इनकी पत्नी रति थीं, अतः तुम इसकी सेवा करो। यह तुम्हारा पति है। 'नारद के वचनों को विश्वास करके, मायावती अत्याधिक आनन्दित हुयी। उसने बालक प्रद्युम्न को पाल-पोस कर बड़ा किया, तथा सभी विद्याओं में उसे पारंगत कराया। कालान्तर में बड़े होने के बाद इनका और शंबरासुर का युद्ध हुआ, जिसमें इन्होंने शंबरासुर का वध किया। पश्चात् अपनी भार्या को पुनः प्राप्त कर, प्रद्युम्न पत्नी के साथ रुक्मिणी से मिलने गये।^१

हरिवंश में, यह कथा कुछ इस प्रकार दी गयी है, अन्तर केवल इतना है कि, शंबरासुर ने शिशु प्रद्युम्न को समुद्र में न फेंक कर, उसे मायावती को दे दिया, क्योंकि निःसंतान होने के कारण वह दुःखित थी।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में प्राप्त कथा हरिवंश से मिलती जुलती है। अन्तर थोड़ा ही है, कि प्रद्युम्न के बड़े हो जाने पर एक दिन सरस्वती मायावती के पास आयी और उसने ही शंबरासुर के पूर्व कुकृत्यों का

लेखा-जोखा प्रद्युम्न तथा मायावती के सम्मुख प्रस्तुत किया। जिस कारण प्रद्युम्न ने शंबरसुर का वध किया।^१

प्रद्युम्न का शाल्व से युद्ध - प्रद्युम्न यादव सेना के महारथी थे।^२ कृष्ण ने राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का वध किया था। उससे क्रुद्ध होकर अपने मित्र शिशुपाल का बदला लेने के शाल्व ने बड़े जोर-शोर के कृष्ण की द्वारका पर चढ़ाई कर दी। युद्ध की विकरालता को देख कर, यादव सेना घबरा गयी। तब प्रद्युम्न ने यादवसेना का नेतृत्व किर बड़े पराक्रम के साथ शाल्व का मुकबला किया।^३ युद्ध करते-करते जब युद्ध भूमि पर मूर्च्छित हो गये।^४ तो इनके सारथी सूतपूत्र दारुक इन्हे रणभूमि से हटा कर ले गया।^५ ठीक हो जाने पर, प्रद्युम्न पुनः युद्ध भूमि में आ गये और घमासान युद्ध करके अपने शत्रुनाशक अद्भुत बाण से शाल्व को परास्त कर दिया।^६

युधिष्ठिर द्वारा किये गये अश्वमेध-यज्ञ में, इन्होंने उसकी पर्याप्त सहायता हस्तिनापुर आकर की थी।^७ यहीं नहीं, अश्वरक्षण के लिए यह सैनिकों सहित अर्जुनादि के साथ देश-विदेश भी गये थे।^८

कालान्तर में, यादव-वंशीय लोग आपस में एक दूसरे से लड़ने लगे, जिससे कि उनमें वह शक्ति न रह गयी जो पूर्व में थी। मूसल युद्ध में

१ ब्रह्म वै. ४.११२

२ भागवत् १०.९०.३३

३ म. व. १६.३०-३२; म. व. १७

४ म. व. १७.२२

५ म. व. १८.३

६ महाभारत वनपर्व १५.१६.२०; भागवत पुराण १०.७६.१३

७ महाभारत आश्वमेधिकपर्व ६५.३

८ जै. अ. १२

उनका भोजों के साथ युद्ध हुआ, जिसमें प्रद्युम्न की मृत्यु हो गयी।^१ मृत्योपरांत यह सनत्कुमार के स्वरूप में प्रविष्ट हो गये।^२

परिवार- इन्हे शतद्युम्न नामांतर भी प्राप्त है। मायावती के अतिरिक्त, रुक्मिण की कन्या रुक्मवती अथवा शुभांगी इनकी दूसरी पत्नी थी।^३ जिसने स्वयंवर में इनका वरण किया था।^४ रुक्मवती (शुभांगी) से इन्हे अनिरुद्ध नामक पुत्र हुये।^५

वज्रनाभ दैत्य की कन्या प्रभावती इनकी तीसरी पत्नी थी, जिसका इन्होंने हरण किया था।^६ इस कारण व्रजनाभ के भाई निकुंभ से प्रद्युम्न का युद्ध हुआ था।

प्रद्युम्न ने बदला लेने के लिए, निकुंभ ने भानु यादव की कन्या भानुमती का हरण किया। इससे क्रुद्ध होकर कृष्णार्जुन ने निकुंभ पर हमला किया, जिसमें प्रद्युम्न भी निकुंभ के विपक्ष में थे। इस युद्ध में इन्होंने अपने मायावी युद्धकौशल का अच्छा परिचय दिया। अन्त में निकुंभ श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया।^७

प्रद्युम्न को पूर्णावतार श्री कृष्ण के पुत्र होने के कारण, चतव्यूह के तृतीय क्रम का देवता माना गया। क्योंकि प्रद्युम्न श्री कृष्ण के अंश होने के कारण उनके ही समान ऐश्वर्य तथा वीर्य गुणशाली दिव्य रूप थे। कामदेव का अवतार हाने के कारण दिव्य-सौन्दर्यशाली देव थे। प्रद्युम्न का कार्य पाञ्चरात्र सिद्धान्त के अनुसार क्रिया तथा चर्या के विधान का उपदेश

१ म.सौ. ४.३३; भागवत पुराण ११.३०.१६; गणेश. १.४९

२ म.स्व. ५.११

३ भागवत पुराण १०.६१.१८; ९०.१६

४ स्कन्द पुराण हरिवंशपर्व २.६.१.४

५ महाभारत भीष्मपर्व ६५.७१

६ स्कन्द पुराण हरिवंशपर्व २.९०.४

७ स्कन्द पुराण हरिवंशपर्व २.९०.९१

करना तथा वैष्णवों के धार्मिक कृत्यों की शिक्षा देना। लक्ष्मीतन्त्र में कहा गया है कि -प्रद्युम्न इति मामाहुः सर्वार्थद्योतनीतदा।

युगं प्रस्फुरितं रूपं तस्मिन्नेश्वर्यवीर्ययोः ॥ १

आगे भी कहा गया है कि अत्यधिक बल और तेज से सम्पन्न होने के कारण ही प्रद्युम्न कहे गये।

बलमित्येव तन्नाम ततो वेदान्तशब्दितम्।

वीर्येश्वर्यसमुन्मेषे प्रद्युम्न परिकीर्तितः ॥ २

अर्थात् षड्गुणों में से एश्वर्य एवं वीर्य, इन दो गुणों का उद्रेक जब होता है तो उस स्थिति में उत्पन्न होने वाले व्यूह का नाम प्रद्युम्न है।

पराशर संहिता में प्रद्युम्न के स्वरूप की वन्दना, उनकी उपासना के लिये न्यास-विधि, और मन्त्र-विधान का विवरण दिया गया है।^३

प्रद्युम्नः चक्रशंखाभ्यां सह दण्डसरोजवान्। पाद्मसंहिता में प्रद्युम्न के स्वरूप को रेखाङ्कित किया है।^४

अनिरुद्ध

(सो. यदु) प्रद्युम्न को रुक्मकन्या से उत्पन्न पुत्र। यह दस हजार हाथियों के बल से युक्त थे^५। पर्वत उखाड़ कर यह अपने शत्रु को मारने की शक्ति रखते थे इनकी उस समय की प्रथा के अनुसार अनेक पत्नियाँ थी।

१ लक्ष्मी तन्त्र २.४७

२ लक्ष्मी तन्त्र ४.१५

३ पराशर संहिता ८.१०५

४ पाद्म संहिता क्रियापाद १६.३८

५ भागवत पुराण १०.९०.३५-३६, विष्णु पुराण ४.३२.५

इन्हे रुक्मिणौत्री रोचना से वज्र उत्पन्न हुआ।^१ इन्हे ही प्राद्युम्नि ऐसा दूसरा नाम भी प्राप्त हुआ। इन्होंने अन्य यदु कुमारों के साथ अर्जुन के पास धनुर्वेद विद्यासीखी और कुशल धनुर्धर हुये।^२ इन्होंने बाणासुर की कन्या उषा के साथ गांधर्व विधि से विवाह किया। यह राजसूय यज्ञ में थे।^३

प्रद्युम्न से अनिरुद्ध की निष्पत्ति व्यूह का अंतिम रूप है। पूर्वकथित छः गुणों में से दो-दो गुणों की प्रधानता के आधार पर अनिरुद्ध में शक्ति तथा तेज गुणों का उद्रेक विद्यमान रहता है। जगत् का सर्जन प्रारम्भ होने के पश्चात् अनिरुद्ध का कार्य है क्रिया के फल अर्थात् मोक्ष के रहस्य का शिक्षण।^४ जगत के रक्षण का प्रधान कृत्य अनिरुद्ध का है। ईश्वर संहिता में अनिरुद्ध के रूप का विस्तृत वर्णन किया गया है। सित कृष्ण वपु वाले अनिरुद्ध का विभिन्न भूषणों से समलंकृत और आयुधों से युक्त स्वरूप का स्मरण करना चाहिए।^५

त्रिरत्न में से एक जयाख्य संहिता में अनिरुद्ध के सकल विग्रह का उपाँगमन्त्रों से पूजा करने का उल्लेख किया गया है कि अलसी पुष्प के शुभ्र वर्ण वाले, सूर्य सम प्रभाव वाले, मधु पद्मांग शोभावाले अनिरुद्ध के परम्परागत स्वरूप व पूजा का वर्णन किया गया है। पादम संहिता में अनिरुद्ध के स्वरूप वर्णन में लिखा है कि 'अनिरुद्धौऽरिदण्डब्ज पद्म पाणिश्चतुर्भुजः'।^६

बृहद् ब्रह्मा संहिता में अनिरुद्ध के ब्रह्माण्डीय स्वरूप का वर्णन किया गया है जिसके अनुसार अनिरुद्ध की मूर्धा से द्यौ, नयन से सूर्य,

१ भागवत पुराण १०, ६१

२ महाभारत सभापर्व ४.२१.५३

३ महाभारत सभापर्व ३१.१५

४ बलदेव उपाध्याय, वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त पृ. ८३

५ पुनरप्यययोगेन प्रागुदङ्मध्यमे दले।

सितकृष्णेन वपुषा अनिरुद्धं स्मरेत्प्रभुम्॥ ईश्वर संहिता २४.१३०

६ पादम संहिता क्रियापाद १६.३८

मनस से चन्द्रमा, स्रोत (कर्ण) से दिशायें, नाभि से नभ, पाद से भूमि की उत्पत्ति हुई है।^१ प्राण के वायु तथा अपान से मृत्यु, केश से अम्बुद तथा ऋतु आदि कालभेद भी कालभूत से उत्पन्न है।^२ अनिरुद्ध के रोम वपु आदि से वनस्पति तथा औषधियां निःसृत हैं, उनके अनेक बाहु दक्षिणाओं से यज्ञों की उत्पत्ति हुई है।^३ अनिरुद्ध के मुख बाहु चरणादि से चातुर्वर्णों की उत्पत्ति तथा सृष्टि के सभी जागतिक पदार्थों की उत्पत्ति हुई है।^४ यह जगत धाम कार्यकारण से अभिन्न रूप के बीच पादप के समान उन्हीं से उत्पन्न है।

ज्ञान बुद्धि आदि भेद से निष्कामी एवं मुमुक्षु जन शुद्ध अन्तःकरण में उसी पुरुष की पूजा करते हैं। चतुर्व्यूहात्मक अनिरुद्ध के शरीर में ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, मनु, काल, यम, आदि सभी देवता निवास करते हैं। वरुण, प्रजापति, चन्द्र, भौम आदि भेद-दृष्टि से इस ब्रह्मा भुवन का राज्य भोग करते हैं। वस्तुतः ये सभी अनिरुद्ध रूप में ही स्थित हैं।^५ ज्ञान, वैराग्य, कैवल्य आदि भेद ये अनिरुद्ध की ही उपासना निज आयुध और विद्या से पृथक्-पृथक् रूप से करते हैं। अनिरुद्ध के भूषण आयुध जाल में परम

- १ द्यौर्मूर्ध्नों नयानात्सूर्यो मनसश्चन्द्रमा अपि ।
श्रोत्रादिशो नभो नाभिः पदम्भयां भूमिरजायत ॥ बृहद् ब्रह्म संहिता (प्रथम पाद)
१३.१७३
- २ प्राणाद्वायुस्तथा पानन्मृत्युः केशात्तथाऽम्बुदाः ।
ऋत्वादिकालभेदाश्च कालश्चभूतथाधियः ॥ बृहद् ब्रह्म संहिता (प्रथम पाद)
१३.१७४
- ३ वनस्पतय औषध्यो रोमकूपाद्विनिःसृताः ।
यज्ञाश्च जज्ञिरे तास्माद्बहवो बहुदक्षिणाः ॥ बृहद् ब्रह्म संहिता (प्रथम पाद) १३.
१७५
- ४ चातुर्वर्ण्यं क्रमाद्वक्त्रवाहुरुचरणोदभवम् ।
एवं सृष्ट्या जगत्सर्वमनिरुद्धौ जगत्तनुः ॥ बृहद् ब्रह्म संहिता (प्रथम पाद) १३.
१७६
- ५ भेदेन संविता भोगसा ब्रह्मभुवनं ददुः ।
राज्यं भौमं तथा चैन्द्रं प्राजापत्यं च वरुणाम् ॥ बृहद् ब्रह्म संहिता (प्रथम पाद)
१.१८०

एकान्तिन ही प्रवेश प्राप्त कर पाते हैं, जो पुनः-पुनः आवर्तित नहीं होते। अनिरुद्ध की आत्मा को उपासक विभिन्न रूपों में देखते हैं जो भी भूमि सहित सन्निवसित हैं। अनिरुद्ध के स्वरूप की उपासना विभिन्न देवताओं द्वारा की जाती है जो श्रीवत्स तथा श्रीरज से सदा सुशोभित तथा पक्षीन्द्र गरुड़ एवं विष्वक्सेन द्वारा सदा सेवित हैं। यह अनिरुद्ध स्वयं के अंश से जगत का परिपालन करते हैं।

मार्कण्डेय संहिता में उल्लेख है कि वासुदेव के रूपान्तरित स्वरूप में अनिरुद्ध अपने आयुधों के साथ अन्य रूपों में पृथक् प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार विष्णु संहिता में अनिरुद्ध के स्वरूप के सम्बन्ध में लिखा है कि नीलाम्बुद प्रतीकानिरुद्ध तथैव च' अर्थात् अनिरुद्ध नीलकमल के प्रतीक रूप में अपने आयुधों से स्मरण किये जाते हैं।

विष्वक्सेन संहिता के ११वें अध्याय में भगवान् विष्वक्सेन अनिरुद्ध के रूप का वर्णन करते हुए नारद से कहते हैं कि अनिरुद्ध का वर्ण नीले आकाश एवं कालाञ्जन से उपमित है जो चतुर्भुज रूप में पीत वस्त्र धारण करने वाले है, सर्वाभरण से सम्पूर्ण अवयव सुशोभित हैं, जिनके उर्ध्ववामहस्त में शंख और दूसरे में गदा सुशोभित हैं, दक्षिण उर्ध्व हस्त में चक्र सुशोभित और दूसरे में पद्म सुशोभित है। अनन्त (शेषनाग) पर शयन करने वाले लक्ष्मी से सुशोभित अनिरुद्ध की अर्चा द्विभुज या चतुर्भुज रूप में की जानी चाहिए। अनिरुद्ध को इस मूर्ति की पूजा शतदल पुण्डरीक से करनी चाहिए। इसी प्रकार २६वें अध्याय में उल्लेख है कि नील वर्ण वाले अनिरुद्ध शंख, चक्र आदि से संयुक्त वस्त्र चतुर्भुज रूप में अपने परिवार में उत्तर की ओर स्थित रहते हैं।

हयशीर्ष संहिता के नव व्यूह प्रतिमा-लक्षण में अनिरुद्ध की उत्पत्ति प्रद्युम्न से उल्लिखित है तथा अनिरुद्ध के स्वरूप का मूर्तन उनके वर्ण आयुध-विन्यास आदि का वर्णन किया गया है जो उनके पाञ्चरात्र स्वरूप को व्यक्त करता है।

अनिरुद्ध के स्वरूप का निरूपण करते हुए लक्ष्मी तन्त्र में कहा गया है कि अञ्जन पर्वत के समान आभा वाले अत्यन्त ही सुन्दर पीताम्बर को धारण किये हुए, चार भुजाओं से सम्पन्न, विशाल नयन वाले, मृगलाञ्छन से समलंकृत, मुख्य दक्षिण हस्त से अभय प्रदान करने वाले, मुख्य वाम हस्त में शङ्ख को धारण करने वाले अन्य दक्षिण एवं वाम हस्तों में क्रमशः खड्ग और खेटक धारण करने वाले अनिरुद्ध वैष्णव पाञ्चरात्र भक्तों द्वारा ध्येय हैं।^१



-
- १ अञ्जनाद्रिप्रतीकाशं सुपीताम्बर वेष्टितम् ।
 चतुर्भुजं विशालाक्षं मृगलाञ्छनभूषितम् ॥
 आदिवत् पाणियुगलमाद्यमस्य विचिन्तयेत् ।
 दक्षिणादिक्रमेणाथ ह्यभ्यां वै खड्गखेटकौ ॥
 दधानमनिरुद्धं तु सौम्यभागे विचिन्तयेत् ॥ लक्ष्मी तन्त्र १०.३७-३९

पञ्चम अध्याय

वैष्णव आगम के आचार्य एवं वैदिक ऋषि

ऋषि हिंसागतौधातु से ऋषि शब्द का निवर्चन करते हुए वाचस्पत्यम्^१ में इस शब्द की तात्त्विक व्याख्या की गई है। जो श्रुति परम्परा में निष्णात, विद्याविदग्ध मति, सत्यवाची, शापास्त्रधारी, धर्मशास्त्रज्ञ, सुधर्माचरणकर्ता, ब्रह्मज्ञानी, वीतरागी, योगवेत्ता, निरिच्छ, सर्वगामी एवं तपस्वी है। अतः ऋषि होना एक तात्त्विक प्रक्रिया है, एक विशिष्ट परिणति है, दायित्व है। जो धर्म-कर्म के लिए सदैव समर्पित होकर समाज को, देश को दिशा देता है। और मोक्षमार्ग जिसका ध्येय होता है। ऋषि परम्परा में कई कोटियाँ हैं, यथा-

सप्तर्षि, ब्रह्मर्षि, महर्षि, राजर्षि एवं ऋषि-मुनि गण श्रुति-परम्परा की देन हैं जिनके द्वारा सम्पूर्ण वैदिक दर्शन आलोडित हैं। सप्तर्षियों में 'मरीचिरत्रिभगवानङ्गिराःपुलहःऋतुः' मरीचि, अत्रि इन वैखानस ऋषियों की गणना सप्तर्षियों में की गई है।

वैखानस ऋषि

तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार ब्रह्मा के नख से विखना ऋषि उत्पन्न हुए थे। इस ऋषि समूह में पुरुहन्मन नामक ऋषि समाविष्ट थे। वैखानस ऋषि एक विशेष व्यपमोहिनी नामक यज्ञ-संस्कार की दीक्षा लेकर उत्पन्न हुए थे। वैखानस सम्प्रदाय की ऋषि परम्परा में नहुषपुत्र पृथु, अगस्त्य, ययाति, भ्रातायाति और इसी क्रम में इस वैदिक ऋषि समुदाय में अन्य लगभग १०० ऋषि समाविष्ट थे। अतः कृष्ण यजुर्वेदीय आचार्य

विखनस् ऋषि के प्रादुर्भाव विषयक बहुत से उल्लेख प्राप्त होते हैं। गाथानुसार दक्ष और वरुण के यज्ञ में वाग्देवी स्वयं प्रकट हो गई थी। उन्हें देखकर दक्ष और वरुण का वीर्य स्खलित हो गया, जिसे वायु ने प्रज्वलित यज्ञ कुण्ड में डाल दिया; अतः अग्नि की लपटों में जो वीर्यकण बुझ गया उससे भृगु, अंगार से अंगिरा उत्पन्न हुए, तथा जिसमें अ+त्रि अर्थात् अत्रि चतुर्थोऽपि हुए। अग्निकुण्ड के विशेष खनन से 'विखननात् जायते वैखानसः' विखना ऋषि उत्पन्न हुए। इसी परम्परा में वैखानस के धर्म सूत्र, गृह्य-सूत्र और श्रौतसूत्रों में स्वयं परमतत्त्व विष्णु और विष्णु पूजा के विधान परब्रह्म विष्णु द्वारा निर्देशित किये गए हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में ताण्ड्य ब्राह्मण, जैमिनि ब्राह्मण, आर्षेय ब्राह्मण, तैत्तिरीय आरण्यक, बौधायन गृह्यसूत्र, अग्निवेश गृह्यसूत्र, बौधायन श्रौतसूत्र, हिरण्याक्षी श्रौतसूत्र, इत्यादि वैखानस् परम्परा के वैदिक साहित्य में हैं, जिनमें वैष्णव उपासना पद्धति का उल्लेख एवं विवरण मिलता है।

सनत्कुमार

सनत्कुमार एक सुविख्यात तत्त्ववेत्ता आचार्य हैं, जो साक्षात् विष्णु के अवतार माने जाते हैं। इनके 'सनत्कुमार', 'कुमार' आदि नामान्तर भी प्राप्त हैं। सनत्कुमार का शब्दशः अर्थ 'जीवनमुक्त' होता है।^१ यह एवं इनके भाई कुमारवस्था में ही उत्पन्न हुए थे, जिस कारण, ये सामूहिक नाम 'कुमार' से प्रसिद्ध हैं।

ब्रह्मा के मानस पुत्र - विष्णु के अवतार माने गये ब्रह्ममानसपुत्रों की नामावलि महाभारत एवं पुराणों में प्राप्त है:-

१. सन, २. सनत्सुजात, ३. सनक, ४. सनन्दन, ५. सनत्कुमार, ६ कपिल, सनातन ।^१ महाभारत में अन्यत्र 'ऋभु' को भी इनके साथ निर्दिष्ट किया गया है ।^२

२. भागवत में इनकी संख्या चार बतायी गयी है; सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार^३

गुण-वर्णन - ये ब्रह्मज्ञानी, निवृत्तिमार्गी, योगवेत्ता, सांख्याज्ञानविशारद, धर्मशास्त्रज्ञ, एवं मोक्षधर्म-प्रवर्तक थे ।^४ ये विरक्त, ज्ञानी, एवं क्रियारहित (निष्क्रिय) थे ।^५ ये निरपेक्ष, वीतराग, एवं निस्पृह थे ।^६

ये सर्व-गामी, चिरंजीवी, एवं इच्छानुगामी हैं ।^७ अत्यधिक विरक्त होने के कारण, इन्होंने प्रजा निर्माण से निषेध किया था ।^८

निवासस्थान - इनका निवास हिमगिरि पर था, जहाँ विभांडक ऋषि इनसे मिलने गये थे । अपने इसी निवासस्थान में इन्होंने विभांडक को ज्ञानोपदेश किया था ।^९

उपदेशप्रधान - इन्होंने निम्नलिखित साधकों को ज्ञान, वैराग्य, एवं आत्मज्ञान का उपदेश किया था । नारद-आत्मज्ञान^{१०}, एवं भागवत का महत्त्व^{११},

-
- १ महाभारत शान्तिपर्व ३२७.६४-६६
 - २ महाभारत उद्योगपर्व ४१.२-५
 - ३ भागवत पुराण २.७.५; ३.१२.४; ४.८.१
 - ४ महाभारत शान्तिपर्व ३२७.६६
 - ५ भागवत पुराण २.७.५
 - ६ वायु पुराण ६.७१
 - ७ स्कन्द पुराण हरिवंशपर्व १.१.३४-३७
 - ८ विष्णु पुराण १.७.६
 - ९ महाभारत शान्तिपर्व परि. १.२०
 - १० छान्दोग्य उपनिषद् ७.१.१.२६
 - ११ पद्म पुराण उत्तरखण्ड १९३-१९८

सांख्यायन-भागवत^१, वृत्रासुर-विष्णुमाहात्म्य^२, रुद्र-तत्सृष्टि^३
विभिन्न ऋषि समुदाय-भागवतस्वरूप^४, विश्वावसु गंधर्व-आत्मज्ञान^५,
धृतराष्ट्र-धर्मज्ञान^६, ८ ऐल - श्राद्ध^७ ।

सात्वत धर्म का उपदेश - सात्वत धर्म की आचार्य परम्परा में सनत्कुमार एवं सर्वश्रेष्ठ आचार्य माने जाते हैं। इस धर्म का ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्मा ने इसे प्रदान किया, जो आगे चल कर इसने वीरण प्रजापति को दे दिया ।^८

आगे चल कर सनत्कुमार का यही उपदेश नारद ने शुक को प्रदान किया ।

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः ।

नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम् ॥^९

विद्या के समान श्रेष्ठ नेत्र इस संसार में नहीं है। सत्य के समान श्रेष्ठ तप, राग के समान बड़ा दुःख, एवं त्याग के समान श्रेष्ठ सुख भी इस संसार में अन्य कोई नहीं है।

नारद के द्वारा प्राप्त इस उपदेश के कारण, शुक ने पवित्र धाम जाने का निश्चय किया, एवं वह आदित्यलोक में प्रविष्ट हुए ।^{१०}

- १ भागवत पुराण ३.८.७
- २ महाभारत शान्तिपर्व २७१
- ३ महाभारत अनुशासनपर्व १६५.१६
- ४ महाभारत शान्तिपर्व परि १.२०
- ५ महाभारत शान्तिपर्व ३०६.५९.६१
- ६ महाभारत उद्योगपर्व ४२-४५
- ७ विष्णु पुराण ३.१४.११
- ८ महाभारत शान्तिपर्व ३३६.३७
- ९ महाभारत शान्तिपर्व ३१६.६
- १० भागवत वक्ता शुक वैयासकि

तत्त्वज्ञान - नारद को उपदेश प्रदान करने वाले सनत्कुमार एक श्रेष्ठ उपनिषद्कालीन तत्त्वज्ञ थे। इनका समग्र तत्त्वज्ञान इनके द्वारा नारद को दिये गये उपदेश में प्राप्त है, जो छांदाग्योपनिषद् में ग्रथित किया गया है। अपने उस उपदेश में इन्होंने 'आध्यात्मिक सुख-वाद' का प्रतिपादन किया है। इस तत्त्वज्ञान के अनुसार, आध्यात्मिक सुख प्राप्ति के लिए मनुष्य कर्म करता है, जिससे आगे चल कर श्रद्धा निर्माण होती है। इसी श्रद्धा से ज्ञान की प्राप्ति होती है, जो आगे चल कर आत्मज्ञान प्राप्त कराती है। अपने इस तत्त्वज्ञान में सनत्कुमार द्वारा आत्मानुभूति की सोपानपंक्ति सुख, कर्म, श्रद्धा, ज्ञान एवं साक्षात्कार पूर्ण बतायी गयी है।^१

भूमन तत्त्वज्ञान - सनत्कुमार के द्वारा प्रत्येक 'भूमन' शब्द की मीमांसा की गई है इनके तत्त्वज्ञान के अनुसार सृष्टि की वस्तु में परमात्मा का साक्षात्कार करने की अवस्था को 'भूमन्' कहा गया है। इस साक्षात्कार से मनुष्य को अत्युच्च आनन्द की प्राप्ति होती है, जिसकी तुलना में स्त्री, भूमि, ऐश्वर्य आदि ऐहिक वस्तुओं से प्राप्त होने वाला आनन्द तुच्छ प्रतीत होता है।^२

सनत्कुमार के अनुसार, साधक को जब आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है (सोऽहमात्मा), उस समय उसे 'भूमन्' तत्त्व का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है।^३ इस प्रकार, आत्मा ही इस सृष्टि के उत्पत्ति का कारण है, इसी आत्मा से मानवीय आशा एवं स्मृति निर्माण होती है। इसी आत्मा से सृष्टि के प्रत्येक वस्तु का विकास होता है, एवं विनाश के पश्चात् सृष्टि की प्रत्येक वस्तु इसी आत्मा में विलीन हो जाती है।

१ छान्दोग्य उपनिषद् ७.१७-२२

२ छान्दोग्य उपनिषद् ७.२३-२४

३ छान्दोग्य उपनिषद् ७.२५

ग्रन्थ - इनके नाम पर निम्नलिखित ग्रन्थ एवं आख्यान प्राप्त हैं; सनत्कुमार उपपुराण^१, सनत्सुजातीय आख्यान^२, सनत्कुमार संहिता^३, सनत्कुमार वास्तुशास्त्र, सनत्कुमार तन्त्र, सनत्कुमार कल्प।

नारद^४

देवर्षि नारद ब्रह्माजी के मानसपुत्र थे। एक धर्मज्ञ तत्त्वज्ञ, वेदान्तज्ञ, राजनीतिज्ञ एवं संगीतज्ञ के रूप में नारद का चरित्रचित्रण महाभारत में किया गया है।^५ जहाँ चाहे वहाँ भ्रमण करनेवाले ऋषि के रूप में, नारद त्रिकाल में आकाशमार्ग से प्रवास करते थे, एवं इनका संचरण तीनों लोकों में होता था। यह वेद एवं वेदांत में पारंगत, ब्रह्मज्ञानयुक्त, एवं नयनीतिज्ञ थे। इनका राजाओं के घर में बृहस्पति जैसा मान था। यह 'नानार्थकुशल', एवं लोगों के धर्म, राजनीति एवं नित्यव्यवहार आदि विषयों के संशय दूर करने में प्रवीण थे। स्वभाव से यह पुण्यशील सरल एवं मृदुभाषी थे। यह उत्कृष्ट प्रवचनकार एवं संगीतकार भी थे।

नारद जी वैदिक मन्त्र दृष्टा एवं यज्ञवेत्ता थे।^६ वे बृहस्पति के शिष्य थे।^७ यद्यपि सारी विद्याएं इन्होंने बृहस्पति से प्राप्त की थी, तथापि 'ब्रह्मज्ञान' की प्राप्ति के लिये, वे सनत्कुमार के पास गये थे।^८ सोमक

१ कूर्म पुराण १.१७

२ महाभारत उद्योगपर्व ४२-४५ शांकरभाष्य के सहित

३ शिव स्कंद सूतसंहिता १.२२.२४

४ प्राचीन चरित्रकोश पृ. सं. ३६०-३६४

५ महाभारत आदिपर्व परि. १.१११

६ अथर्ववेद ५.१९.९; १२.४.१६; २४.४१; मैत्रायणी संहिता १.५.८

७ सांख्यायन ब्राह्मण ३.९

८ छान्दोग्य उपनिषद् ७.१.१

सहदेव्य नामक अपने शिष्य को, इन्होंने 'सोमविद्या' सिखाई थी।^१ पर्वत नामक अन्य आचार्य के साथ, इन्होंने आम्बष्ठ्य एवं युधांश्रौष्टि राजाओं का 'ऐन्द्रमहाभिषेक' किया था।^२

स्वरूप वर्णन - नारद की शरीर कांति श्वेत एवं तेजस्वी थी। इंद्र के द्वारा प्रदान किये सफेद, मृदु एवं धौत वस्त्र इनके परिधान थे। कानों में सुवर्ण कुण्डल, कंधो पर वीणा, एवं सिर पर - 'श्लक्ष्ण शिखा' (मृदु चोटी) से, यह अलंकृत नारद महर्षि को देखते ही देवगण तथा अन्य सभी पहिचान जाते थे।

जन्म-महर्षि नारद ब्रह्माजी के मानसपुत्र एवं विष्णु के तीसरे अवतार थे।^३ यह ब्रह्मा जी की जंघा से उत्पन्न हुए थे।^४ वे नरनारायणों के उपासक थे,^५ एवं दर्शन तथा जिज्ञासा पूर्ति के हेतु, उनके पास हमेशा जाते थे।^६ हर समय नारायण-नारायण की ध्वनि में कीर्तन करते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाते थे। यह चाक्षुष मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक थे।

पुनर्जन्म - नारद ने दक्ष के 'हर्यश्च' नामक दस हजार पुत्रों को सांख्यज्ञान का उपदेश दिया, जिस कारण वे सब विरक्त हो कर घर से निकल गये।^७ अपने पुत्रों को प्रजोत्पादन से परावृत्त करने के कारण दक्ष नारद पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए, एवं उन्होंने इन्हें शाप दिया।^८ इस शाप के कारण, नारद ब्रह्मचारी रह कर सदैव भटकते रहे, एवं^९ दक्ष का यह शाप इन्हें

१ ऐतरेय ब्राह्मण ३४

२ ऐतरेय ब्राह्मण ८.२१

३ भागवत् पुराण १.३.८; मत्स्य पुराण ३.६.८

४ भागवत् पुराण ३.१२.२८

५ भागवत् पुराण १.३.

६ महाभारत शान्तिपर्व ३२१.१३-१४

७ महाभारत आदिपर्व ७०.५-६

८ विष्णु पुराण १.१५

९ भागवत् पुराण ६.५.३७-३९

जन्मजन्मांतर के लिये मिला था। इस कारण कश्यप प्रजापति के घर जन्म लेने पर भी, अपने अगले जन्म में भी, दक्ष शाप की पीड़ा इन्हें पूर्ववत् ही भुगतनी पड़ी।

दक्ष का शाप की यह कहानी, अन्य पुराणों में कुछ अलग ढंग से दी गयी है। हरिवंश के मत में, दक्ष ने नारद को शाप दिया, 'तुम नष्ट हो कर, पुनः गर्भवास का दुख सहन करोगे'।^१ परमेष्ठी ने अन्य ब्रह्मर्षियों को आगे कर, नारद को उःशाप देने की प्रार्थना दक्ष से की। फिर दक्ष ने परमेष्ठी से कहा, 'मैं अपनी कन्या तुम्हें विवाह में दे दूँगा, एवं उस कन्या के गर्भ से नारद का पुनर्जन्म होगा।'^२ इस उःशाप के अनुसार, परमेष्ठी का विवाह दक्षकन्या से होने के पश्चात्, इन्हें नारद पुत्र रूप में प्राप्त हुए।^३

ब्रह्मवैवर्तपुराण में, दक्ष के शाप के कारण, एक शूद्र स्त्री के गर्भ से नारद पुनः उत्पन्न हुए। इस नये जन्म में, इनकी माता कलावती नामक शूद्र स्त्री थी। वह द्रमिल नामक शूद्र की पत्नी थी। अपने पति की अनुमति से, कलावती ने पुत्र प्राप्ति के हेतु, कश्यप प्रजापति का वीर्य प्राशन किया। बाद में द्रमिल ने देहत्याग किया, एवं कलावती की एक ब्राह्मण के घर प्रसूति हुई। उसे एक पुत्र हुआ उसका नाम नारद रखा गया। बाद में इन्हें कश्यप ऋषि को अर्पण किया गया। कृष्णस्तवन के कारण, यह शापमुक्त हुए, एवं ब्रह्मदेव ने इन्हे सृष्टि उत्पन्न करने की अनुज्ञा भी दी किन्तु यह आजन्म ब्रह्मचारी ही रहे।

महाभारत में, कश्यप मुनि के पुत्र के रूप में, नारद ने पुनः जन्म लिया, ऐसा निर्देश प्राप्त है।^४

१ स्कन्द पुराण हरिवंशपर्व १.१५

२ वायु पुराण ६६.१३५-१५०; ब्रह्माण्ड पुराण ३.२.१८

३ ब्रह्म पुराण १२.१२.१५

४ महाभारत आदिपर्व ५१.४३

देवों के वार्ताहर - त्रैलोक्य के राजाओं के वार्ताहर, एवं परामर्शदाता ऋषि के रूप में नारद का चरित्र चित्रण महाभारत में किया गया है। अर्जुन के जन्म के समय नारद उपस्थित थे।^१ द्रौपदी के स्वयंवर में, अन्य गंधर्व एवं अप्सराओं के साथ, नारद गये थे।^२ पश्चात् द्रौपदी के निमित्त, पांडवों का आपस में कोई मतभेद न हो, इस उद्देश्य से नारद इंद्रप्रस्थ चले आये। पांडवों को सुंद एवं उपसुंद की कथा का वर्णन कर, द्रौपदी के विषय में झगड़े से बचने के लिये नियम बनाने की प्रेरणा, इन्होंने पाण्डवों को दी।^३

युधिष्ठिर इंद्रप्रस्थ का राजा होने के पश्चात्, नारद ने उसे हरिश्चन्द्र की कथा सुना कर, राजसूय यज्ञ की प्रेरणा दी।^४ राजसूययज्ञ में अवभृथस्नान के समय, नारद ने स्वयं युधिष्ठिर का अभिषेक किया।^५

विदर्भ देश की राजकन्या दमयमन्ती के स्वयम्बर की वार्ता, इन्द्र को नारद ने ही बताई की थी।^६ राजा अश्वपति के पास जाकर, सत्यवान् एवं सावित्री के विवाह का प्रस्ताव नारद ने ही प्रस्तुत किया था।^७

प्राचीन राजाओं की अनेक कथाएं नारद के द्वारा 'महाभारत' में कहीं गयी हैं। उनमें से इसने संजय राजा को जो कथाएं कहीं। उनमें, 'षोडश राजकीय उपाख्यान' की कथाएं विशेष महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं।^८ उन कथाओं में निम्नलिखित राजाओं के चरित्र, पराक्रम, महत्ता, दानशीलता, एवं उत्कर्ष का वर्णन किया गया है; आविक्षित मरुत्त, वैदिथिन सुहोत्र, पौरव, औशीनर शिबि, दाशरथि राम, ऐक्ष्वाकु भगीरथ,

-
- १ महाभारत आदिपर्व ११४.४६
 - २ महाभारत आदिपर्व १७८.७
 - ३ महाभारत आदिपर्व २०४
 - ४ महाभारत सभापर्व ११.७०
 - ५ महाभारत सभापर्व ४९.१०
 - ६ महाभारत वनपर्व ५१.२०-२४
 - ७ महाभारत वनपर्व २७८.११-३२
 - ८ महाभारत द्रोणपर्व परि. १.८.३२५-८७२

ऐलविल दिलीप, यौवनाश्व मान्धातृ, नहुष ययाति, नाभाग अंबरीष, यादव शशबिन्दु, आमूर्तरयस गय, सांकृति रंतिदेव, दौष्यन्ति भरत, वैन्य पृथु, जामदग्न्य परशुराम। नारद की कही गई ये ही कथाएं, महाभारत युद्ध के बाद, श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से बताई की थी।^१

महाभारतयुद्ध के रात्रियुद्ध में, नारद ने कौरव पांडवों की सेनाओं के लिए दीपक का प्रकाश निर्माण किया था।^२ महाभारत युद्ध में हुए कौरवों के सम्पूर्ण विनाश की वार्ता, बलराम जी को नारद ने ही सुनायी थी।^३ अर्जुन एवं अश्वत्थामा के युद्ध में ब्रह्मास्त्र को शांत करने के लिए नारद प्रकट हुए थे।^४ युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर के पास आकर, उसका कुशल समाचार नारद ने ही पूछा था।^५

युधिष्ठिर का अश्वमेधयज्ञ के समय नारद उपस्थित थे।^६ प्राचीन ऋषिओं की तप सिद्धि का दृष्टान्त देकर, नारद ने धृतराष्ट्र की तपस्या विषयक श्रद्धा को बढ़ाया था।^७ वन में धृतराष्ट्र, कुन्ती एवं गान्धारी के दावानल में दग्ध होने का समाचार, नारद ने ही युधिष्ठिर को कहा था।^८ नारद ने युधिष्ठिर से कहा 'धृतराष्ट्र को जलाञ्जली करो।'^९

तत्त्वज्ञ नारद - एक तत्त्वज्ञ के नाते, नारद श्रेष्ठ विभूति थे। तत्त्वज्ञ नारद के दिये उपदेश के अनेक कथा भाग 'महाभारत' में निर्देश दिये गये हैं।

- १ महाभारत शान्तिपर्व २९
- २ महाभारत द्रौणपर्व १३८
- ३ महाभारत शान्तिपर्व ५३.२३-३१
- ४ महाभारत सौप्तिकपर्व १४.११-१२
- ५ महाभारत शान्तिपर्व ९-१२
- ६ महाभारत आश्वमेधिकपर्व ९०.३८
- ७ महाभारत आश्वमेधिकपर्व २६.१
- ८ महाभारत आश्वमेधिकपर्व ४५.९-३१
- ९ महाभारत आश्वमेधिकपर्व ४७.१-९

तीस लाख श्लोकों वाला 'महाभारत' नारद ने देवताओं को सुनाया था।^१ 'पाञ्चरात्र' धर्म में निहित आत्मतत्त्व का उपदेश नारद ने व्यास को दिया था।^२ इन्होंने सूर्य के अष्टोत्तरशत नाम का उपदेश धौम्य ऋषि को दिया था।^३ महर्षिनारद ने शुकदेव को वैराग्य, ज्ञान आदि विविध विषयों का उपदेश दिया था।^४ मार्कण्डेय ऋषि को नारद ने धर्मशास्त्र एवं तत्त्वज्ञान के बारे में ज्ञानोपदेश दिया था।^५ पूजनीय पुरुषों के लक्षण, एवं उनके आदरसत्कार से होनेवाले लाभ का वर्णन इन्होंने श्रीकृष्ण की माता देवकी को बताया था, विभिन्न नक्षत्रों में विभिन्न वस्तुओं के दान का महत्त्व नारदजी ने सूचित किया था।^६

'श्रेयःप्राप्ति' के लिये नारायण की उपासना करने का उपदेश, नारद ने पुण्डरीक को दिया था।^७ समुद्र के किनारे ब्रह्मसत्र करनेवाले ज्ञानी प्रचेताओं को नारद ने ज्ञानोपदेश दिया।^८ सृष्टि की उत्पत्ति तथा लय के बारे में जानकारी इन्होंने देवल ऋषि को बतायी थी।^९ सङ्गम के साथ इनका ज्ञान विषयक संवाद हुआ था।^{१०} पुत्रशोक करनेवाले अकम्पन राजा को, मृत्यु की कथा बता कर इन्होंने शांत किया था।^{११} शास्त्रश्रवण से क्या लाभ होता इसका हितोपदेश इन्होंने गालव ऋषि को किया था।^{१२}

-
- १ महाभारत आदिपर्व परि. १.४
 - २ महाभारत शान्तिपर्व ३२६
 - ३ महाभारत वनपर्व अ. १७-२९
 - ४ महाभारत शान्तिपर्व ३१६-३१८
 - ५ महाभारत अनुशासनपर्व ५४.६३
 - ६ महाभारत अनुशासनपर्व ६४.५-३५
 - ७ महाभारत अनुशासनपर्व १२४
 - ८ महाभारत शान्तिपर्व ३१६-३१९
 - ९ महाभारत शान्तिपर्व २६७
 - १० महाभारत शान्तिपर्व २७५
 - ११ महाभारत शान्तिपर्व २४८-२५०
 - १२ महाभारत शान्तिपर्व २७६

प्राणापान से प्रथम क्या उत्पन्न होता है, इसका ज्ञान नारद ने देवमत को प्रदान किया।^१ शतयूपा को इन्होंने स्वर्ग के बारे में जानकारी दी।^२

भागवत आदि ग्रन्थों में भी तत्त्वज्ञ नारद के अनेक निर्देश दिये गये हैं। सावर्णि मनु को 'पाञ्चरात्रागमतन्त्र' का उपदेश नारद ने दिया था।^३ इन्होंने व्यासजी को 'भागवत' ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा दी थी।^४ ऋषियों को इन्होंने 'भागवतमाहात्म्य' बताया था।^५

सङ्गीतकलामर्मज्ञ - नारद श्रेष्ठ श्रेणी का सङ्गीतकलामर्मज्ञ एवं 'स्वरतज्ञ' थे।^६ इनका 'नारदसंहिता' नामक सङ्गीतशास्त्र सम्बन्धी एक ग्रन्थ भी प्राप्त है।

गायन सीखने के लिये ऋषि नारद गानबन्धुओं के पास गये। वहाँ यह गानविद्याप्रवीण बन गये, एवं स्वरज्ञान प्राप्त कर, सङ्गीतकला के अन्तर्गत दशसहस्र स्वरों का सूक्ष्म भेदाभेद यह समझने लगे। किन्तु इनका सङ्गीत ज्ञान केवल ग्रान्थिक ही रहा। इसके गले से निकलनेवाले स्वर सुरीले नहीं थे। सङ्गीतज्ञान का प्रदर्शन करने, यह तुम्बरु के पास गये। तो वहाँ सारी रागिनियाँ मुरझाई अवस्था में दिखाई पड़ीं। नारदजी ने उनसे विकल अवस्था का कारण पूछा। फिर उन्होंने कहा, 'तुम्हारा गायनसस्वर न होने के कारण, हमारी यह हालत हुई है। तुम्बरु का गायन सुनने के बाद हमें पूर्व स्थिति प्राप्त होगी'।

रागनियों के इस व्यंगोक्तिपूर्ण कथन से लज्जित हो कर, नारदजी श्वेतद्वीप में गये। वहाँ इन्होंने विष्णु की आराधना की। उस

- १ महाभारत आश्वमेधिकपर्व २४
- २ महाभारत आश्वमेधिकपर्व २७
- ३ भागवत पुराण १.३.८; ५.१९.१०
- ४ भागवत पुराण १.५.८
- ५ पद्म पुराण उत्तरखण्ड १९३-१९५
- ६ महाभारत आदिपर्व परि. १११.४०

आराधना से प्रसन्न होकर श्रीविष्णु ने इनसे कहा, 'कृष्णावतार के समय में स्वयं तुम्हें गायन सिखाऊंगा'। इस वर के अनुसार, कृष्णावतार के समय, वे कृष्ण के पास गये। जाम्बवती, सत्यभामा एवं रुक्मिणी आदि कृष्णपत्नियों ने तथा बाद में स्वयं कृष्ण ने इन्हे गायनकला में पूर्ण पारङ्गत किया। श्रीकृष्ण के पास जाने से पहले यह पुनः एक बार तुंबरु के पास गये। परंतु वहाँ धैवतों के साथ षड्जादि छः देवकन्याओं को इन्होंने देखा, तो संकोच के कारण नारद जी वहाँ से वापस चले आये।

कृष्णकथाओं में नारद - एक बार नारद नन्द के घर गये। वहाँ इन्होंने सोचा कि, कृष्ण जब प्रत्यक्ष विष्णु है, तो उनकी पत्नी लक्ष्मी ने भी यहीं कहीं अवतार अवश्य लिया होगा। इस विचार से इन्होंने नन्द के परिवार में लक्ष्मी का तलाश करना प्रारम्भ किया। पश्चात् इन्होंने देखा कि, भानु नामक गोप की अंधी, लूली, एवं बहरी कन्या बन कर, लक्ष्मी ने नंद परिवार में जन्म लिया है।^१

कृष्ण जन्म के समय, पिता वासुदेव एवं माता देवकी मथुरा के राजा कंस के कारागार में बन्दी थे। उस समय, वसुदेव एवं देवकी के आठवें पुत्र से अपने को धोखा है, यह समझ कर कारागार में पैदा हुए उनके पहले छः पुत्रों को कंस छोड़ देना चाहता था। किन्तु कंस की पापराशि बढ़ाने के हेतु, उन सारे पुत्रों का वध करने की प्रेरणा नारदजी ने मथुरा के राजा कंस को दी। उस उपदेश के अनुसार, कंस ने देवकी के छः पुत्रों का, जन्मते ही वध किया।^२

नरकासुर को बंदीगृह से मुक्त की गई सोलह हजार स्त्रियों से, कृष्ण ने भिन्न भिन्न मंडपों में एक ही मुहूर्त पर विवाह किया। यह चमत्कृतिजनक वृत्त सुन कर नारद को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस वार्ता की सत्यता अजमाने के लिये, नारदजी कृष्ण के घर आये, एवं हर एक कृष्णपत्नी के महल में जाकर परीक्षा लेने लगे। वहाँ इन्होंने देखा कि,

१ पद्म पुराण पाताल खण्ड ७१

२ भागवत पुराण १.१.६४

अपनी हरएक पत्नी के महल में, कृष्ण उपस्थित है, एवं किसी न किसी कार्य में मग्न है। तब लज्जित हो कर, नारद श्रीकृष्ण की शरण में गये ।^१

एक बार श्रीकृष्ण अपनी पत्नी रुक्मिणी के पास बैठे थे। उस समय नारद ने प्रकट हो कर, उन्हें स्वर्ग का पारिजात पुष्प दिया। श्रीकृष्ण ने उसे रुक्मिणी को दिया। इस कारण सत्यभामा तथा कृष्ण में झगड़ा हो गया^२। 'पति का दान करने पर वही पति जन्मजन्मान्तर में प्राप्त होता है', आदि कह कर, इन्होंने सत्यभामा से स्वयं ही श्रीकृष्ण का दान ले लिया। पश्चात् कृष्ण तथा परिजात वृक्ष के भार का सुवर्ण लेकर, इन्होंने श्रीकृष्ण को लौटा दिया।^३

पार्वती के विवाह शङ्कर के साथ करने की सलाह नारदजी ने हिमालय को दी थी ।^४

अत्रि

ऋग्वेद में अत्रि की एक कथा का बार-बार उल्लेख आता है। इन्हें अत्यधिक ज्वर हो रहा था तब अश्विनी ने इनका उपचार किया।^५ अत्रि ने लोकशासित राज्य के लिए प्रयत्न किया था।^६ ऋग्वेद में कहा गया है^७ कि अत्रि अग्निकुण्ड में गिरे थे और झुलसे गये थे। उस अग्नि के दाह से अश्विनी ने इन्हें मुक्त किया।^८ सम्भव है कि कारागृह की यातनाओं की उपमा व्यक्त

१ स्कन्द पुराण हरिवंशपर्व २.६५-७३

२ विष्णु पुराण ५.३०

३ पद्म पुराण उत्तरखण्ड ८८

४ पद्म पुराण सृष्टि खण्ड ४३

५ ऋग्वेद १.११२.७

६ ऋग्वेद ५.६६

७ ऋग्वेद १.११७.३

८ ऋग्वेद १.११८.७; १.१९.६

करने के लिये ऐसा वर्णन किया होगा।^१ पाँचवें मण्डल में अत्रि-गोत्रीय ऋषियों का उल्लेख है। अत्रि ने चातुराज्ञ याग प्रारम्भ किया।^२ ग्रहण के सम्बन्ध में प्रथम ज्ञान अत्रि को प्राप्त हुआ। इसीलिये ऐसा माना जाता है कि ग्रहण लगने पर अत्रि सूर्य को वापस लाते हैं।^३

स्वायंभुव मन्वन्तर में प्रजोत्पादनार्थ ब्रह्मदेव द्वारा निर्मित दस मानस पुत्रों में से अत्रि एक थे।^४ यह ब्रह्मदेव के नेत्र से अत्रि उत्पन्न हुए थे।^५ यह भी कहा गया है कि वे ब्रह्मा के कान से उत्पन्न हुए।^६ वे स्वायंभुव मनु के यह जामाता थे। अत्रि पत्नी अनसूया से पाँच सन्तानें - श्रुति^७, सत्यनेत्र, हव्य, आपोमूर्ति शनैश्चर, सोम नामक उत्पन्न हुई। भगवान् शङ्कर के अपमान से क्षुब्ध, सती ने स्वयं को जब यज्ञ-कुण्ड में दग्ध कर लिया था तब क्रोध के कारण महादेव ने सब को भस्म कर दिया था उसमें अत्रि की भी मृत्यु हो गई। शङ्कर के वर से यह और अत्रेय पुनः वैवस्वत मन्वन्तर में हजारों की संख्या में उत्पन्न हुए।^८ अत्रि को प्रजापति भी कहा गया है।^९

सन्तानों के सम्बन्ध में पुराणों में भिन्न-भिन्न वर्णन है। वायु, भागवत् तथा अन्य पुराणों में कहा गया है कि अत्रि और अनसूया से दत्त, दुर्वासा तथा सोम नामक तीन पुत्र हुए।^{१०} वायु पुराण के अनुसार

१ ऋग्वेद ५.७.८.४.१०.३९.९

२ तैत्तिरीय संहिता ७.१.८

३ ऋग्वेद ५.४०.५-९ ब्रह्माण्ड पुराण ३.८.७७. स्कन्द पुराण हरिवंशपर्व १.३१. १३-१४ प्रभाकर

४ वायु पुराण १.९

५ भागवत पुराण ३.१.२४ मत्स्य. ३.६-८

६ वायु पुराण ९.१०१; ब्रह्माण्ड पुराण २.९.२३;

७ शंखपद की माता तथा कर्दम पौलह प्रजापती की पत्नी

८ ब्रह्माण्ड पुराण २.११.२५

९ महाभारत सभापर्व ११.१५; शान्तिपर्व २०१; मत्स्य पुराण १७१.२६-२७

१० ब्रह्माण्ड पुराण ३.८.५२.६५; मार्कण्डेय पुराण १६. अग्नि पुराण २०.१२. भागवत पुराण ४.१.१५.३३

ब्रह्मवादिनी कन्या भी उत्पन्न हुई थी।^१ महाभारत में सोम तथा अर्यमा नामक दो पुत्र बताए गये हैं।^२ महाभारत के आदिपर्व में पुष्कल महर्षि इनके पुत्र थे।^३ इस तरह संतति के सम्बन्ध में अनेक सूचनाएं प्राप्त होती हैं। उनके वंश में चन्द्रमा को अत्रि के नेत्र से उत्पन्न बताया गया है।^४

स्वायंभुव मन्वन्तर में इन्होंने उत्तानपाद को दत्तक लिया था।^५ इनका गौतम ऋषि के साथ ब्राह्मण माहात्म्य पर संवाद हुआ था।^६ वायु का अर्जुन के साथ जब युद्ध चल रहा था तब राहु ने चन्द्र तथा सूर्य का पराभाव कर के सर्वत्र अंधकार कर दिया। उस समय देवताओं की प्रार्थना मान्य कर के अत्रि स्वयं चन्द्र बने तथा अंधकार का नाश किया।

अत्रि को पितामहर्षि भी कहा जाता है।^७ यह शिवावतार गौतम के शिष्य हैं। यह स्वायंभुव तथा वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक हैं। उन्नीसवें द्वापर में इन्हे व्यास माना गया था।

अत्रि का धर्मशास्त्र - अत्रि संहिता तथा अत्रि-स्मृति नामक दो धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ अत्रि रचित हैं। अत्रि संहिता में नौ अध्याय तथा चार सौ श्लोक हैं उसमें योग, जप, कर्म-विपाक, द्रव्य-शुद्धि तथा अनेक प्रकार के प्रायश्चित्त का विचार किया गया है।

अत्रिस्मृति में भी नौ अध्याय हैं जिन में प्राणायाम, जप-प्रशंसा तथा प्रायश्चित्त का विवरण है। मनु ने गौरव के साथ इनके मत का उल्लेख किया है।^८ दत्त-मीमांसा में इनके मत का उल्लेख है। इनके लघ्वात्रिस्मृति

- १ वायु पुराण ७०.७५-७६
- २ महाभारत शान्तिपर्व २०१
- ३ महाभारत आदिपर्व ६०.६
- ४ भागवत पुराण ९.१४.२-३
- ५ ब्रह्माण्ड पुराण २.३६.८४-९०; स्कन्द पुराण हरिवंशपर्व १.२
- ६ महाभारत वनपर्व १८३
- ७ मत्स्य पुराण १७१.२८
- ८ मनुस्मृति ३.१६

तथा बृहदात्रेयस्मृति नामक दो ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। इन्होंने वास्तु-शास्त्र पर भी एक ग्रन्थ रचा था।^१ वैखानस आगम के प्रमुख चार प्रवर्तक आचार्यों में से अत्रि एक हैं।

वैखानस धर्म पर इनका ग्रन्थ अति महत्वपूर्ण है, जिसमें मन्दिर में प्रतिष्ठित मूर्ति की सपर्या का विधि-सम्मत स्वरूप और मूर्ति-पूजा का महत्व, वैशिष्ट्य के साथ वर्णित है। इस ग्रन्थ का नाम -समूर्तार्चनाधिकरणम् है। बाद में वैखानस आगम में जो ग्रन्थ रचे गये उन का आधार महर्षि अत्रि का यह ग्रन्थ ही बना।

अत्रि महर्षि ने चार तन्त्र लिखे -पूर्वतन्त्र, आत्रेयतन्त्र, विष्णुतन्त्र, और उत्तरतन्त्र। उत्तर तन्त्र को ही समूर्तार्चनाधिकरण के नाम से पहिचाना जाता है।

मरीचि

मरीचि इक्तीस प्रजापतियों में से एक ऋषि हैं। जो स्वायंभुव मन्वन्तर में ब्रह्मा जी के नेत्र से प्रथम पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। इन्हें विष्णु ने खड्ग दिया जिसे इन्होंने अन्य ऋषिगणों को दिया।^२ दक्ष प्रजापति की कन्या सम्भूति इनकी पत्नी थी। सम्भूति से पूर्णमास नामक पुत्र, तथा कृष्टि, वृष्टि, त्विषा, तथा उपचिति नामक कन्यायें हुईं।^३ भागवत के अनुसार इनकी दो पत्नियाँ थी-ऊर्णा और कर्दम कन्या कला, और इनसे उत्पन्न पुत्रों के नाम कला से कश्यप, पूर्णिमा, ऊर्णा सेस्मर, उदगीथ, परिष्वंग, क्षुद्रभृत, तथा घृणी।^४

१ मत्स्य पुराण २५२.१-४

२ महाभारत शान्तिपर्व १६०.६५

३ ब्रह्माण्ड पुराण २.११

४ भागवत १०.८५, ४७-५१, देवी भागवत ४.२२

कश्यप कुल में सात मन्त्र दृष्टा ऋषि हुए। महाभारत के अनुसार 'चित्रशिखण्डी' कहे जाने वाले ऋषियों में से मरीचि भी एक ऋषि थे। इन्हें आठ प्रकृतियों में भी गिना जाता है।^१

धर्मशास्त्रवेत्ता- मिताक्षरा, अपरार्क, स्मृतिचन्द्रिका में मरीचि ऋषि के मतों के उद्धृत किया गया है, जैसे-आह्निक, अशौचश्राद्ध, प्रायश्चित्त, एवं व्यवहार। मरीचि के ग्रन्थ विमानार्चनकल्प में एक सौ एक पटल हैं। इसमें कहा गया है कि विखनस मुनि ने डेढ़ करोड़ संख्या में सूत्र बनाये। उनके शिष्यों (चारों) ने मिलकर चार लाख ग्रन्थ रचकर वैखानस शास्त्र के नाम से प्रचलित किये। मरीचि ऋषि ने आठ संहितायें लिखीं। वे हैं-जयसंहिता, वीरसंहिता, आनन्दसंहिता, विजयसंहिता, संज्ञानसंहिता, विमलसंहिता, और ज्ञानसंहिता।

मरीचि ऋषि के अनुसार वैखानस शास्त्र वेद का भण्डार हैं। और इसका सिद्धान्त विष्णु की अर्चना है, जिसे विखनस मुनि ने सिखाया है। मरीचि ऋषि की आनन्द संहिता, के सत्रहवें अध्याय में लिखा है कि विखनस मुनि तोताद्रि में कई वर्षों तक तपश्चर्या करने के बाद नर-नारायण की सेवा करने के लिए बद्रीनाथ धाम गए। वहाँ उनको नर-नारायण ने वैदिक रीति से मूर्तिपूजा को संसार में फैलाने के लिए आदेश दिया। तदनुसार नैमिषारण्य में ऋषि गणों को उपदेश दिए, जो वैखानस आगम के नाम से विख्यात हुए।

कश्यप

महर्षि कश्यप अग्नि के शिष्य थे। इनके शिष्य विभांडक थे।^१ त्रयायुषप् मन्त्र में आयु वृद्धि की प्रार्थना करते समय यह निर्देशित है।^२ कश्यप गोत्रकार ऋषि हैं, इनका एवं वसिष्ठ का निकट सम्बन्ध है।^३

इन्द्रियों के अधिष्ठान शरीर का पालन करने वाले जीव को कश्यप कहा गया है।^४ वे ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं। मरीचिपत्नी तथा कर्दम की कन्या कला के कश्यप तथा पूर्णिमा नामक दो पुत्र हुए उनमें कश्यप ज्येष्ठ हैं।^५ इन्हें तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि इन नामान्तरों से भी जाना जाता रहा है। यह सप्तर्षियों में से एक, उसी प्रकार प्रजापतियों में से भी एक है।^६ कहीं-कहीं सप्तर्षियों की सूची में कश्यप के स्थान पर भृगु तथा मरीचि के नाम भी प्राप्त होते हैं। स्वायंभुव तथा वैवस्वत मन्वन्तर के ब्रह्मपुत्र मरीचि वस्तुतः एक ही हैं। इसलिये दोनों समय के कश्यप भी एक ही हैं। इन्हें पूर्णिमा नामक सगा भाई थे तथा छः सापत्न भाई थे। इनकी सापत्न माता का नाम ऊर्णा था। अग्निष्वात नामक पितर भी इनके ही भाई थे। इनकी सुरूपा नामक एक बहन भी थी, जो वैवस्वत मन्वन्तर के अंगिरा नामक ब्रह्मा के मानसपुत्र की पत्नी थी।^७

क्षत्रिय रक्षा - इक्कीस बार पृथ्वी निःक्षत्रिय करने के पश्चात् परशुराम ने सरस्वती के किनारे अश्वमेध यज्ञ किया। उस समय कश्यप अध्वर्यु थे। दक्षिणा के रूप में उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी कश्यप को दानरूप में प्राप्त हुई। अवशिष्ट क्षत्रियों का नाश न हो इस हेतु से, कश्यप ने परशुराम को अपनी

-
- १ वंश ब्राह्मण २
 - २ जैमिनी उपनिषद्-ब्राह्मण ४.३.१
 - ३ बृहदारण्यक उपनिषद् २.२.४
 - ४ महाभारत अनुशासनपर्व १४२
 - ५ भागवत पुराण ४.१
 - ६ महाभारत अनुशासनपर्व १४१
 - ७ महाभारत अनुशासनपर्व १४१

सीमा के बाहर जा कर रहने को कहा। इसके अनुसार परशुराम समुद्र द्वारा उत्पन्न शूर्पारक देश में जा कर रहे। बाद में कश्यप ने पृथ्वी ब्राह्मणों को सौंप कर, स्वयं वन में चले गये।

ग्रन्थ—कश्यप के नाम पर चरकसंहिता में अनेक पाठ हैं। भूतप्रेतादि पर भी इनके कुछ मन्त्र हैं। इनके नाम पर निम्नलिखित ग्रन्थ हैं। कश्यपसंहिता (वैद्यकीय), कश्यपोत्तरसंहिता, कश्यपस्मृति जिसका उल्लेख हेमाद्रि, विज्ञानेश्वर तथा माधवाचार्य आदि ने किया हैं। कश्यपसिद्धान्त वैखानस आगम में प्राप्त काश्यपसंहिता में मन्दिर निर्माण, मन्दिरशिल्प में वास्तु और स्थापत्य के तथा वैखानस परम्परा के आचार-विचार, एवं वैदिक यज्ञविधान का विवरण है। इस भाँति महर्षि कश्यप ने वैखानस धर्म को दिशा दी और वे उसके प्रवर्तक आचार्य माने गये। कश्यप महर्षि के द्वारा रचित सत्यकाण्ड, तर्ककाण्ड, और ज्ञानकाण्ड नाम के तीन ग्रन्थ और विख्यात हैं।

भृगु

भृगुऋषि कश्यपकुल के गोत्रकार हैं। पुराणों में निर्दिष्ट प्रजापतियों में से तथा स्वायंभुव तथा चाक्षुष मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक थे। स्वायंभुव मन्वन्तर में इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के हृदय से हुयी। यह स्वायंभुव मनु के दामाद थे। पद्मपुराण की कथा के अनुसार विष्णु ने पहले भृगु को यह वचन दिया था कि, वह इनके यज्ञ की रक्षा करेंगे। किन्तु यज्ञ के समय वह इन्द्र के निमंत्रण पर उनके यहाँ चले गये। यज्ञ के समय विष्णु को न देख कर दैत्यों ने इनका यज्ञ का नष्ट कर दिया। इससे क्रोधित हो कर भृगु ने विष्णु को मृत्युलोक में दस बार जन्म लेने का शाप दिया।^१ वही दशावतार हुए।

देवों की परीक्षा — एक बार स्वायंभुव मनु ने एक यज्ञ किया, जिसमें यह विवाद खड़ा हुआ कि ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश में कौन श्रेष्ठ है? भृगु वहीं थे,

अतएव इसका निर्णय करने का काम इन्हें सौंपा गया। भृगु सर्वप्रथम कैलाश पर्वत पर शङ्करजी के यहाँ गये। वहाँ पर नन्दी ने इन्हें अन्दर जाने के लिए रोका, कारण कि वहाँ शङ्कर-पार्वती क्रीड़ा में निमग्न थे। इस प्रकार के अपमान एवं उपेक्षा को भृगु सहन नहीं कर सके, इन्होंने क्रोधावेश में शङ्कर जी को शाप दिया, 'तुम्हारे शरीर का आकार लिंग रूप माना जायेगा, तथा तुम्हारे उपर चढ़ाये हुये जल को लेकर कोई भी व्यक्ति तीर्थ रूप में पान नहीं करेगा'। इसके उपरान्त ब्रह्मा के पास गये, वहाँ ब्रह्मा ने इनको नमस्कार ही किया, और न इनका उचित सम्मान कर आसन ही दिया। इससे क्रोधित होकर इन्होंने शाप दिया, 'तुम्हारा पूजन कोई न करेगा'। अन्त में वे विष्णु के पास गये। विष्णु उस समय सो रहे थे। यह दो देवताओं से रुष्ट ही थे। क्रोध में आकर भृगु ने विष्णु के वक्ष पर कस कर एक लात मारी। विष्णु की नींद टूटी तथा उन्होंने इन्हे नमस्कार कर पूछा, 'आपके पैर को तो चोट नहीं लगी?' विष्णु की यह शालीनता देखकर भृगु प्रसन्न हुए, तथा इन्होंने विष्णु को सर्वश्रेष्ठ देवता की पदवी प्रदान की।^१ भृगु के द्वारा किये गये पद-प्रहार को श्रीविष्णु ने 'श्रीवत्स' चिह्न मानकर अपने वक्ष में सदैव धारण किया।^२

परिवार - ब्राह्माण्ड पुराण के अनुसार, इनकी पत्नी दक्षकन्या ख्याति थी, जिससे इनकी लक्ष्मी, धातृ तथा विधातृ नामक सन्ताने हुयीं। लक्ष्मी ने नारायण का वरण किया, तथा उसके बल तथा उन्माद नामक पुत्र हुए। कालान्तर में बल को तेज, तथा उन्माद को संशय नामक पुत्र हुए। भृगु के अनेक पुत्र उत्पन्न हुए, जो आकाशगामी होकर देवों के विमानों के चालक बने।

ख्यातिपुत्र धातृ की पत्नी का नाम नियति, तथा विधातृ की पत्नी का नाम आयाति था। नियति को मृकंड, एवं आयाति को प्राण नामक पुत्र हुए। मृकंड को मनरिवनी से मार्कण्डेय पुत्र हुआ। मार्कण्डेय का धूम्रा से

१ पद्म पुराण उत्तरखण्ड २५५

२ भागवत पुराण १०.८९.१-१२

वेदशिरस् हुआ। वेदशिरस् को पीवरी से मार्कण्डेय नाम से प्रसिद्ध ऋषि हुए। प्राण को पुंडरिका से द्युतिमान् नामक पुत्र हुआ, जिसे उन्नत तथा स्वनवत् नामक पुत्र हुए। ये सभी लोग भार्गव के नाम से प्रसिद्ध हुए।^१ भागवत, विष्णुपुराण तथा महाभारत में भी इनके परिवार के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त होती है।^२

ग्रन्थ - भृगु ऋषि के रचित ग्रन्थ वैखानस आगम के अन्तर्गत निम्नानुसार हैं-खिलतन्त्र, पुरातन्त्र, वासाधिकार, यज्ञाधिकार, चित्राधिकार, वर्णाधिकार, मानाधिकार, प्रकीर्णाधिकार, क्रियाधिकार, प्रतिगृह्याधिकार, अर्चाधिकार, निरुक्ताधिकार और खिलाधिकार इस तरह तेरह अधिकार ग्रन्थ भृगु महर्षि द्वारा रचित हैं।

अगस्त्य

वसिष्ठ के समान अगस्त्य भी मित्रावरुण के पुत्र हैं।^३ उर्वशी को देखकर मित्रा-वरुण का वीर्य कमल पर स्थलित हुआ तथा उससे वसिष्ठ एवं अगस्त्य उत्पन्न हुए।^४ ऋग्वेद में अगस्त्य के पर्याप्त सूक्त हैं।^५ अगस्त्य कुलनाम होने के कारण उनके द्वारा रचित सूक्त अगस्त्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। एक स्थान पर अगस्त्य का विशेषण सुमेधस् भी आया है।^६ ऋग्वेद में अगस्त्य के मान्य और मान्दार्य ये पैतृक नाम भी मिलते हैं।^७ मरुतों के लिये लाये गये पशु का इन्द्र ने जब हरण किया, तब वे वज्र लेकर

१ ब्रह्माण्ड संहिता २.११.१-१०; १३.६२

२ भागवत संहिता ४.१.४५; विष्णु पुराण १.१०.१-५; महाभारत आदिपर्व ६०. ४८

३ ऋग्वेद ७.३३.१३

४ बृहद्देवता ५. १३४

५ ऋग्वेद १.१६५.१३-१५; १६६-१६९; १७०.२, ५ १७१-१७८; १७९.३-४ १८०-१९१

६ ऋग्वेद १.१८५.१०

७ ऋग्वेद १.१६५.१४-१५; १६६.१५

इन्द्र को मारने के लिये उद्यत हुए। उस समय, अगस्त्य नें मरुतों का शान्त किया तथा इन्द्र-मारुतों का मैत्रीभाव स्थापित किया। अगस्त्य के कयाशुभीय सूक्त का यही विषय है।^१ कयाशुभीय सूक्त में इन्द्र-मरुतों का विवाद है,^२ तथा अन्त में मरुतों की प्रसन्नता वर्णित है। यह विवाद वैदिक ग्रन्थों में पर्याप्त प्रसिद्ध है।^३ इन्द्र पर भी अत्रि का पर्याप्त प्रभाव था।^४

इनकी पत्नी का नाम लोपामुद्रा था।^५ ऋग्वेद के इस सूक्त में वहाँ वृद्ध अगस्त्य की तथा तरुणी लोपामुद्रा का प्रसिद्ध संवाद है।

ऋग्वेद के अनुसार अगस्त्य खेल नृप के पुरोहित थे।^६ अगस्त्य के शिष्य^७ तथा अगस्त्य के स्वसुर^८ के नाम पर भी कुछ ऋचाएँ हैं। ऋषियों में श्रेष्ठतम जान कर इन्द्र ने इन्हे गायत्र्युपनिषद् का उपदेश दिया जिसे इन्होंने वह उपदेश इषा को बता कर परम्परा प्रारम्भ की।^९

जैमिनीय उपनिषद् ही, गायत्र्युपनिषद् का उपदेश माना गया। समुद्र में छिपे हुए असुरों ने इन्द्र आदि देवताओं को जब सताना प्रारम्भ किया तब देवताओं ने अग्नि तथा वायु को समुद्र का शोषण करने को कहा; परन्तु समुद्र के प्राणियों का नाश होने की सम्भावना से उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया। तब इन्द्र के द्वारा दिये गये शाप से मित्रावरुणों के

१ ऐतरेय ब्राह्मण ५. १६

२ ऋग्वेद १.१६५

३ तैत्तिरीय संहिता ७.५.५.२ तैत्तिरीय ब्राह्मण २.७.११.१.; मैत्रायणी संहिता २.१.८; कठ संहिता १०.११

४ ऋग्वेद १.१७०

५ ऋग्वेद १.१७९.४

६ ऋग्वेद १.१८२.१

७ ऋग्वेद १.१७९.५-६

८ ऋग्वेद १०.८०.८

९ जैमिनी उपनिषद्-ब्राह्मण ४.१५.१.१६.१

वीर्य से यह कुंभ में उत्पन्न हुआ। उनमें से अगस्त्य ही अग्नि है। इसी कारण इनको मैत्रावरुणि तथा कुंभयोनि नाम मिले।^१

अगस्त्य स्वभाव से विरक्त थे। तथापि पितरों की आज्ञानुसार विदर्भाधिपति की कन्या लोपामुद्रा के साथ इनका विवाह हुआ। राजकन्या होने के कारण उसे अगस्त्य की अपेक्षा ऐश्वर्य में विशेष रुचि थी। अपने तपःसमर्थ से प्राप्त करने की शक्ति होते हुए भी तप का व्यय ऐश्वर्य के लिए करने की अगस्त्य की इच्छा न थी। परन्तु लोपामुद्रा की तीव्र इच्छा देख कर श्रुतर्दन, ब्रन्ध्यश्व तथा त्रसदस्यू ने अगस्त्य को इल्वल की अपरम्पार सम्पत्ति की सूचना दी। तब तीनों राजाओं को साथ लेकर वे इल्वल के पास गये तथा अपने अतुल सामर्थ्य से इल्वल की सम्पत्ति प्राप्त कर इन्होंने लोपामुद्रा को सन्तुष्ट किया।

समुद्र में रहने वाले कालकेयों ने लोगों को काफी त्रस्त करना प्रारम्भ किया तब इन्होंने समुद्र का पान कर लिया। तदनन्तर देवताओं ने कालकेयों का वध कर के सब को यातनामुक्त किया। अगस्त्य ने बाहर निकालने पर बताया कि समुद्र उदर में ही समाहित हो गया।

‘अग’ का अर्थ है पर्वत, पर्वत का स्तम्भन करने वाला ‘अगस्त्य’ शब्द का निर्वचन किया गया।^२ ये विंध्य के गुरु थे। अगस्त्य के दक्षिण जाने के समय विंध्य ने इन्हे नमस्कार किया, तब इन्होंने विंध्य को कहा कि, मेरे लौटते तक तुम इसी प्रकार पड़े रहो। इस कथानानुसार विंध्य नम्र बन कर पड़ा रहा तथा उत्तर का दक्षिण से आवागमन प्रारम्भ हुआ।^३ पहले यह अगस्त्य काशी में रहते थे, परन्तु विंध्यचल से मार्ग प्राप्त कर दक्षिण में आवागमन को प्रारम्भ करने के लिये, इन्होंने काशीवास का त्याग किया। इस प्रसंग में अगस्त्य को दिये हुए अभिवचन के अनुसार काशी के

१ मत्स्य पुराण ६१.२०१; पद्म पुराण सृष्टिखण्ड २२.२२; महाभारत द्रोणपर्व

१३२; १८५; महाभारत शान्तिपर्व ३४४; ब्रह्माण्ड पुराण ३.३५

२ वाल्मीकि रामायण अरण्यकाण्ड ११

३ महाभारत वनपर्व १०२; देवी भागवत १०.३.७

विश्वेश्वर, रामेश्वर में आकर रहने लगे।^१ काशी क्षेत्र में रहने की इच्छा अपूर्ण देखकर गोदावरी तट पर लक्ष्मी ने वर दिया कि उन्तीसवें द्वापर युग में अगस्त्य, व्यास बन कर काशी में वास करेंगे।^२ दक्षिण में आने के बाद इन्होंने एक द्वादश-वर्षीय सत्र मनाया। इस सत्र के ब्राह्मणों को पिप्पल तथा अश्वत्थ नामक असुर से मृत्यु का भय था अतः शनि ने उसका नाश किया। नहुष द्वारा वाहन बनाकर इनका अपमान करने के कारण अगस्त्य की जटा सहित भृगु ने, नहुष को दस हजार वर्षों तक अजगर बन कर जीवन यापन करने का शाप दिया।^३

वनवास के समय दाशरथी राम इनके दर्शन के लिये आये थे। अगस्त्य ने राम को सोने तथा हीरों से सुशोभित सुन्दर धनुष, अमोघ बाण, अक्षय तूणीर तथा स्वर्ण के खड्ग-कोष सहित स्वर्ण का खड्ग दिया।^४ राम का अगस्त्य के आश्रम में ब्रह्मा, अग्नि, विष्णु, इन्द्र, सूर्य, सोम, भग, कुबेर, श्वाता, विधाता, वायु, नागराज-अनन्त, गायत्री, अष्टावसु, पाशहस्त-वरुण, कार्तिकेय तथा धर्म के लिये निर्धारित विभिन्न स्थान दृष्टिगोचर हुए।^५ इन्होंने भद्राश्व को गीता सुनाई।^६ इन्होंने अपने लिये निकाला हुआ कमलकन्द एक भूखे चांडाल को दिया।^७ प्रजाहित के लिये देवताओं के लिये अगस्त्य ने समस्त मृग प्रोक्षण किया। परन्तु आगे अगस्त्य ने द्वादशवर्षीय सत्र में पशुहिंसा का निषेध कर इन्द्र को वर्षा करने के लिये विवश किया।^८

-
- १ आनन्द रामायण सारकाण्ड १०
 - २ स्कंद पुराण ४.१.५
 - ३ महाभारत अनुशासनपर्व १००.२५; स्कन्द. १.१.१५
 - ४ वाल्मीकि रामायण अरण्यकाण्ड १२. ३१-३५
 - ५ वाल्मीकि रामायण अरण्यकाण्ड १२.१७.२१
 - ६ वराह पुराण ३५
 - ७ पद्म पुराण सू. १९
 - ८ महाभारत आश्वमेधिकपर्व १५

लोपामुद्रा को इध्मवाह नाम से प्रसिद्ध दृढस्यु नामक पुत्र था ।^१ दृढस्यू के अन्य नाम दृढ-द्युम्न, इन्द्रवाहु भी थे ।^२ पुलस्त्य, पुलह तथा क्रतु अगस्त्य गोत्रीय न होते हुए भी, इनकी संतति अगस्त्य गोत्रीय मानी जाती है, क्योंकि वैवस्वत मन्वन्तर का क्रतु निपुत्रक होने के कारण उसने अगस्त्य पुत्र इध्मवाह को दत्तक बना लिया था । पुलह की संतति राक्षस थी अतएव उसने अगस्त्य पुत्र दृढस्यु को दत्तक लिया । पौलस्त्य ने भी इसी प्रकार अगस्त्य पुत्रों में से दत्तक पुत्र लिया ।^३ ब्रह्माण्ड पुराण में अगस्त्य के अय, दृढायु तथा विध्मवाह नाम अन्य पुत्रों का वर्णन है ।^४ अगस्त्य की जो गोत्र परम्परा प्रचलित हुई । उसे ही अगस्त्यवंश कहा गया है ।^५ अगस्त्य का सम्बन्ध विशेष रूप से दक्षिण से आता है ।^६ इन्हें लङ्कावासी कहा गया है ।^७ अगस्त्य को दक्षिण का स्वामी तथा विजेता भी कहा गया है ।^८ अगस्त्य का आश्रम दक्षिण में मलय पर्वत पर था ।^९ पाण्ड्य प्रदेश तथा महानदी के पास महेन्द्र पर्वत के साथ भी अगस्त्य का सम्बन्ध है ।^{१०} अगस्त्य के मन्दिर, जावा द्वीपों में भी है । वहाँ उपलब्ध महाभारत भी दक्षिणात्य पाठ से मिलता जुलता है । अगस्त्याश्रम नाशिक के पास माना गया है । दुर्जया तथा मणिमति पराक्रमी असुर वातापी के नगर थे,^{११} जिनका विनाश अगस्त्य ने किया था । अगस्त्य नामक तारा भाद्रपद माह में दक्षिण की ओर उदित होता

१ महाभारत वनपर्व ९७. २३-२४

२ मत्स्य पुराण १४५. ११४

३ मत्स्य पुराण २०२. ८. १२

४ ब्रह्माण्ड पुराण २. ३२. ११९

५ मत्स्य पुराण २०२. ६

६ वाल्मीकि रामायण अरण्यकाण्ड ११; ब्रह्म पुराण ८४. ११८. २.

७ मत्स्य पुराण ६१. ५१

८ ब्रह्म पुराण ११८. १५९

९ मत्स्य पुराण ६१. ३७; पद्म पुराण सृष्टिखण्ड . २२; वाल्मीकि रामायण किष्किंधा काण्ड ४१. १५-१६

१० वाल्मीकि रामायण किष्किंधा काण्ड ४१.

११ महाभारत वनपर्व ९४. १

है। इसके उदय के बाद पानी शुद्ध हो जाता है, इस कथा का सम्बन्ध अगस्त्य के व्यक्तित्व से जोड़ा गया है।^१

अगस्त्य वंश के गोत्रकार - करंभ (करंभय), कौशल्य (ग), क्रतुवंशोद्भव, गांधारकायन, पौलस्त्य, पौहल, मयोभुव, शकट (करट), सुमेधस इनसे गोत्रकार के अगस्त्य, मयोभुव, तथा महेन्द्र तीन प्रवरों के हैं। अगस्त्य (ग), पौर्णिमास (ग) गोत्रकारों के आगस्त्य, पारण, पौर्णिमास ये तीन प्रवरों के हैं।^२

अगस्त्यगोत्रीय मन्त्रकार - इन में से अगस्त्य, इन्द्रबाहु तथा दृढद्युम्न को अगस्ति संज्ञा ये मन्त्र दृष्टा ऋषि थे।^३ अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा विदर्भराज निमि की कन्या थी। निमि ने उन को लोपामुद्रा के साथ राज्य भी दिया था।^४ काशी का नृप प्रतर्दन का पोता तथा वत्स का पुत्र अलर्क ने लोपामुद्रा की कृपा से दीर्घायु प्राप्त की थी।^५ इस से ज्ञात होता है कि अगस्त्य, निमि तथा अलर्क के समकालीन थे।

अगस्त्य द्वारा रचित ग्रन्थ - अगस्त्यगीता^६, पञ्चरात्र की अगस्त्य संहिता, स्कन्दपुराण की अगस्त्य संहिता, शिव संहिता, भास्कर संहिता का द्वैधनिर्णयतन्त्र।^७ इनमें पाञ्चरात्र की अगस्त्य संहिता अधिक प्रसिद्ध है।

अगस्त्य संहिता - वैदिक काल के प्रख्यात ऋषि अगस्त्य के द्वारा रचित अगस्त्य संहिता पाञ्चरात्र धर्म की प्राचीनतम संहिताओं में से हैं। इसमें संवाद-परम्परा का वैशिष्ट्य भी दर्शनीय है, यथा-

१. अगस्त्य-ब्रह्मा संवाद

- १ मत्स्य पुराण ६१
- २ मत्स्य पुराण २०२
- ३ मत्स्य पुराण १४५.११४-११५
- ४ महाभारत अनुशासनपर्व १३.११
- ५ वायु पुराण ९२.६७. ब्रह्माण्ड पुराण ११.५३
- ६ वराह पुराण में पशुपालोपख्यान अ. २१५
- ७ ब्रह्मवैवर्त पुराण २.१६

२. अगस्त्य-सुतीक्ष्ण संवाद
३. सूत-शौनक और अगस्त्य संवाद
४. शिव-पार्वती के पूर्व संवाद को अगस्त्य द्वारा पुनः संवाद के रूप में कथन

इसमें -श्रीराम-सीता, लक्ष्मण, हनुमान का षोडशोपचार पूजन-अर्चन क्रम, कथा-सार, श्रीरामनवमी उत्सव-प्रशंसा, शास्त्रावतार, मुक्ति-उपचार, भगवदवतार, मन्त्र-प्राप्ति प्रकार, पार्वत्युपदेश, तुलसी-महात्म्य, षडक्षर-महात्म्य, गुरु-शिष्य लक्षण, यन्त्र-लक्षण, पूजा-विधान, भूत-शुद्धि, मातृकान्यास, पूजाद्रव्यशुद्धि, अग्नि-कार्यविधि, प्रयोगभेद, पुरश्चरणविधि, दीक्षाविधि, यज्ञादिलक्षण, प्राणायाम-विधि, ग्रन्थादिभेदलक्षण, प्रतिमादानविधि, प्रतिष्ठाविधि, दशाक्षरविधि, विनियोग-विधि, ग्रन्थिभेदलक्षण, आज्ञनेयमनु अर्थात् हनुमान-मन्त्र, इत्यादि चर्चा को सर्वप्रथम शिव ने पार्वती से कहा, जिसे दिव्य ऋषि अगस्त्य और सुतीक्ष्ण संवाद के द्वारा सूतजी ने सुना और शौनकादि ऋषियों को सुनाया। इसीतरह नारद-अगस्त्यसंवाद और शुक-अगस्त्यसंवाद में वैष्णव तन्त्र और गायत्री-मन्त्र का उल्लेख मिला है, परन्तु तैल्लिगुलिपि में अप्रकाशित बहुचर्चित यह संहिता अब अप्राप्त है।

इसी सन्दर्भ में अप्रकाशित एक और अगस्त्य संहिता प्राप्त होती है, जो कि अगस्त्य-ब्रह्म संवाद का विवेचन प्रस्तुत करती है; जिसमें -प्रासादलक्षण, प्रतिमालक्षण, शयनासनलक्षण, प्रतिमालक्षण, प्रतिष्ठा-विधि, अर्चना, पवित्रारोपणप्रायश्चित, तन्त्रसङ्करभेद, नित्यनैमित्तिक-प्रायश्चितविधि, इत्यादि विषयवस्तु के माध्यम से पाञ्चरात्र-परम्परा का प्राचीन शास्त्रीय स्वरूप दर्शाती हुई वैदिक ऋषि-परम्परा से सम्बद्ध थी।

भरद्वाज

भरद्वाज एक सुविख्यात वैदिक सूक्तदृष्टा ऋषि हैं, जिन्हें ऋग्वेद के छठवे मण्डल के अनेक सूक्तों के प्रणयन का श्रेय दिया गया है।^१ भरद्वाज

तथा भरद्वाजों को स्तोतारूप में भी, इस मण्डल में अनेकशः निदिष्ट किया गया है। अथर्ववेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इन्हें वैदिक सूक्तद्रष्टा कहा गया है।^१ भरद्वाज ने अपने सूक्तों में बृबु, बृसय एवं पारावतों का उल्लेख किया है।^२ पायु, रजि, सुहल साय्य, पेरुक एवं पुरुणीय शातवनेय इनके आत्मीय थे। पुरुवंशी राजा को भरद्वाज के आश्रयदाता के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है।^३

अन्यग्रन्थ - भरद्वाज संहिता - पञ्चरात्र संप्रदाय के इस ग्रंथ के कुल चार अध्याय हैं; भरद्वाज स्मृति, जिसका निर्देश पद्म-पुराण में प्राप्त है, एवं जिसके उद्धरण हेमाद्रि, विज्ञानेश्वर, बालभट्ट आदि ग्रन्थकारों ने दिये हैं; वास्तुतत्त्व; वेदपादस्तोत्र।

शाण्डिल्य

एक श्रेष्ठ आचार्य, जो अग्निकार्य से सम्बन्धित समस्त यज्ञप्रक्रिया में अधिकारी व्यक्ति माने जाते थे। बृहदारण्यक उपनिषद् में इन्हें वात्स्व नामक आचार्य का शिष्य कहा गया है।^४ 'शाण्डिल' का वंशज होने के कारण, इन्हें यह नाम प्राप्त हुआ।

यज्ञप्रक्रियों के आचार्य - शतपथ ब्राह्मण के पाँचवें एवं उसके बाद के काण्डों में, अग्नि से सम्बन्धित जिन संस्कारों को निर्देश प्राप्त है। वहाँ सर्वत्र इनका अग्नि प्रक्रियायों के श्रेष्ठ आचार्य के नाते किया गया है।^५ शतपथ ब्राह्मण के सारे अध्यायों में यज्ञाग्नि को 'शाण्डिल' कहा गया है।^६

१ अथर्ववेद. २.१२.२; ४.२९.५; कठ संहिता १६.९; मैत्रायणी संहिता २.७.१९; ऐतरेय ब्राह्मण ६.१८.८.३; तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१०.११.१३; कौशितिकि ब्राह्मण १५.१; २९.३

२ ऋग्वेद ८.१०.८

३ ऋग्वेद ९.६७.१-३; १०.१३७.१; सर्वानुक्रमणी; बृहदेवता ५.१०२

४ बृहदारण्यक उपनिषद् ६.५.४

५ शतपथ ब्राह्मण ५.२.१५; १०.१.४.१०; ४.१.११; ६.३.५; ५.९. ९.४.४.१७

६ शतपथ ब्राह्मण १०.६.५.९

शतपथ ब्राह्मण के अग्निचयन-काण्ड - शतपथ ब्राह्मण के छः से नौ काण्ड 'अग्निचयन' से सम्बन्धित हैं, जिनमें कुल साठ अध्याय हैं। ये चार काण्ड 'अग्नि' अथवा 'षष्टिपथ' सामूहिक नाम से प्रसिद्ध थे, एवं उनका अध्ययन अलग किया जाता था। इन काण्डों का अध्ययन करनेवाले आचार्यों को 'षष्टिपथक' कहा जाता था। इन सारे काण्डों का प्रमुख आचार्य शाण्डिल्य माना गया है। शतपथ ब्राह्मण का दसवाँ काण्ड 'अग्निरहस्य काण्ड' कहलाता है, जिसमें अग्नि-चयन के रहस्यात्मक तत्त्वों का निरूपण किया गया है। यहाँ भी शाण्डिल्य को इस विद्या का प्रमुख आचार्य माना गया है। यज्ञ की वेदी की रचना करना, आदि विषयों में इनके मत पुनः पुनः उद्धृत किये गये हैं।

तत्त्वज्ञान - 'छान्दोग्य उपनिषद्' में शाण्डिल्य का तत्त्वज्ञान दिया गया है।^१ इस तत्त्वज्ञान के अनुसार, ब्रह्मा को 'तज्जलान्' कहा गया है; एवं सारी सृष्टि उसी तत्त्व से प्रारम्भ होती, जीवित रहती है, एवं अन्त में इसी तत्त्व में विलीन होती है, ऐसा कहा गया है। शाण्डिल्य के इस तत्त्वज्ञान का तात्पर्य यही था कि, सृष्टि के समस्त प्राणीमात्र की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का अधिष्ठाता केवल ईश्वर ही है।

आत्मा का स्वरूप - शाण्डिल्य के तत्त्वज्ञान में 'आत्मा' का वर्णन अर्थपूर्ण एवं निश्चयात्मक शब्दों में किया गया है, एवं उसके 'महत्तम' एवं 'लघुतम' ऐसे दो स्वरूप वहाँ वर्णन किये गये हैं। इनमें से 'महत्तम' आत्मा अनन्त एवं सारे विश्व का व्यापन करनेवाला कहा गया है, एवं 'लघुतम' आत्मा अणुस्वरूपी वर्णन किया गया है। आत्मा का निषेधमुखी वर्णन करनेवाले याज्ञवल्क्य के तत्त्वज्ञान से, शाण्डिल्य के इस तत्त्वज्ञान तुलना प्रायः की जाती है। याज्ञवल्क्य, वाजसनेय इन दोनों तत्त्वज्ञानियों की विश्लेषण पद्धति भिन्न-भिन्न होते हुए भी, उन दोनों में प्रणीत आत्मा से सम्बन्धित तत्त्वज्ञान एक ही प्रतीत होता है। शाण्डिल्य के अनुसार, मानवीय जीवन का अन्ति मध्येय मृत्यु के पश्चात् आत्मन् में विलीन होना बताया गया है।

शङ्कराचार्य विरचित -ब्रह्मसूत्रभाष्य' में शाण्डिल्य के उपर्युक्त तत्त्वज्ञान का निर्देश 'शाण्डिल्यविद्या' नाम से किया गया है।

गोत्रकार आचार्य - आश्वलायन गृहसूत्र में प्राप्त गोत्रकारों के नामावलि में शाण्डिल्य, असित, एवं देवल के नाम दिये गये हैं। इसके द्वारा प्रणीत 'गृह्यसूत्र' का निर्देश 'आपस्तम्ब धर्मसूत्र' में प्राप्त है।^१ भक्ति के सम्बन्ध इनके उद्धरण भी उत्तरकालीन सूत्रग्रन्थों में प्राप्त हैं।

ग्रन्थ - महर्षि शाण्डिल्य के नाम पर निम्नलिखित ग्रन्थ प्राप्त है-

शाण्डिल्यस्मृति, शाण्डिल्यधर्मसूत्र, शाण्डिल्यतत्त्व दीपिका, एवं शाण्डिल्यसंहिता, तथा शाण्डिल्यभक्तिसूत्र। पाञ्चरात्र परम्परा के प्रवर्तक आचार्य, महर्षि शाण्डिल्य ने भक्ति, प्रपत्ति और वैष्णव सम्प्रदाय में प्रसाद की महत्ता को विशेष रूप से प्रतिपादित किया है। यहाँ तक कि शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में भी वैदिक परम्परा के कर्मकाण्डीय पक्ष का निर्वहन करते हुए वैष्णव भक्ति सम्बन्धी अपने मत में वे कहते हैं-भक्तिः प्रमेया श्रुतिभ्यः^२ और अथातोभक्ति जिज्ञासा^३ अतएव वैष्णव धर्म का प्रतिपाद्य विषय शाण्डिल्य संहिता में दृष्टव्य है। तथा पाञ्चरात्र सत्र में भाग लेने वाले पाँच ऋषि गणों में शाण्डिल्य प्रमुख हैं।

संवर्त आंगिरस

ब्रह्मापुत्र अंगिरस् ऋषि के तीन पुत्रों में से एक संवर्त थे। इसके अन्य दो भाइयों के नाम बृहस्पति एवं उतथ्य थे।^४ महाभारत में तथा अन्यत्र

१ आपस्तम्ब धर्म सूत्र ९.११.२१

२ शाण्डिल्य भक्ति सूत्र १.२.९

३ शाण्डिल्य भक्ति सूत्र १.१

४ महाभारत आदिपर्व ६०.४-५

इनके भाईयों के नाम बृहस्पति, उतथ्य, पयस्य, शान्ति, घोर, विरूप एवं सुधन्वन् दिये गये हैं।^१ इनका दूसरा नाम 'वीतहव्य' भी था।^२

वैदिक साहित्य में - ये वैदिक सूक्तद्रष्टा एवं प्रचीन यज्ञकर्ता के नाते ऋग्वेद में प्रसिद्ध हैं।^३ ऐतरेय ब्राह्मण में इन्हें मरुत्त आविक्षित राजा का पुरोहित कहा गया है।^४

देवताओं पर प्रभाव - यह महान् तपस्वी थे, एवं जिस स्थान पर इन्होंने तपस्या की थी, वह आगे चल कर 'संवर्तवापी' के नाम से सुविख्यात हुआ।^५ इनकी अत्यधिक तपस्या के कारण समस्त देवता भी इनके अनुगत थे। मरुत्त के यज्ञ के लिए सुवर्ण की आवश्यकता होने पर इन्होंने हिमालय के सुवर्णमय मौञ्जवान् पर्वत से विपुल सुवर्ण प्राप्त किया।^६ इन्होंने मरुत्त के यज्ञ के समय, साक्षात् अग्नि देव को अग्नि में आहुति लेने की गर्जना की थी।^७ इन्द्र का वज्र इन्होंने स्तम्भित किया था, एवं इस प्रकार इन्द्र को मरुत्त के यज्ञ में आने पर विवश किया था।^८

कौशिक

पाञ्चरात्र धर्म के प्रवर्तक एवं मूल उद्गाता ऋषिगणों में कौशिक ऋषि की गणना है। पाद्मसंहिता में संवर्त ऋषि का सङ्कर्षण से संवाद महत्त्वपूर्ण है। कौशिक महर्षि कौण्डिन्य के शिष्य हैं। उनके शिष्य गौपवन

१ महाभारत अनुशासनपर्व ८५.३०-३१

२ योग वसिष्ठ ५.८२-९०

३ ऋग्वेद १०.१७२.८.५४.२

४ ऐतरेय ब्राह्मण ८.२१; मरुत्त आविक्षित ३

५ महाभारत वनपर्व ८३.२८

६ महाभारत आश्वमेधिकपर्व ८; मार्कण्डेय पुराण १२६. ११-१३

७ महाभारत आश्वमेधिकपर्व ९.११

८ महाभारत आश्वमेधिकपर्व १०

तथा शाण्डिल्य भी थे।^१ कहीं-कहीं इनको व्यास की साम शिष्य परम्परा में हिरण्यनाभ का शिष्य भी कहा गया है। मत्स्यपुराण में उल्लेख है कि अथर्ववेद के गृह्यसूत्र के रचियता आचार्य कौशिक थे।^२ इनके नाम से उपलब्ध कौशिक-गृह्यसूत्र और कौशिक-स्मृति का उल्लेख हेमाद्रि ने 'परिशेषखण्ड' में किया है।^३ उसी तरह नीलकंठ ने भी अपने ग्रन्थ श्राद्धमयूख में कौशिक-स्मृति का उल्लेख किया है। सम्भवतः कौशिक-शिक्षा और कौशिक-पुराण भी इन्हीं ऋषि की रचना होगी।

कौशिक कुल के मन्त्रकार-कौशिक ऋषि की वंश परम्परा में लगभग १३ मन्त्रकारों की गणना की जाती है। जिनमें- विश्वामित्र, देवरात, बल, शरद्वत्, मधुच्छन्दस्, अघमर्षण, अष्टक, लोहित, भूतकाल, अम्बुधि, धनञ्जय, शिशिर, और शाम्बकायन हैं।^४ इसके अतिरिक्त सावर्णि मन्वन्तर में होने के कारण कौशिक ऋषि की गणना सप्तऋषियों में की जाती है। कौशिक संहिता पाञ्चरात्र धर्म ही पोषक संहिता रही है। उसके प्रवर्तक आचार्य परम्परा में इनका उल्लेख किया जाता है।



१ बृहदारण्यक उपनिषद् २.६.१., ४.६.१

२ मत्स्य पुराण १४५.९२-९३

३ कौशिकगृह्यसूत्र और कौशिकस्मृति 'परिशेषखण्ड' १.६.३१

४ मत्स्य.पु. १४५.११२-११४

षष्ठ अध्याय

वैष्णव संहिताओं में वैदिक मन्त्रों का विनियोग

वैष्णव आगम की सभी संहिताओं में परोक्ष रूप से वैदिक प्रभाव का आकलनप्रयत्न साध्य हो सकता है पर विभिन्न अनुष्ठानों में प्रयुक्त मन्त्रों में वैदिक मन्त्रों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आगमों की विभिन्न क्रिया-विधियों में तान्त्रिक और पौराणिक मन्त्रों का प्रयोग भी होता है। शैव और शाक्त आगमों में इन की संख्या और मात्रा अधिक है परन्तु वैष्णव आगम की संहिताओं में वेद-मन्त्र ही सर्वाधिक हैं। सामान्य धारणा यही है कि पुरुष-सूक्त पाञ्चरात्र का मुख्य सूक्त है। उसका अनुष्ठानों के विनियोग में अत्यधिक प्रयोग होता है, यह सही भी है। वैष्णव आगम के अनुष्ठान पक्ष को ही नहीं अपितु दार्शनिक और सैद्धान्तिक पक्ष का महत्वपूर्ण आधार पुरुष-सूक्त ही है। यद्यपि इन संहिताओं में पुरुष-सूक्त के अतिरिक्त ऋग्वेद के अन्य अनेक सूक्तों को विभिन्न अनुष्ठानों सम्पूर्ति के लिए संलग्न किया गया है। यहाँ यह ध्येयतव्य है कि वेदोत्तर परम्परा में तीन धाराओं में वेद-मन्त्रों का प्रयोग हुआ है।

पहली ज्ञानकाण्डाश्रित उपनिषद् वाङ्मय, जिसमें वेद-मन्त्रों का प्रत्यक्ष उद्धरण देते हुए, अथवा परोक्ष रूप से उसके अभिप्राय में ध्यान रखते हुए, तत्त्वपरक व्याख्या की गई है। यद्यपि वहाँ वेद-मन्त्रों के उपयोग में अक्षर या शब्द राशि का उतना महत्व नहीं है, जितना उसमें निहित सिद्धान्तों का।

दूसरी धारा मीमांसा प्रस्थान एवं यज्ञ-विधियों की है जिसमें मीमांसा में मन्त्र के अर्थ पर अधिक गम्भीरता से विचार किया गया है। शब्द और अर्थ के पारस्परिक सम्बन्ध तथा अर्थ-प्रत्यय की प्रक्रिया के सम्बन्ध

में इस दर्शन प्रस्थान में बहुत गम्भीरता से विचार-विमर्श हुआ है। उनके मत में वेद मन्त्र का तात्पर्य अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। वैसे तो यज्ञ-विधान की सैद्धान्तिक पीठिका मीमांसा है, परन्तु मन्त्रों की वर्ण-समाम्नाय की ध्वनि यज्ञ-वेदियों के समीप विभिन्न कर्मकाण्डीय विधानों में मन्त्रोच्चारण का विशेष प्रयोजन एवं महत्त्व है।

तीसरी धारा वैष्णव-आगम की है जहाँ स्नपनादि अनुष्ठानों में वेद-मन्त्र के प्रयोग को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। वैष्णव-आगम और वेद-मन्त्रों के पारस्परिक सम्बन्ध को समझने के लिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इस परम्परा में मन्त्रों को भगवदंश एवं भगवत्स्वरूप माना गया है। इतना ही नहीं अपितु साधना की दृष्टि से उपास्य तक पहुँचने के लिए इन मन्त्रों और इनके आधारभूत वर्णों का ध्यान रखना आवश्यक है। आगे दी गई तालिकाओं से यह सर्वथा स्पष्ट हो जायेगा कि कोई भी विधि या उसका अङ्ग बिना वेदमन्त्र के सम्पन्न नहीं हो सकता।

यह तीसरी धारा प्रकारान्तर से तीन दृष्टियों से वेद मन्त्रों का प्रयोग करती है। वह भाषिक संरचना के महत्त्वपूर्ण अवयव वर्णों में विभिन्न शक्तियों देवों और विभवादि अवतारों की प्रतिष्ठाकर मूर्तिवत् साकार मानकर उनकी उपासना करते हैं। दूसरा प्रातःकाल से प्रारम्भ कर दिनान्त तक एक दीर्घक्रिया-विधि की व्यवस्था है, जो अर्चक एवं साधक को निरन्तर अपने उपास्य से तन्मय बनाये रखती है। उसमें निरन्तर वेद-मन्त्रों के द्वारा पवित्रता का आधान होता चलता है। तीसरी दृष्टि से अपने ज्ञानपाद में मन्त्रों में निहित अभिप्राय और अर्थ के आधार पर अपने सिद्धान्तों का रूप निर्धारण एवं व्याख्या करती हैं। इस तरह यही धारा वेद के मन्त्रों के वर्ण, उच्चारण के द्वारा विनियोग, जो आचार के अन्तर्गत आते हैं और अपने सिद्धान्त का ग्रहण एवं प्रमाणीकरण वेदमन्त्रों द्वारा करते हैं।

नारदीय संहिता

नारदीय संहिता में अध्याय १५ में विस्तार से स्नपन-विधि का वर्णन है। नारदीय संहिता के पन्द्रहवें अध्याय में वैदिक मन्त्रों के द्वारा

लगभग १३ बार स्नपनक्रम; कलशस्नपन; प्रतिष्ठा कलशस्नपन, उत्तमस्नपन मध्यमस्नपन, स्नपनोत्तराधन, इत्यादि अभिषेक-विधि को सम्पन्न किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता हैं। इसी क्रम में बिम्ब-प्रतिष्ठा विधि के लगभग ११ बार वैदिक ऋचाओं के द्वारा, आचार्य और देशिक आदि के द्वारा सस्वर पाठ करते हुये बिम्ब प्रतिष्ठा-नेत्रोन्मीलन, बिम्बसंस्कार नेत्रोन्मीलन, बिम्बसंस्कार शयनमण्डपप्रवेश आदि विधि को सम्पन्न कराया जाता है। और अन्य संस्कारों में पुंसवन, उपनयन, शिलासंग्रहण, ध्वजगरुडआक्षिप्तोचन, भानुनिरीक्षण एवं अर्चकनित्यक्रम इत्यादि संस्कार विधियों के लिये भी इदं विष्णुः, तत्त्वक्षुः, विष्णुर्योनिम्, विष्णोःकर्माणि और गन्धद्वारा आदि वेद मन्त्रों से प्रक्रिया विधि को सम्पन्न किया जाता है। स्पष्ट है कि प्रत्येक वैष्णवागम में चर्या पाद में विनियोग के समय कर्मकाण्डीय प्रक्रिया का मूल आश्रय वैदिक संस्कार, कर्मकाण्ड और वैदिक मन्त्र-ऋचाएं हैं। तत्सम्बन्धी सामग्री यहाँ दृष्टव्य है-

नारदीय संहिता ऋग्वेदमन्त्रप्रतीक वर्णानुक्रम सूची

क्र.	मन्त्र प्रतीक	मण्डल-सूक्त-मन्त्र	नारदीयसंहिताध्वरण	अध्याय श्लोक	विनियोग विषय
१.	इदं विष्णुः	१-२२-१७	ऋग्भिःपुरुषसूक्तस्य तथेदं विष्णुरित्यूचा विष्णु रित्यूचा ।	२०-६३	स्नपनक्रम
२.	इदमापः प्रवहत	१-२३-२२ १०-९-८	इदमापः प्रवहतः इत्युवा स्नापयेत्ततः ॥	१५-७१	कलश स्नपन
३	चित्रं देवति	१-११५-१	चित्रं देवे ति मन्त्रेण नेत्रे चोन्मीलयेत्ततः ।	१५-६६	प्रतिष्ठा कलश स्नपन
४.	त्वं विष्णो	७-१००-२	त्वं विष्णो इति मन्त्रेण मध्यादारभ्यमन्त्रवित्	२०-७६	मध्यम स्नपन
५..	विश्वे	१०-३५-१३	पुंसाभिषेचयेद्घ्ना विश्वे पयसा तथा ॥	१९-११ ८	स्नपनक्रम
६..	वेदाहम्	२-१४-१	वेदाहमिति मन्त्रेण सोत्तरीयं तु कारयेत् ।	१५-७५	कलश स्नापनम्
७..	विष्णोर्नुक्रम	१-१५४-१-	विष्णोर्नुकमिति प्रातः	२०-८३	उत्तम स्नपन

			स्नापयेन्मङ्गलाम्भसा ।		
८.	समिद्ध	६-१५-७	समिद्ध इति मन्त्रेण अञ्जनं तु प्रदापयेत् ॥	१५-७७	स्नपनोत्तर आराधन
९.	सोमं राजानम्	१०-१४१-३	सोमं राजानमि ति च तृतीयेनाभिषेचयेत् ॥	१५-६८	बिम्ब संस्कार नेत्रोन्मीलन
१०.	हंस२ शुचि	४-४०-५	हंस२शुची ति मन्त्रेण प्रथमेनाभिषेचयेत् ।	१५-६७	बिम्ब संस्कार नेत्रोन्मीलन
११.	इदं विष्णुः	१-२२-१७	गन्ध माल्यं पावित्रं च इदं विष्णु इति ऋचा ।	१५-७४	स्नपनोत्तर आराधन
१२.	औषधीः (प्रतिमोदध्व म)	१०-९७-३	औषधीश्चेति मन्त्रेण पुष्पावकिरणं तथा ।	१५-७६	स्नपनोत्तर आराधन
१३.	दीर्घायुत्वाय	८-५९-७	ततः पुष्पाणि माल्याणि दीर्घायुत्वाय वर्चस	१५-७८	स्नपनोत्तर आराधन
१४.	विश्वतश्चक्षु	१०-८१-३	विश्वतश्चक्षुरित्येवं कुर्यात् सकलनिष्कलम् ।	१५-७५	स्नपनोत्तर आराधन
१५.	अतो देवा अवन्तु नः	१-२२-१६	अतो देवा अवन्तु इति सूक्तं समुच्चरन् ।	१५-१८ ४	बिम्बप्रतिष्ठापन क्रम
१६.	उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते	१-४०-१	उत्तिष्ठेति समुत्थाप्य कृत्वा ब्रह्मरर्थं शुभम् ।	१५-८०	बिम्बप्रतिष्ठा क्रम
१७.	उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते	१-४०-१	उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते इत्युक्तवोत्थापयेत् प्रभुम् ।	१५-७६	स्नपनोत्तर आराधन
१८.	ध्रुवाद्यौः	१०-१७३-४	ध्रुवाद्यौरिति मन्त्रेण प्रत्यनादेशिकोत्तमः	१५-१८ ६	बिम्बप्रतिष्ठा
१९.	भद्रं कर्णेति	१-८९-८	भद्रासने समारोप्य भद्रं कर्णे ति मन्त्रितम् ।	१५-६०	बिम्ब संस्कार नेत्रोन्मीलन
२०.	मधुवातेति	१-९०-६	पात्रे तु तैजसे क्षिप्त्वा मधुवातेति मन्त्रितम् ।	१५-६५	बिम्ब संस्कार नेत्रोन्मीलन
२१.	मनास्तोके	१-११४-८	शिरस्यामलकं दद्यात् मानस्तोक्याभिमन्त्रि- तम्	१५-७०	बिम्ब संस्कार नेत्रोन्मीलन
२२.	मूर्धानं दिव	६-७-१	मृदा वाम्नादयालिप्य मूर्धानं दिव इत्यृचा ।	१५-६३	बिम्ब संस्कार नेत्रोन्मीलन

२३.	विश्वतश्चक्षु	१०-८१-३	विश्वतश्चक्षुरि ति च चतुर्थेनाभिषेचयेत् ।	१५-६९	बिम्बसंस्कार नेत्रोन्मीलन
२४.	विश्वतश्चक्षु	१०-८१-३	विश्वतश्चक्षुरित्येवं सकलीकृत्यशाययेत् ॥	१५-८१	बिम्बसंस्कार शयनमण्डपप्रवे श
२५.	विश्वतश्चक्षु	१०-८१-३	पठेच्चैवाग्रतः पश्वा विदश्चक्षु रित्यापि ।	१५-१८ ७	बिम्बप्रतिष्ठास्न पन
२६.	हिरण्यगर्भ	१०-१२१-१	हिरण्यगर्भेति मन्त्रेण सौवर्णस्य शलाकया ॥	१५-६५	बिम्बसंस्कार नेत्रोन्मीलन
२७.	गन्धद्वाराम्	५-८७-९	तस्माद्भागेन शुद्धेन गन्धद्वारमिति ब्रुवन् ।	२-१०	अर्चक- नित्यक्रम
२८.	इदं विष्णुः	१-२२-१७	सेचयद्दक्षिणे सम्यक् इदं विष्णुरिति ब्रुवन् ।	२९-४	पुंसवन
२९.	इमं मे गङ्गे	१०-७५-५	अपनीय च तान् सर्वान् इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥	१३-४३	शिलासंग्रहण
३०.	तच्चक्षुः	७-६६-१६	दृष्टिमुद्धाय पक्षीरां तच्चक्षुरिति कीर्तयन् ॥	२९-११	भानुनिरीक्षण
३१.	तच्चक्षुः	७-६६-१६	तच्चक्षुरिति वै भानुकुमारस्य निरीक्षणम् ।	२९-११	भानुनिरीक्षण
३२.	विष्णुयोनिम्	१०-१८४-१	गच्छेत्प्रयङ्मुखो मन्त्रां विष्णुयोनिमिति चक्ष्य ।	२९-३-	पुंसवन
३३.	विष्णोः कर्माणि	१-२२-१९	विष्णोः कर्माणि मन्त्रेण गुरुरग्नेः समीपतः ॥	२९-१६	उपनयन

सात्वतसंहिता

सात्वत संहिता में अध्याय २४-२५ के उद्धरण यहाँ दृष्टव्य हैं-प्रतिष्ठाविधि में भगवत्प्रार्थना, स्नपनम्, ब्रह्मशिला होम, प्रासादप्रतिष्ठा, प्रतिष्ठावेदपाठ, प्रतिष्ठाआवाहन, द्वारन्यास, प्रासादप्रतिष्ठा मन्त्रबिम्बनिवेश आदि विनियोग विधि के समय ऋग्वेदीय मन्त्रों के माध्यम से चर्या की जाती है। सात्वत संहिता रत्नत्रय संहिताओं में से है, और इसकी दार्शनिक

पीठिका भी महत्त्वपूर्ण है। अतएव यहाँ पर उद्धरण मात्र उदाहरण के लिये दिये गये हैं—

सात्वत संहिता ऋग्वेदमन्त्रप्रतीक वर्णानुक्रम सूची -

क्र.	मन्त्र प्रतीक	मण्डल-सूक्त-मन्त्र	नारदीयसंहितौध्वरण	अध्याय श्लोक	विनियोग विषय
१.	उदुतगम!	१-२५-२१	उदुतमं हि ऋग्वेदान् पाठयेद् द्रविणं यजुः ॥	२५-१११	प्रतिष्ठा भगवत प्रार्थना
२.	(या)औषधयः इति	१०-१७-२२	या औषधयः इत्यादिऋग्वेदांस्तद त्रतरम् ॥	२५-१०९	प्रतिष्ठा स्नपनम्
३.	इदं विष्णुर्विचक्रमे	१-२२-१७	पवित्रमन्त्रं तदनु इदं विष्णुर्विचक्रमे ।	२५-११४	प्रतिष्ठा स्नपन
४.	अजस्य नाभौ	१०-८२-६-	अजस्य नाभौ इत्यादि मन्वैरैकायनैः ततः ॥	२५-१७०	प्रतिष्ठा ब्रह्मशिला होम
५.	अजस्य नाभाबध्येक	१०-८२-६	अजस्य नाभाबध्येकमन्त्रेणैक यनैस्ततः ॥		प्रसाद प्रतिष्ठा
६.	अतो देवेति	१-२२-१६	द्वासुपर्णेति तदनु अतो देवेति वै पुनः	२५-१५८	प्रतिष्ठा वेदपाठ
७.	अर्चामितेति	४-४-८	अर्चामितेति ऋग्वेदानर्चासाम च तद्विदः ।	२४-३४३	प्रसाद प्रतिष्ठा
८.	अर्चामितेति	४-४-८	अर्चाभिस्तेते वै मन्त्रं साम मच्चर्चितस्त्विति ।	२५-१२४	प्रतिष्ठा आवाहन
९.	आत्वा हार्षेति	१०-१७३-१	आत्वा हार्षेति सूक्तं तु प्रतिष्ठासामासामगान् ॥	२४-३३९	प्रसाद प्रतिष्ठा
१०.	चत्वारिभृङ्गा	४-५८-३	चत्वारिभृङ्गा इति यात्पाठयेद् यांस्ततः ।	२४-४०९	प्रसाद प्रतिष्ठाद्वा रन्यास
११.	द्वासुपर्णेति	१-१६४-२०	द्वासुपर्णेति तदनु एत	२५-१५८	प्रतिष्ठा

			देवेति वै पुनः ।		वेदपाठ
१०.	पवित्रं ते भद्रं (ते) भद्रं (नो) भद्रं (नो) भद्रं (भद्रं) --- भद्रं (मनः) भद्रं (वै)	९-८३-१ ४-११-१ १०-२०-१ १०-२५-१ ८-९३-२८ ८-१९-२० १०-१६८-२	अयं ते वरुणश्चेति पवित्रं ते ततो ऋचा । अयं ते वरुणश्चेति पवित्रं ते ततो ऋचा । अयं ते वरुणश्चेति पवित्रं ते ततो ऋचा । अयं ते वरुणश्चेति पवित्रं ते ततो ऋचा । अयं ते वरुणश्चेति पवित्रं ते ततो ऋचा । अयं ते वरुणश्चेति पवित्रं ते ततो ऋचा । अयं ते वरुणश्चेति पवित्रं ते ततो ऋचा ।	२५-११२	प्रतिष्ठा स्नपन
१२.	मा प्रगामेति	१०-५७-१	मा प्रगामेति ऋग्वेदान् आग्नेनायुर्यजुर्मयान् ॥	२५-११७	प्रतिष्ठा स्नपन
१३.	(यो) विश्वतश्चक्षु	१०-८१-३	यो विश्वतश्चक्षुरिति यातव्यो भवतीति च	२५-१५८	प्रतिष्ठा वेदपाठ
१४.	उत्तिष्ठेति	१-४०-१	उत्तिष्ठेति ऋचो मन्त्रं कृत्वा ब्रह्मरथैस्थिरै ।	२५-१३०	प्रतिष्ठा स्नपन
१५.	इदं विष्णुर्विचक्रमे	१-२२-१७	इदं विष्णुर्विचक्रमे इदं ऋचैः सह पाठयेत् ॥	२५-५३	मन्त्रबिम्ब निवेश

अहिर्बुध्न्य संहिता

अहिर्बुध्न्य संहिता में महाशान्तिक्लृप्तिग्वरण का उल्लेख विशेष रूप से किया गया है, और इस क्रम में ऋग्वेदीय मन्त्र अतोदेवेति, प्रतिव ए(ऐ)नेति मन्त्र के विनियोग का प्रयोग किया गया है। इस संहिता में अन्य संहिताओं की तरह चर्यापाद के विभिन्न पक्षों को प्रमुखता से नहीं लेने का

कारण यह है, कि पाञ्चरात्र परम्परा के दार्शनिक तत्त्वों को वैशिष्ट के साथ उल्लेखित किया है।

अहिर्बुध्न्य संहिता ऋग्वेदमन्त्रप्रतीक वर्णानुक्रम सूची

क्र.	मन्त्र प्रतीक	मण्डल-सूक्त-मन्त्र	अहिर्बुध्न्यसंहिताध्वरग	अध्याय श्लोक	विनियोग विषय
१	अते देवेति	१-१२-१६	अतो देवोति षडभिः प्रति व एनेतिवृणुयात्	४७(४२) २९--	महाशान्तिव ऋत्विग्वरण
२	प्रतिव ए(ऐ)नेति	१-१७१-१	प्रति व एनेति वृणुयात् स्वस्वनामभिः।	४४७-२९	महाशान्तिव ऋत्विग्वरण

ईश्वर संहिता

वैदिक-ऋचाओं की साक्ष्य में किये गये कर्मकाण्डीय धार्मिक क्रिया कलापों में, मन्दिर में और, देव-प्रतिमा के लिये किये गये प्रमुख विधानों को यहाँ प्रस्तुत किया गया है। अभिषेक-विधि, जिसमें स्नपन-उत्तम, मध्यम, अधमोत्तम-कलशस्नपनकी विधियाँ हैं। ईश्वरसंहिता में लगभग ५० बार स्नपन-विधि का उल्लेख है। १२वें और १५वें अध्याय में विस्तार से कलशस्नपन-विधि को व्याख्यायित किया गया है। इसी भाँति १०, १६, १८वें अध्याय में लगभग १७ बार बिम्ब-प्रतिष्ठा विधि का विवरण प्रमुखतः से मिलता है। जिसमें प्रमुख निम्नाङ्कित हैं-

भोज्यादिबिम्ब प्रतिष्ठा, ब्रह्मशिलाहोम, यात्राहोम, स्नपनकुम्भप्रतिष्ठा, प्रासाद-प्रतिष्ठा, बिम्ब-प्रतिष्ठा -चक्रसंस्थापन, बलिदान-प्रतिष्ठा आदि

प्रतिष्ठाविधियों को वैदिक - ऋचाओं के आधार पर सम्पन्न किया जाता है। इसी प्रकार से पुण्याह-वाचन, महोत्सव -भेरीताडन और स्थापनविधि का लगभग ६ बार १०, ११ वें अध्याय में विवरण मिलता है, और २१वें अध्याय में दीक्षासंस्कार एवं उर्ध्वपुण्ड्र का उल्लेख है। वैदिक (श्रीसूक्त-गन्धद्वारेति आदि शं नो देवीति, अग्न आ याहि, अर्चामिते इत्यादि)ऋचाओं का मन्त्रों का विधि-विधान के साथ देशिक, सहदेशिक

आचार्यों द्वारा सस्वर पाठ करते हुए मन्दिरों में देवार्चन सम्पन्न किया जाता था। यहाँ पर पाञ्चरात्र परम्परा का वैशिष्ट्य दृष्टिगोचर होता है, कि सहज रूप में वैदिक-परम्पराओं और वैदिक मन्त्रों के आधार पर ही सम्पूर्ण सर्पया विधान सम्पन्न होता था। ईश्वर संहिता के कतिपय निम्नाङ्कित उदाहरण यहाँ दर्शाये गये हैं।

ऋग्वेदमन्त्रप्रतीक वर्णानुक्रम सूची

क्र.		मण्डल-सूक्त-मन्त्र	ईश्वरसंहितौध्वरण	अध्याय श्लोक	विनियोग विषय
१	अग्न आयाहि	६-१६-१०	सावित्र्याक्षतेतोयेन अग्न आयाहि मन्त्रतः ।	१५-४४१	स्नपन
४.१	एतो देवेति	१-२२-१६	एतो देवेति मन्त्रेण मुस्ताकन्दादिसंयुतैः	१५-३५४	स्नपन
५.	अर्चाभिस्ते	४-४-८	अर्चाभिस्ते ति मन्त्रं वै सामगाश्च-र्तितस्त्विति ।	१८-२३६	बिम्ब प्रतिष्ठा स्नपन
७.२	आप्यायस्वेति		आप्यायस्वेति मन्त्रेण गोक्षीरेणा-भिषेचयेत् ॥	१५-१६६	स्नपन
८	इदं वचः पर्जन्यायेति	७-१०१-५	इदं वचः पर्जन्यायेति स्नापयेन्मध्यमेन तु ॥ -	१५-३६२	स्नपन
९.१	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	इदं विष्णुरित्येतेन मुद्गाद्यङ्कुरपूरितैः ।	१५-३५५	स्नपन
९.२	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	प्रथमं विष्णुगायत्र्या तथेदं विष्णुरित्र्युचा ॥	१०-६९	ध्वजारोह णस्नपन
१०	इन्द्राविष्णु दंहतेति	७-९९-५	इन्द्राविष्णु दंहतेति वह्निदिवसंस्थितेन च ॥	१५-३५९	स्नपन कुम्भ प्रतिष्ठा
११	इरावती	७-९९-३	इरावतीति मन्त्रेण	१५-३५४	स्नपन

	(धेनुमती) ति		तुलस्यादिजलैस्ततः ।		
१२	उत देवा अवहिता	१०-१३७-१	उत देवा अवहिता ऋ यान्पाठये- ततः ॥	१८-५५	मन्त्रबिम्ब निवेशन
१७	तदस्येति	१-१०३-५ १-१५४-५ २-३५-११	तदस्येति च मन्त्रेण पुष्पैरापूरितैर्घटैः ।	१५-३५१	स्नपन
१८	तद्विप्रास	१-२२-२१	तद्विप्रास इत्यनेन स्नापयेल्लोह- वारिभिः ।	१५-२५६	स्नपन
१९. २	तद् विष्णोरिति	१-२२-२०	तद्विष्णोरिति मन्त्रेण स्नापयो- दर्घ्यवारिणा ।	१५-१६४	स्नपन
१९. ३	तद् विष्णोरिति	१-२२-२०	तद्विष्णोरिति मन्त्रेण सुरम्यादिजलैस्ततः ।	१५-३५६	स्नपन
१९. ४	तद् विष्णोरिति	१-२२-२०	वैष्णव्याचापि गायत्र्या तद्विष्णोरिति वै ऋचा ॥	१५-३५६	दीक्षा संस्कार
२०.	तावाम् (नरा) (वास्तु) (अद्यनाव) (धियो) (गार्भिः) सम्यक् विश्वस्य अद्य इयानो- इषे इन्द्राग्नि	१-११८-१० १-१५४-६ १-१८४-१ ४-४१-८ ५-७०-२ ८-२५-१ ८-२६-३ ५-६५-३ ५-६६-३	तावामिति च मन्त्रेण सिद्धार्थादि समान्वितैः । तावामिति च मन्त्रेण सिद्धार्थादि समान्वितैः । तावामिति च मन्त्रेण सिद्धार्थादि समान्वितैः । तावामिति च मन्त्रेण सिद्धार्थादि समान्वितैः । तावामिति च मन्त्रेण सिद्धार्थादि समान्वितैः । तावामिति च मन्त्रेण सिद्धार्थादि समान्वितैः ।	१५-३५२	स्नपन

			तावामिति च मन्त्रेण सिद्धार्थादि समान्वितैः । तावामिति च मन्त्रेण सिद्धार्थादि समान्वितैः । तावामिति च मन्त्रेण सिद्धार्थादि समान्वितैः । तावामिति च मन्त्रेण सिद्धार्थादि समान्वितैः ।		
२१	तिस्रोवाच ईरयाति उदीरते प्रवद	९-९७-३३ ९-३३-४ ७-१०१-१	तिस्रोवाच इत्यनेन वारुणेन मुनीश्वराः ।	१३-३६० -	स्नपन
२३. २	त्रीणि पदेति त्वं विष्णुरिति	१-२२-१८ २-१-३	त्रीणि पदेति मन्त्रेण शङ्ख पुण्यादिवारिभिः ॥ त्वं विष्णुरिति मन्त्रेण स्नपनं तूष्णवारिणा ।	१५-३५५ १५-१६८	स्नपन स्नपन
२४.	दधिक्रावण दधिक्रावण (इषः) दधिक्रावण (इदु) क्रावण	४-३९-६ ४-३९-४ ४-४०-१	दधिक्रावण इत्यूचा सौम्याषट्केण तत्परम्	१५-३७५	स्नपन
२७.	पयस्वतीरोष धयः	१०-१७-१४	पयस्वतीरोषधयः इति षट्केण पश्चिमे ॥	१५-३७४	स्नपन
२८.	परौ मात्र (मृची) इति परौ मात्र (या) इति	१०-१७-१४ ८-६८-६	पयस्वतीरोषधयाः इति षट्केण पश्चिमे ॥ परौ मात्रेति मन्त्रेण षष्ट्यादिद्रव्या-	१५-३५३	स्नपन

			रिभिः ।		
२९. १	पवित्रं ते	९-८३-१	अयं ते वरुणश्चेति पवित्रं ते ततो ऋचम् ।	१८-२२४ -	बिम्ब प्रतिष्ठा स्नपन
२९. २	पवित्रं ते	९-८३-१	पवित्रं तेति मन्त्रेण प्र ते विष्णो इति त्वृचा	२१-२८९	दीक्षा संस्कार
२९. ३	पवित्रं ते	९-८३-१	पवित्रन्ते विततामिति मन्त्रान्यजुष्याम् ।	१८-५०८	बिम्ब प्रतिष्ठा चक्रसंस्था पन तै. आ. १-११-१
३०.	प्रतद्विष्णुरि ति	१-१५४-२	प्रतिद्विष्णुरित्यनेन मूलादभिरभिषेचये त् ।	१५-३५०	दीक्षा संस्कार
३०. १	प्रवः पान्तम् (अन्धसो) इति प्रवः पान्तम् (रघु) इति	१-१५५-१ १-१२२-१	प्रवः पान्तमिति अनेन तिलाद्यन्वित- वारिभिः ।	१५-३५२	स्नपन
३१.	फलिनीत्यादि	१०-९७-१५	फलिनीत्यादिमन्त्रेण -स्नापयेत्फलवारिणा ।	१५-१६८	स्नपन
३३. १	मधुवातादि	१-९०-६	मधुवातादिभिर्मन्त्रैः- कलशैर्मधुपूरितैः ।	१०-७१	महोत्सव पुण्याहवाच न
३३. ३	मधुवातेति	१-९०-६	मधुवातेति मन्त्रेण मधुनास्नपनं विभोः ।	१८-२०२	बिम्बप्रतिष् ठा
३४	मानस्तोकेति मा (म) अ गामोति	१-११४-८ १०-५७-१	शिरस्यामलकं दद्यान्मानस्तोकेति मन्त्रतः ।	१५ १८-२२९	बिम्बप्रतिष् ठा स्नपन प्रतिष्ठा
३५	मुञ्चन्तु मा शपथ्यादिति	१०-९७-१६	मुञ्चन्तु मा शपथ्यादिति वायु	१५-३७१ -	स्नपन

			दिङ्नवकेन तु ॥		
३७	यदि मा इति	१०-९७-११	यदि मा इति मन्त्रेण शाक्रेण नवकेन तु ।	१५-३६९	स्नपन
३८	यस्मिन्विश्वेन (विश्ववानि काव्या) (विश्ववानि भुवनानि,	८-४१-६ ७-१०१-४	ईशानदिक्स्थितैर्नैव यस्मिन् विश्वेन चैत्युचा ।	१५-३६२	स्नपन
३९.	यस्य त्रि (त्री) पूर्णति	१-१५४-४	यस्य त्रिपूर्णत्येतेन कलशैः पल्लवान्दितैः ।	१५-२५१	स्नपन
४०.	यस्यौषधीरि- ति	१०-९७-१२	यस्यौषधीरित्येतेन वह्निदिवसं स्थितेन तु ॥	१५-३७० -	स्नपन
४१.	या आपो दिव्या इति	७-४९-२	या आपो दिव्या इति मन्त्रेणवाभिषेचयेत्	१५-३६७	स्नपन
४२.	या औषधी सोमराज्ञी (बह्वी)	७-९४-१८	या औषधीः सोमराज्ञीर्विष्टिता इति मध्यतः ।	१५-३७२	स्नपन
४३	यासां राजेति	७-४९-३	नद्यम्भसा स्नापयित्वा यासां राजेत्युचा ततः ।	१५-३६७	स्नपन
४४	यासु राजेति	७-४९-४	यासु राजेति मन्त्रेण हिमतोयेन वै ततः ।	१५-३६८	स्नपन
४६	याः फलिनीरिति	१०-९७-१५	याः फलिनीरिति मन्त्रेण वारुण्यां नवकेन तु ॥	१५-३६१	स्नपन
४७	योवर्द्ध (न) औषधि	७-१०१-२	योवर्द्ध औषधिमन्त्रेण वायव्यनवकेन तु ।	१५-३६० -	स्नपन

४८	वषट् ते विष्णुवासेति	७-९९-७	वषट् ते विष्णुवासेति नैऋतेन ततः परम् ।	१५-३६०	स्नपन
५०.	विष्णोः	१-२२-१९	विष्णोः कर्माणीत्यनेन	१५-३५६	स्नपन

२	कर्माणीति		श्वेताकाद्यम्बुभि- स्ततः ।		
५०. ३	विष्णोः कर्मैति	१-२२-१९	विष्णोः कर्मैति मन्त्रेण स्नानं स्यात्पञ्चगव्यकैः	१५-१६५	स्नपन
५२	शतधारा (मुत्सम) इति शतधारा (मफ वायुम्) इति	३-२६-९ १०-१०७-४	शतधारेति मन्त्रेण स्नपनं गन्धवारिणा ।	१५-१७१	स्नपन
५३. १	शं नो देवेति	१०-९-४	शं नो देवेति मन्त्रेण स्नपनं मार्जनाम्बुभिः ।	१५-१६९	स्नपन
५४.	समुद्रज्येष्ठा इति	७-४९-१	समुद्रज्येष्ठा इत्यनेन पूर्वादिनवकेन तु ।	१५-३६६	स्नपन
५५	सम्यक्स्रवन्ति सरितः	४-५८-६	सम्यक्स्रवन्ति सरितस्सूक्तेनैवधृते न च ॥	१५-३७५	स्नपन
५६. १	सहस्रशीर्षेति	१०-९०-१	सहस्रशीर्षेत्यनया ऋ चैन्द्रीनवकैः घटैः ।	१२-३८२	स्नपन
५६. २	सहस्रशीर्षा पुरुषः इति	१०-९०-१	सहस्रशीर्षां पुरुष इति पञ्चमकुम्भतः ।	१२-६७	पनचर्विशि कलश- स्नपन
५७	सार्कं यक्ष्मेति	१०-९७-१३	सार्कं यक्ष्मेति याभ्येन अन्योवोइति नैर्ऋते ॥	१५-३७०	स्नपन

६०	गन्धद्वारेति	५-८७-९	गन्धद्वारेति मन्त्रेण स्नपनं यववारिणा	१५-१७०	स्नपनं
६१	गन्धद्वारेति	५-८७-९	गायत्र्या चैन्द्रषट्केण गन्धद्वारेति याभ्यतः	१५-३७४	स्नपन
६२	गन्धद्वारेति	५-८७-९	प्रणवेन तु विन्यस्य गन्धद्वारेति ता मृदम् ।	२१-२९५	उर्ध्वपुण्ड

१४	एदुत्तमम् औषध्य (धय) इति कदुद्रायति	१-२४-१५ १-२५-२१ १-४३-१	एदुत्तमं हि ऋग्वेदान्- पाठयेद्विपिं यजुः । औषधय इति मन्त्रेण कषायः स्नपनं भवेत् ॥ कदुद्रायति मन्त्रेण तृतीय ताडनं भवेत् ।	१८ १५ ११-३२	बिम्बप्रतिष्ठा स्नपन स्नपनम् महोत्सव भेरीताडनम्
२	अग्निमीलेति	१-१-१ ५-१५-५ १०-१०-२	बुल्लीष्वग्निं प्रतिष्ठाप्य अग्निमीलेति पाठयेत् ॥	१८-४४१	बिम्ब प्रतिष्ठा भोज्यादि
३.	अजस्य नाभौ	१०-८२-६	अजस्य नाभौ इत्यादि मन्त्रैरेकायनैस्ततः	१८-३२६	बिम्ब प्रतिष्ठा ब्रह्मशिला होम
४.२	एतो देवेति	१-२२-१६	द्वासुपर्णेति तदनु एतो देवेति वै ततः ।	१८-३००	बिम्ब प्रतिष्ठा यात्राहोम
४.३	अर्चाभिस्ते	४-४-८	अर्चामितेति ऋग्वेदान् अर्चासाम च तद्विदः ॥	१६-१९०	कुम्भ प्रतिष्ठान
६.१	आत्वाहार्षेति	१०-१७३-१	आत्वाहार्षेति सूक्तं तु प्रतिष्ठा साम समगान् ॥	१०-१७३	कुम्भ प्रतिष्ठान
६.२	आत्वाहार्षेति	१०-१७३-१	आत्वाहार्षेति सह वै प्रतिष्ठासीति पाठयेत् ।	१८-४२६	बिम्ब प्रतिष्ठा
९.३	इदं विष्णुर्विचक्रम इति	१-२२-१७	इदं विष्णुर्विचक्रम इति ऋ यै सह पाठकैः ॥	१८-६६-	विम्बं प्रतिष्ठास्न पन
१३	उत्तिष्ठे (ब्रह्मणस्पते) (नूनम्)	१-४०-१ ५-५६-५	पाठयेद् ऋ यं मन्त्रम् उत्तिष्ठेति ततः सह ॥	१८-२५२	बिम्ब प्रतिष्ठा
१५.	चत्वारिशृङ्गा	४-५८-३	चत्वारिशृङ्गा इति	१६-२६२	प्रसाद

	इति		यत् पाठये- द्वयास्ततः ॥	-	प्रतिष्ठा
१६-	चमूषच्छयेन इति	९-९६-१९	चमूषच्छयेन इति च प्रते विष्णोइति त्वृचौ ।	१५-५०६	बिम्ब प्रतिष्ठा चक्रसंस्था पन
५८	हिरण्यगर्भेति	१०-१२१-१	ऋग्विद्धिरण्यगर्भेति या देवा स्त्विवति वै क्रमात् ।	१५-४६३	बिम्ब प्रतिष्ठा बलिदान
६३	प्रतिष्ठासीति	३-८	आत्वा हार्षेति सह वै प्रतिष्ठासीति पाठयेत्	१८-८२५	बिम्ब प्रतिष्ठा
४९	(यो) विश्वतश्चक्षु- रिति	१०-८१-३	यो विश्वतश्चक्षुरिति ध्यात व्योभवतीति च ॥	१८-२९९	बिम्ब प्रतिष्ठा यात्राहोम
५१	विष्णोर्नुक- मिति	१-१५४-१	पूर्व विष्णोर्नुकमिति मन्त्रेण च मुनीश्वराः	१५-३४७ -	उद्धारक

२५.	द्वासुपर्णेति धन(न्व) नागेति	१-१६४-२० ६-७५-२	द्वासुपर्णेति तदनु एतो देवेति वै ततः ।	१८-३०० -	बिम्बप्रतिष्ठा यात्राहोम
७.१	आप्यायस्वेति	१-९१-१६- १७ ९-३१-४	दधिक्राविण्णमन्त्रेण आप्यायस्वेति मन्त्रतः ।	१०-७१	महोत्सव पुण्याहवाच न
१९. १-	तद्विष्णोरिति	१-२२-२०	तद्विष्णोरिति मन्त्रेण प्रथमं ताडनं भवेत् ।	११-३१-	महोत्सवभेरी ताडन
२२	त्रातारमत्वा इन्द्रम्	२-२३-८ ६-४७-११	त्रातारमिति मन्त्रेण मध्ये पद्मं च संलिखेत् ।	११-१०-	महोत्सवभेरी स्थपन
२३. १	त्रीणि पदेति	१-२२-१८	ततस्त्रीणि पदाद्येन विष्णोः कर्माणि मन्त्रतः ।	१०-७०-	महोत्सवभेरी स्थपन
२६.	न(अ) तै	७-९९-२	न ते विष्णोरित्यनेन	१५-३५३	स्नपन

	विष्णोरिति		कुशमूलान्विता- म्बुभिः ॥		
३३. २	मधुवातेति	१-९०-६	मधुवातेति मन्त्रेण ततः शुक्रमसीत्यृचा ।	१५-१६८	स्नापन
३६	मूर्धानमिति	६-७-१	मूर्धानमिति मन्त्रेण नमस्कुयादभुवं ततः ।	११-११-	महोत्सव येरीस्थाप ना
५०. १	विष्णोः कर्माणि	१-२२-१९	ततस्त्रीणि पदाद्येन विष्णोः कर्माणि मन्त्रतः ।	१०-७०	महोत्सव पुण्याहवाच न
५३. २	शं नो देवेति	१०-९-४	शं नो देवेति मन्त्रेण शतपत्रं चतुर्दिशि ।	११-१०	महोत्सवभेरी स्थापन
५९	गन्धद्वारेति	५-८७-९	गन्धद्वारेति मन्त्रेण गोमयेनानुलेपयेत् ।	११-८	महोत्सवभेरी स्थापन

पारमेश्वर संहिता

पारमेश्वर संहिता में लगभग ५१ बार अभिषेक-विधि के अन्तर्गत, एकाशीति कलशस्नपनविधि, स्नपनविधि का १४वें अध्याय में विस्तार से वर्णन है। इसीक्रम में १५वें अध्याय में लगभग १९बार प्रतिष्ठाविधि, प्रतिष्ठाचक्र संस्थापन, आदि सर्पया विधि का वैदिक मन्त्र अनुष्ठान के साथ विवरण है। १४ वें अध्याय में वेद मन्त्रों द्वारा कलशपूजा का भी विधान है। चौथें और २२ वें अध्याय में पाक विधि भी वैदिक ऋचाओं के सस्वर पाठ के साथ सम्पन्न की जाती है। १८वें अध्याय में परमार्थ साधन के लिए भी वैदिक मन्त्रों का प्रयोग किया गया है। इसी क्रम में तीर्थ-यात्रा का विवेचन करते हुए १७ वें अध्याय में भी वैदिक स्वस्तिवाचन को महत्ता से प्रतिपादित किया है। इस तरह पारमेश्वर संहिता में ऋग्वेद के मन्त्रों का स्थान-स्थान पर कर्म-काण्ड की दृष्टि से सहज प्रयोग किया गया है। गन्धद्वारेति, अग्न आयाहि वीतये, अग्निमीले, अतो देवेति, अन्यावो इति, इदं वचः पर्जन्यायेति, इदं विष्णुरिति आदि मन्त्रों को निम्नाङ्कित सारणी में सपर्याक्रम में आने वाले विधान के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है।

पारमेश्वर संहिता ऋग्वेदमन्त्रप्रतीक वर्णानुक्रम सूची

क्र.	मन्त्र प्रतीक	मण्डल-सूक्त-मन्त्र	पारमेश्वरसंहिताध्वरण	अध्याय श्लोक	विनियोग विषय
१	गन्धद्वारेति	५-८७-९	गायत्र्या चैन्द्रषट्केन गन्धद्वारेति याभ्यतः ।	१४-४८२	एकाशीति कलश स्नपन
१.	अग्न आयाहि वीतये	६-१६-१०	अग्न आयाहि वीतये इति रत्नोदकं ततः ।	१४-२५५	स्नपन
२.	अग्निमीले	१-१-१ ५-१४-५ १०-१०-२	इषे त्वा इति च लोहामभस्तु अग्निमीले कुशोदकम् ॥	१४-२५५ -	स्नपन
३.	अतो देवेति	१-२२-१६	अतोदेवेति मन्त्रेण युक्ता कन्वादिसंयुतैः ।	१४-४७३	कलश स्नपन
४.	अन्यावो इति	१०-९७-१४	साकं यक्षमेति याभ्येन अन्यावो इति नैर्ऋते ।	१४-४७९	एकाशीति कलश स्नपन
८	इदं वचः पर्जन्यायेति	७-१०१-५	इदं वचः पर्जन्यायेति स्नापयेन्मध्यमेन तु ।	१४-४७१ -	एकाशीति कलश स्नपन
९.१	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	ऋग्भिः पुरुषसूक्तस्य तथेदं विष्णुरित्युक्ता ॥	१४-१६७	स्नपन
९.२	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	इदं विष्णुरित्यनेन मुद्गाद्यङ्कुरपूरितैः ॥	१४-४६३	कलश स्नपन
९.५	इदं विष्णुवाख्य	१-२२-१७	इदं विष्णुवाख्यतः याद्यमर्घ्यमापो वहन्तिवति ।	१४-२५०	स्नपन
११	इरावती (धेनुमती)	७-९९-३	इरावतीति मन्त्रेण तुलस्या विजलैस्तथा	१५-४६२	एकाशीति कलश स्नपन
१२	उत देवा अवहिता	१०-१३७-१	उतदेवा अवहिता ऋ यान्याउयेततः ॥	१५-१७६	त्रिस्थान क्रमयोग
१७.	किमित इति	७-१००-६	किमित मन्त्रेण दधात्सक्तूदकं ततः ।	१४-२५४ -	स्नपन
१८	गणनामति	२-२३-१	गणनामति	१४-२५४	स्नपन

			मन्त्रेणद्याच्चैव फलोदकम् ।		
२१	तदस्येति	१-१०२-५ १-१५४-५ २-३५-११	तदस्येति च मन्त्रेण पुष्पैदापूरितैघटैः ।	१४-४६०	कलश स्नपन
२२	तद्विप्रास	१-२२-२१	तद्विप्रास इत्यनेन स्नापयेल्लोहवारिभिः ।	१४-४६५	कलश स्नपन
२३.	तद्विष्णोरिति	१-२६-२०-	तद्विष्णोदिति मन्त्रेण सुरम्या विजलैस्ततः ।	१४-४६५	कलश स्नपन
२४.	तावामिति जरा वास्तु अधनाव सम्यक् विश्वस्य अयं इयानो एष इन्द्राग्निः एष उर्वामित्रा वरुणौ	१-११८-१० १-१५४-६ १-१८४-१ ४-४१-८ ५-७०-२ ७-९४-६ ८-२५-१ ८-२६-३ ५-६५-२ ५-६६-३ १०-१३२-२ ---	तावामिति च मन्त्रेण सिद्धिार्थादिसमन्वितैः ।	१४-४६०	कलश स्नपन
२५.	तिस्त्रौ वाच ब्रवद ईरयाति उदारते	७-१०१-१ ९-९७-४ ९-३३-४	तिस्त्रौ वाच इत्यनेन वारुणेन महामते ।	१४-४६९	एकारीति कलश स्नपन
२६	त्रीणि पदे त्वं विष्णुरिति	१-२२-१८ २-१-३ २-१-३	त्रीणि पदेति मन्त्रेण शङ्खपुष्पादिवारिभिः त्वं विष्णुरिति मन्त्रेण दद्यात् परिमार्जनम् विष्णोर्नुकमिति द्विज ।	१४-२५४	कलश स्नपन
२७.	दधिक्रा	७-४४-१	दधिक्रा इति मन्त्रेण दधि दधाततः परम् ।	१४-२५१	स्नपन
२८. १	दधिक्रावण	४-३९-४ ४-४०-१	दधिक्रावण इत्युवा सौम्यषट्केन तत्परम् ।	१४-४८३	एकारीति कलशस्न पन

३०.	न ते विष्णो	७-९९-२	न ते विष्णोरित्यनेन कुशमूलान्वितवारिभिः ।	१४-४६२	कलशस्न पन
३२.	पयस्वतीरोष धय	७-१७-१४	पयस्वतीरोषधय इति षट्केन पश्चिमे ।	१४-४८३	एकाशीति कलशस्न पन
३३.	परोमाम मात्र (मृची) इति	८-६८-६	परो मात्रेति मन्त्रेण षष्ट्यादि द्रव्यवारिभिः ।	१४-४६१	कलशस्न पन
३५	प्रतद्विष्णुरि त	१-१५४-२	प्रतद्विष्णुरित्यनेन मूलादमिषेच्येत् ।	१४-४५८	कलशस्न पन
३६	प्रवः पान्तम् (अन्ध सो) इति	१-१५५-१	प्रवः पान्तमित्येतेन तिलाद्यन्वितवारिभिः ।	१४-४६१	कलशस्न पन
३८. १	मधुवातादि	१-९०-६	मधुवातादिमिमन्त्रेः कलशैर्मधुपूरितै वै मधु	१४-४८१	एकाशीति कलशस्न पन
३८. २	मधुवातेति	१-९०-६	क्षीरमाप्याययस्व इति मधुवातेति वै मधु ॥	१४-२५२	स्नपन
३९. १	मानस्तोकेति	१-११४-८	शिरस्यामलकं दशांन्मानस्तोकेति मन्त्रतः ।	१४-४८९	एकाशीति कलशस्न पन
३९. २	मानस्तोकेति	१-११४-८	अष्टौ गन्धोदकादीनि मानसोवया निवेद्येत ।	१४-२५७	स्नपन
४१.	मुञ्चतु (न्तु) मा शपथया(थ्या) दिति	१०-९७-१६	मुञ्चतु शपथयादिति वायुदिङ्नवकेन तु ।	१४-४८०	एकाशीति कलशस्न पन
४२.	यदि मा इति	१०-९७-११	यदि मा इति मन्त्रेण शाक्रेण नवकेन तु ।	१४-४७८	एकाशीति लकश स्नपन
४३	यस्मिन् विश्वेति	८-९२-२०	ईशानदिक्स्थितैवैन यस्मिन् विश्वेति चेत्युचा ।	१४-४७०	एकाशीति लकश स स्नपन
४४	यस्य(त्रि)पूर्ण ति	१-१५४-४	यस्य त्रिपूर्णित्येतेन कलशैः पल्लवान्वितैः ।	१४-४५९	कलश स्नपन
४५	यस्यौषधिरि	१०-१५४-४	यास्यौषधिरित्येतैन	१४-४७८	एकाशीति

	ति		वहतनदिकसंस्थितेन तु ।		कशस्नपन
४६	या आपो दिव्या इति	७-४९-२	या आपो दिव्या इति मन्त्रेणैवा विषेच्येत् ।	१४-४७५	एकाशीति कशस्नपन
४७	या ओषधीस्सोम राज्ञी (२) विष्टिता	१०-९७-१९	या ओषधीसोमराज्ञी विष्टिता इति मध्यतः ।	१४-४८१	एकाशीति कशस्नपन
४८	यासां राजेति	७-४९-३	नद्यन्मसा स्नापयीत यासां राजेत्युचा ततः ।	१४-४७६	एकाशीति कशस्नपन
४९	यासु राजेति	७-४९-४	यासु राजेति मन्त्रेण हिमतोयेन वै ततः ।	१४-४७९	एकाशीति कशस्नपन
५०	याः फलिनीति	७-९७-१५	याः फलिनीति मन्त्रेण वारुण्यां नवकेन तु ।	१४-४७९	एकाशीति कशस्नपन
५१	योवर्ध(न) औषधि	७-१०१-२	गोवर्धऔषधिमन्त्रेण वायव्यनवकेन तु ।	१४-४६९	एकाशीति कशस्नपन
५३	वषट् ते विष्णु वासेति	७-९९-७ ७-१००-७	वषट् ते विष्णुवासेति नैर्ऋतेन ततः परम् ।	१४-४६८	एकाशीति कशस्नपन
५५-	विष्णोः कर्माणि इति	१-२२-१९		१४-४६४	कलशस्नपन
५६. १	विष्णोर्नृकमिति	१-१५४-१		१४-१६८	स्नपन
५८.	शं नो देवीरिति	विष्णोः कर्माणित्यनेन मन्त्रेण शङ्खपुष्पादिवारिभिः ।	शं नो देवीरित्यनेन दद्याद्वैमार्जनं ततः ।	१४-२५३	स्नपन
५९.	सदासस्यतिम्	त्वं विष्णुरिति मन्त्रेण- विष्णोर्नृकमिति द्विज ।	ततः कषायतोयं तु सदसस्पतिमित्युचा ।	१४-२५३	स्नपन
६०	समुद्रज्येष्ठा इति	७-४९-१	समुद्रज्येष्ठा इत्यनेन मूर्धोदिनवकेन तु ।	१४-४७४	एकाशीति कलशस्नपन
६१	सम्यक्	४-५८-६	सम्यक् श्रवन्ति सरितः	१४-४८४	एकाशीति

	श्रवन्ति सरितः		सूक्तेनैव धृतेन च ।		कलशस्न पन
६२	सहस्रशीर्षेति	१०-९०-१	सहस्रशीर्षेत्यानया चैन्द्रनवकैर्घटेः ।	१४-४९१	ऐकाशीति कलशस्न पन
६३	साकं यक्षमेति	१०-९७-१३	साकं यक्षमेति यन्येन अन्यायनैर्ऋते ।	१४-४७९	ऐकाशीति कलशस्न पन
६४	स्तरीर(रु)त्व दभवतीति	७-१०१-३	स्तरीरत्वदभवतीति सौम्येन नवकेन तु ।	१४-४७० ७०	ऐकाशीति कलशस्न पन
६५	आत्वा हाषेति आपो अस्मानिति	१०-१७३-१ १०-१७-१०	आत्वा हाषेति सह वै प्रतिष्ठासीति पाठयेत् । दद्याच्छुद्धोदकादीन्यथ टावापो अस्मानिति क्रमात् ॥	१५	प्रतिष्ठा स्नपन
९३	इदं विष्णुर्विचक्रमे	१-२२-१७	इदं विष्णुर्विचक्रम इति ऋ यैः सहपाठकैः ।	१५-१८७	प्रतिष्ठा
९४	इदं विष्णुर्विचक्रमे	१-२२-१७	पवित्रमन्त्रं तदनु इदं विष्णुर्विचक्रमे ॥	१५-३४९	प्रतिष्ठा
१०	इन्द्रविष्णु दंहितेति इयं मनीषा इयम् इयं मनीषा (बृहता)	७-९९-५ ७-७०-०१- ७-६	इन्द्राविष्णू दंहितेते वहिनादिवसंस्थितेन च ॥ इयं मनीषेकैति याभ्येन नवकनाभिषेचयेत् ।	१४	ऐकाशीति कलशस्न पन
१३	उतिष्ठेति-	१-४०-१ ५-५६-५	पाठयेद् यं मन्त्रं उतिष्ठेति ततः सह ॥	१५-३७५	प्रतिष्ठा
१५	उसयताय इति	७-९९-४-	ऐन्द्रैण नवकेनादौ उरुयज्ञाय इत्यृचा ।	१४-४६७	ऐकाशीति कलशस्न पन
१६	या औषधय इति औषधी सोमराइति	१०-९७-२२	या औषधय इत्यादि ऋग्वेदास्नपनन्तरम् ।	१५-३४४	प्रतिष्ठा नैत्रर्चाहुन
१९	चमूषच्छयेन	९-९६-१९	चमूषच्छयेन इति च प्रविष्णो इति त्वृचौ ।	१५-५८०	प्रतिष्ठा चक्रसंस्था

					पन
२०	जीमूतस्येति	६-७५-१	जीमूतस्येति ऋग्वेदान् नासदासीति पाठयेद् ॥	१५-४१२	प्रतिष्ठा
२९.	द्वा सुपर्णेति	१-१६४-२०	द्वा सुपर्णेति तदनु एतो देवेति वैततः ॥	१५-४२४	प्रतिष्ठा
३१.	नासदासीति	१०-१२९-१	जीमूतस्येति ऋग्वेदान् नासदासीति पाठयेत् ।	१५-४१२	प्रतिष्ठा
३४.	पवित्रं ते	९-८३-१	अयं ते वरुणश्चेति पवित्रं ते ततो ऋचम् ।	१५-३४७	प्रतिष्ठा
३७.	प्र विष्णा (ष्णवे) इति	१-१५४-३	चमूषच्छयेन इति च प्रविष्णो इति त्वृचौ	१५-९८०	प्रतिष्ठा चक्रस्थाप न
४०.	मा प्र गामेति	१०-५७-१	मा प्र गामेति ऋग्वेदान् अग्ने नायुर्जुर्मयान् ।	१५-३५२	प्रतिष्ठा
	पवित्रन्ते विततमिति	९-८३-१	पवित्रं ते विततमित्येतान् मन्यान्यजुर्मयान् ।	१५-९८१ -	बिम्बप्रतिष्ठा चक्र संस्थापन म्
५२	रक्षोहणम्	१०-८७-१	रक्षोहणं तथा सर्वान् नयेत् प्रतिसरे मथीन् ।	१५-१८३	प्रतिष्ठा
५४	(यो) विश्वतश्चुरिति	१०-८१-३	यो विश्वतश्चुरिति यात्ब्यो मवतीति च ।	१५-४२४	प्रतिष्ठा
६५	हिरण्यगर्भेति	१०-१२१-१	ऋग्विद् हिरण्यगर्भेति या देवास्त्विति वै क्रमात् ।	१५-८७८	प्रतिष्ठा बलिदान
१४.	उदुतमम्	१-२४-१५ १-२५-२१	उदुतामं हि ऋग्वेदान् पाठयेद्द्रविणं यजुः ।	१५-३४६	प्रतिष्ठा
२.	गन्धद्वारेति	४-८७-९	गोमूत्रं विष्णुगायत्र्या गन्धद्वारेति गोमयम् ।	२२-५९	पाकविधि
७.२	त्राप्यायस्वेति	१-९१-१६- १७	आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्रावणोति वै दधि ।	२२-६०	पाकविधि
२८. २	दधिक्रावणो ति	४-३९-४ ४-४०-१	आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्रावणोति वै दधि	२२-६०	पाकविधि
५६.	विष्णोर्नुक-	१-१५४-१	त्वं विष्णोर्नुकमिति	१४-४५४	कलशपूजा

२	मिति		मन्त्रेण च महामते ।		
५.	अव्जा गो जेति	४-४०-५	अव्जा गो जेति तत्क्षेमः स्यादगव्य प्रतियोजने ॥	१८-२०२	परमार्थसा धन
५७.	शतधारण (मुत्सम) इति (मवायुम) इति	३-२६-९ १०-१०७-४	पवित्रेण समभ्युक्ष्य शतधारेण पूर्ववत् ।	१८-३७६	परमार्थ साधन
	भद्रं कर्णे (कर्णे भद्रं) इति	१-८९-८	पादे सुमङ्गलं चेति कर्णे भद्रमिति द्विज ।	१७-३७४	तीर्थयात्रा
	सुमङ्गलं च (लीः) इति	१०-८७-३३	पादे सुमङ्गलचेति कर्णे भद्रमिति द्विज ।	१७-३७४ -	तीर्थयात्रा

विश्वमित्र संहिता

विश्वमित्र संहिता के १९-२० अध्यायों में अभिषेक विधि में सहस्त्रकलशस्नपन, स्नानासन, स्नपन आदि के प्रसङ्गों में लगभग ३० बार वैदिक ऋचाओं का पाठ किया गया है। जिनमें प्रमुख है-गन्धद्वारेति, हिरण्यवर्णाम्, आप्यायस्व, न ते विष्णोरिति, प्रतद् विष्णुइति, तद् विष्णोरिति, भद्रं कर्णेभिरिति, युंवायुवासां, विष्णोः कर्मेति, शं नो देवी रिति, वेदाऽहम् आदि ऋग्वेद की पवित्र ऋचाओं से मन्त्रानुष्ठानपूर्वक, अभिषेक विधि में स्नपन, सपर्या संपन्न की जाती हैं। इसी भाँति वैदिक मन्त्रोच्चारण के द्वारा नित्याराधन क्रम का दसवें अध्याय में भी लगभग १५ बार उल्लेख है। जिसमें इसी क्रम में पवित्रारोपण, हविःपाक, उत्सव पूर्वक कर्म और पूर्णाहुति भी वैदिक विधि से वैदिक ऋचाओं के आधार पर सम्पन्न करायी जाती है। अन्य संहिताओं की भाँति विश्वमित्र संहिता में भी वैदिक मन्त्र का प्रतिमा के सपर्या क्रम में सभी प्रमुख संस्कारों में वैदिक मन्त्रों का पाठ करते हुए वैदिक विधि विधान के साथ कर्म काण्डीय व्यवस्था सम्पन्न की जाती है।

विश्वमित्र संहिता ऋग्वेदमन्त्रप्रतीक वर्णानुक्रम सूची

क्र.	मन्त्र प्रतीक	मण्डल-सूक्त-मन्त्र	विश्वमित्रसंहितौ ध्वरण	अध्याय श्लोक	विनियोग विषय
		६-४-७	तन्तुमिर्मन्त्रमुच्याय इन्द्रं नत्वेति पूर्वकम्	१९-३०	स्नपन
		७-९९-३	इरावतीति मन्त्रेण पादयेरक्षतं क्षिपेन्	१०-१५५	नित्याराधन
		१-४०-१ ५-५६-५	उचिष्टेति पठन् मन्त्रमुत्थप्यशयनाच्छु मात्	१८-९४	उत्सवपूर्व कर्म
		१-४०-१ ५-५६-५	देवमुत्थाप्य ऋग्मिश्च गुरुरुत्तिष्ठ मन्त्रतः	१९-४७	स्नपन
५.५	इदं विष्णुरिति				
१	गन्धद्वारेति	५-८७-९	महाव्याहृतिभिलेहं गन्धद्वारेति गन्धकम्।	१९-६२	स्नपन
२	गन्धद्वारेति	५-८७-९	गन्धद्वारेति गृहणीयादाप्यायस्वेति वै पयः।	१९-१०१	स्नपन
	गन्धद्वारेति	५-८७-९	गन्धवार्यभिषेकः स्याद्गन्धद्वारेति मन्त्रतः।	२०-४३	सहस्रस्नपन
४	आप्यायस्व	१-९१-१६- १७ ९-३१-४	गन्धद्वारेति गृहणीयाद् आप्यायस्वेति वै पयः।	१९-१०१	स्नपन
	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	इदं विष्णुरिति प्रोच्य यद्वाष्टार्णेन वा पुनः	१९-६४	स्नपन
६	इन्द्रं नत्वा	१-४०-१ ५-५६-५	इत्थं विताप्य देवेशमुक्तवत्- यादिकं मनुम्	१४-१६३	प्रतिष्ठा
८.२	उत्तिष्ठ		सर्वोषधि घटस्नानमोषध्य इति मन्त्रतः	१९-१३६	स्नपनम्

			ओषधय इति मन्त्रेण त्वं विष्णुरिति चोष्णकैः	२०-४०-	सहस्र- कलशस्नप नम्
१३.	त्रातारत्वा इन्द्र	२-२३-८ ६-४७-११	रत्नाम्भसा च स्नपनं त्रातारमिति मन्त्रतः	१९-६२	स्नपन
१५. २	न ते विष्णो रिति	७-९९-२	न ते विष्णोरिति पुनः स्नात्वा चाच मानम्भसा	१९-५७	स्नपन
१५. ३	न ते विष्णो रिति	७-९९-२	प्रदत् विष्णु इति मन्त्रेण न ते विष्णो इति प्रभुम्	२०-३७	सहस्रकल शस्नपन
१६	प्रदत् विष्णु इति	१-१५४-२	प्रदत् विष्णु इति मन्त्रेण न ते विष्णो रिति प्रभुम्	२०-३७	सहस्रकल शस्नपन
१७. १	फलिनीति	१०-९७-१५	फलवार्यभिषेकं च फलिनीत्यनुवाकतः	२०-४०-	स्नपन
१७. २	फलिनीति	१०-९७-१५	फलम्भस्नपनं कुर्यात्फलिनीत्यनु- वाकतः	२०-४०-	स्नपन
१८. १	भद्रं कर्णेति	१-८९-८	भद्रं कर्णेति वाहनान्य धिरोपयेत् ।	१८-९९-	उत्सवपूर्व कर्म
१८. २	भद्रं कर्णेभि- रिति	१-८९-८	भद्रं कर्णेभिरिति च वेदिकायां निवेशयेत् ।	१०-१३८	स्नानासन
	तद्विष्णोरिति	१-२२-२०	तद्विष्णोरिति मन्त्रेण स्नापयेदध्ववारिणा ।	१९-५६	स्नपनम्
	तद्विष्णोरिति	१-२२-२०	उष्णाम्बुस्नपनं कुर्यात् तद्विष्णोरिति मन्त्रतः ।	१९-५६	स्नपनम्
२०	मधुमात्रो	१-९०-८	नरिकेलजलस्नानं मधुमानिति मन्त्रतः ।	१२-१२१	स्नपन
२१. १	मधुवातेति	१-९०-६	मधुवातेति मधुना कषायस्नपनं पुनः ।	१९-५९	स्नपन
२२	मूर्धानं दिव इति	६-७-१	केशानगरुजैर्धूपैर्मूर्धा नं दिव इत्युच्चा ।	१०-१५३ -	नित्याराधन
	या औषधी (सोमराज्ञर्बिह	१०-९७-१ १०-९७-१८	मन्त्रेण या ओषधीभिर्मूलकुम्भाभि	१९-१३७	नित्याराधन

	वी) या औषधी (सोमराजर्विधि उता)	१०-९७-१९	षेचनम् ।		
२४	युवासुवासा	३-८-४	युवायुवासा इत्याद्या ऋचामुक्त्वाम्बरैः क्रमात् ।	१९-४५	स्नपन
२७. २	विष्णोर्नुकमि ति	१-१५४-१	मङ्गलम्भो घटस्नानं विष्णोर्नुकमिति द्विज ।	१९-१३६	स्नपन
२८. १	शतधारा (मुत्सन) इति शतधारा (म् वायुम) इति	३-२६-९ १०-१०७-४	युवाम्भसा च मन्त्रेण शतधारेति कल्पयेत् ।-	१९-६३-	स्नपन
२८. २	शतधारा (मुत्सन) इति शतधारा (म् वायुम) इति	३-२६-९ १०-१०७-४	मन्त्रेण शतधारेण यवाद्वार्यभिषेचनम् ।	२०-४३	सहस्रस्नपन
२९. १	शं नो देवीरिति	१०-९-४	स्नापयेन्मार्जनजलं शं नो देवीरिति क्रुवन् !	१९-६१-	स्नपन
२९. २	शं नो देवीरिति	१०-९-४	मार्जनाम्भेभिषेकः स्याच्छं नो देवीरिति द्विज	२०-४१	सहस्रस्नपन
३१.	वेदाहम्	२-१४-१०	शान्तिद्रव्यघटस्नानं वेदाहमिति कारयेत् ।-	१९-१२२	स्नपनम्
२६. १	विष्णोः कर्मेति	१-२२-१९	स्नपनं पंचगव्येन विष्णोः कर्मेति मन्त्रतः ।	१९-५७	नित्याराध न स्नपन
२	अतो देवेति	१-२२-१६-	प्रदक्षिणं परिग्राम्य वेदघोषादिभिः सह ।	१४-१६५	प्रतिष्ठा
५.६	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	जपन्नित्यं विष्णुरिति मन्त्रं मङ्गलसंयुतम्	२४-७२	पवित्रारोपण
८.१	उत्तिष्ठ	१०-९७-२२	औषध्य इति मन्त्रेण विद्यीत महामुने	१९-५९	स्नपनम्
३०	हंसः शुचिपद्	४-४०-५	हंसं शुचियादेत्यत्र	२५-११०	हविः पाक

			गोक्षीरस्य निषेचनम् ।	-	
५.३	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	पूर्णाहुति षडदभिः शाकुनं सूक्तं सवेदं विष्णुरित्युचम् ।	१८-४१	पूर्णाहुति
५.४	इदं विष्णुः	१-२२-१७	पूर्णाहुतिरिदं विष्णुरिति प्रोच्य समाचरेत् ।	१८-८४	पूर्णाहुति
५.७	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	विष्णुगायत्रिया यद्वा तथेदं विष्णुरित्यापि	२४-८५	पूर्णाहुति
१	अग्नि(र)- मूर्धेति	८-४४-१६	अग्निमूर्धेति मन्त्रेण प्लोतेनाङ्गानि अर्ह (मार्ज) येत् ।	१०-१५०	नित्याराधनम्
३.१	आपोहि ष्टेति	१०-९-१	आपो हि ष्टेति मन्त्राणमुच्चारणपुरस् सरम् ।	१०-१४	नित्याराधन
३.२	आपो हिष्टा	१०-९-१	संक्षालनगन्धतोयैरोपो हिष्टा दि मुच्चरेत् ।	१०-१४५	नित्याराधन
३.३	आपो हिष्टा	१०-९-१	आपो हि ष्टादिभिर्म पवित्रमुनुनापि च	१४-८७	नित्याराधन
५.१	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	इदं विष्णुरिति द्वाभ्याम् ऋभ्याम् आरोपयेतयोः ।	१०-१३७	नित्याराधन
५.२	इदं विष्णुम्	१-२२-१७	इदं विष्णु पठन मन्त्रं विलिप्य विरलं तनौ ।	१०-१५४	नित्याराधन
७	इरावती (धेनुमती) ति	१-४०-१	उतिष्ठ ब्रह्मण इति प्रापयेत् स्नानवेदिकाम्	१०-१३७	नित्याराधन
१०.	कयानश्चित्र आभुवत्	४-३१-१	ब्रह्म जिज्ञासमिति च कया नश्चित्र आभुवत् इत्येवमर्घ्यपाद्यायैर्यजे वाद्यं महेश्वरं ॥	१०-१४८	नित्याराधन
११	तद्विप्रास	१-२२-२१	जिह्वा निलेहनं दद्यात् तद्विप्रास इति प्रभोः	१०-१४१	नित्याराधन
१२. १	तद्विष्णोरिति	१-२२-२०	दन्तधावनकं दद्यात्तद्विप्रेरिति विष्णवे	१०-१४१	नित्याराधन
१२.	तद्विष्णोरिति	१-२२-२०	तद्विष्णोरिति मन्त्रेण	१०-१५६	नित्याराधन

२			विष्णुगायत्रियाञ्जनम्		
१४.	त्रीण पदेति	१-२२-१८-	विष्णुगायत्रियाङ्गं स्यात्पाद्यं विष्णु(त्रीणि) पदेति च	१०-१३८	नित्याराधन
१५. १	न ते विष्णोरिति	७-९९-२	न तो विष्णो इति ददेत् शुद्धामलकवारि च	१०-१४५	नित्याराधन
१९.	मधुनक्तम्	१-९०-७	मधुनक्तोतिमन्त्रेण स्नानं चक्षुदसेन वै ।	१९-१२	नित्याराधन
२५	विश्वे	८-१००-६ १०-३५-१३	एषामुपरि विश्वेन विकिरेदधतानपि ।	१९-३४	नित्याराधन वस्त्रच्छादन
२७. १	विष्णोर्नुक- मिति	१-१५४-१	माषचूर्णेन च ततो विष्णोर्नुकमिति प्रभोः ।	१०-१४४	नित्याराधन
२३	या औषधी (पूर्वा)	१०-९७-१	मन्त्रेण या औषधीभिर्मूलकुम्भभि षेचनम् ।	१९-१३७	नित्याराधन

पाद्मसंहिता

पाद्म संहिता अपने वैशिष्ट के लिये विख्यात है। यह वृहद् भी है। पाद्म संहिता के चतुर्थ पाद में चर्या क्रम प्रतिपादित किया गया है। जिसमें अभिषेक विधि के अतर्गत नृपाभिषेक, महाभिषेक, सहस्रकलश स्नपन, उत्तम, मध्यम, अधम, स्नपन संस्कार, सहस्रकलश स्नपन, प्रतिष्ठा स्नपन, वातुपूजा स्नपन, स्नपन मन्त्र, स्नपन द्रव्य, इत्यादि का लगभग ७५ बार प्रयोग किया गया है। इन संस्कारों के वर्णन में प्रत्येक क्रम में वैदिक मन्त्रानुष्ठान, का आधार लिया गया है। यहाँ पर पाद्म संहिता के वर्णानुक्रम में उक्त उद्धरणों को देखा जा सकता है।

इस तरह से पाद्म संहिता में अभिषेक विधि का विधिवत् वर्णन विभववादि देवों के लिये, नित्य बेर, उत्सव बेर, मूल बेर, आदि के लिये स्नपन प्रक्रिया को सम्पन्न कराया जाता है। इसी क्रम में प्रतिष्ठा विधि का लगभग, ७ बार विस्तार से वर्णन दिया गया है। जिसमें इष्टाधिवास, प्रतिष्ठा होम, वास्तुहोम, महोत्सव होम, यानारोहण, वास्तु पुरुष पूजा प्रतिष्ठा इत्यादि का विवरण वैदिक ऋचाओं, श्रीसूक्त आदि के द्वारा सम्पन्न

किया जाता है। इसके अतिरिक्त भी शस्त्रावतरण बलि पीठ स्थापन, द्वार देवतादि न्यास महोत्सव देवस्य उत्थापन, अलंकारासन, आह्वान प्रकार, सम्प्रोक्षण, इत्यादि सपर्या संस्कारों को वैदिक मन्त्रों के अनुष्ठान से सम्पन्न किया जाता है। निश्चय ही मंदिर, संस्कृति के लिये पादम संहिता में वर्णित पञ्चकालिक इज्या, एवं यज्ञीय कर्मकाण्डीय व्यवस्था का उल्लेख उस समय तैयार किये गये प्रबन्ध शास्त्र के प्रतीक है। जिससे आचार्य, देशिक, सहदेशिक, मार्गदर्शन प्राप्त करके मन्दिरों में नित्य सपर्या उत्सव क्रम और अन्य विधानों को सहजता से सम्पन्न करा सके। यह शास्त्र कल्पना भविष्य के लिये वैष्णव सम्प्रदाय की अनमोल धरोहर है।

पादम संहिता के चुने हुए संस्कारों का ऋग्वेदीय मन्त्र प्रतीक वर्णानुक्रम दृष्टव्य है-

पादमसंहिता ऋग्वेदमन्त्र प्रतीक वर्णानुक्रम सूची

क्र.	मन्त्र प्रतीक	मण्डल-सूक्त-मन्त्र	पादमसंहितौ धरण	अध्याय श्लोक	विनियोग विषय
	गन्धद्वारेति	५-८७-९	गन्धद्वारेति मन्त्रेण गन्धाम्बुकलशेन तु ॥	३-२७-६६	स्नपन
	गन्धद्वारेति	५-८७-९	गन्धद्वारेति मन्त्रेण स्नपनं गन्धवारिभिः ।	४-८-७६	स्नपनमन्त्र
	गन्धद्वारेति	५-८७-९	गोमूत्रं विष्णुगायत्र्या गन्धद्वारेति गोमयम् ।	४-८-१२२	मध्यमस्नप मन्त्र
	गन्धद्वारेति	५-८७-९	दधिक्राण्णेति च स्नानगन्धद्वारमिती दशम् ।	४-९-११९	सहस्रकल शस्नपन
	हिरण्यवर्णा हरिणीम्	५-८७-९	हिरण्यवर्णा हरिणीमिति लेपो हरिद्रया ।	४-३-१५४	स्नानासन

	गन्धद्वारेति	५-८७-९	गन्धद्वारेति मन्त्रेण स्नापयेदगन्ध- वारिणा ।	३-५-५८	इष्टकाधि वास
--	--------------	--------	--	--------	-----------------

पाद्मसंहिता ऋग्वेदमन्त्रप्रतीक सूची

क्र.	मन्त्र प्रतीक	मण्डल-सूक्त -मन्त्र	पाद्मसंहितौ ध्वरण	अध्याय श्लोक	विनियोग विषय
	उत्तिष्ठे (ब्राह्मण स्पते)	१-४०-९	ऋत्विजो देवमत्थाप्य गुरुश्चोत्तिष्ठ विद्यया ॥	४-८-५९	नित्याराध नम्
३	अग्नि(र) मूर्धेति	८-४४-१६	अग्निमूर्धेति मन्त्रेण प्लोतेनाङ्गम्बुनिर्हृतिः	४-३-१५४	स्नानासन
४	एतो देवा अवन्तु	१-२२-१६	आपोहिष्टेति तिसृभिरतो देवा अवन्त्विति	४-३-१५३	स्नानासन
६.१	आपोहिष्टा	१०-९-१	आपो हिष्टेति तथाध्वेणाभिषेचये त् देवावन्त्विति	३-२७ ६०-१५३	प्रतिष्ठा स्नपन
६.२	आपोहिष्टा	१०-९-१	आपो हिष्टेति तिसृभिरतो देवावन्त्विति ।	३-२७-१५६	स्नानासन
७.१	आप्यायस्वेति	१-९१-१६- १७ ९-३१-४	आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राणोति वै दधि ।	४-८-१२२	मध्यमस्न- पन
७.२	आप्याया- स्वेति	१-९१-१६- १७ ९-३१-४	हिरण्यगर्भमन्त्रेण आप्यायस्वेति विद्यया ।	४-९-१२०	सहस्रकल शस्नपन
९.१	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	पाद्याभिषेचन कुर्यादिदं विष्णुरितिरयन् ।	३-२७-५९	प्रतिष्ठा- स्नपन
९.२	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	युवांम्बुकलशेन स्यादिदं विष्णुरिति तृचा ।	३-२७-६७	स्नपन

९.३	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	इदं विष्णुरिति प्रोच्य विश्वत्क्षुरित्यापि ।	३-२७-८१	स्नपन
९.५	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	इदं विष्णुरितिद्वाभ्यां पादुकारोहणं हरेः ।	४-३-१४८	स्नानासन
९.८	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	ऋग्भिः षोडशभिः स्नानमृचदं विष्णुरित्यापि ।	४-८-७८	स्नपनमन्त्र
१३. १	उत्तिष्ठे (नूनम्)	५-५६-१	उत्तिष्ठेत्यादिमन्त्रा समुत्थाय च कौतुकम् ।	३-२७-४९	स्नपन
१४.	उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते	१-४०-१	उद्धरेच्च हरिं स्नातुम् उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते ॥	४-३-१४८	स्नानासन
	ओषध्य (धय) इति	१०-९७-२२	ओषध्य इति मन्त्रेण कषायाम्बोभिषेचनम् ।	८-४-७३	स्नपनम्
	ओषध्य (धय) इति	१०-९७-२२	ओषध्य इति मन्त्रेण कषायाम्बोभिषेचनम् ।	८-४-७३	स्नपनम्
१५.	कयानश्चित्र आभुवत्	४-३१-१	ब्रह्मजितासमिति च कयानश्चित्र आभुवत् ।	४-३-१५६	स्नानासन
१७. १	तद्विष्णोरिति	१-२२-२०	तद्विष्णुरिति मन्त्रेण स्नापयेदर्थ्यवारिभिः ।	४-८-७०	स्नपनमन्त्र
१७. २	तद्विष्णोरिति	१-२२-२०	दन्तधावनकाष्ठं च तद्विष्णोरिति निर्वपेत् ।	४-३-१५१	स्नानासन
२१. १	दधिक्रण्णोति	४-३९-४ ४-४०-१	आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्रण्णोति वै दधि	४-८-१२२	स्नपन-मन्त्र
२१. २	दधिक्रण्णोति	४-३९-४ ४-४०-१	दधिक्राव्णोति मन्त्रेण दधिस्नपनमाचरेत् ।	३-२७-६२	प्रतिष्ठास्नपन
२३.	न ते	७-९९-२	न ते विष्णुरिति	४-८-७१	स्नपन

	विष्णुरिति पयांसि इति	१०-११-१	श्रुत्या कुम्भेनाचमनाम्बुन । अनोनियुद्मिरिति च मन्त्रेष्वन्ते पयांसि च ।	२७-३-२७- २०१	मन्त्र प्रतिष्ठा होम
२४. १	पवित्रन्त इति	९-८३-१	रक्षोघ्नमितिसामाद्यं पवित्रन्तइतितिच ।	४-९-१२२	सहस्रकल शस्नपन
२५	प्र तद विष्णुरिति	१-१५४-२	प्रदत् विष्णोरिति क्षाल्यमभिषेक विधिस्ततः ।	४-३-१५२	स्नानासन
२६. २	फलिनीति	१०-९७-१५	फलिनीत्यनुवाकेन स्नापनं फलवारिभिः ।	४-८-७५	स्नपन- मन्त्र
२६. ३	फलिनीति	१०-९७-१५	फलिनीत्यनुवाकेन स्नापयेयु फलाभ्यसा ।	३-२७-६५	स्नपन
२८. २	भद्रं कर्णेभिरिति	१-१९-८	मन्त्रस्तुभद्रं कर्णेभिरिति स्नानसनासने ।	४-३-१४९	स्नानासन
२९. १	मधुनक्तमिति	१-९०-७	श्री सूक्तं मधुमात्रश्च मधुनक्तमितीति च ।	४-९-१२६	सहस्रकल शस्नपन
२९. २	मधुनक्तमिति	१-९०-७	मधुनक्तमिति सनानमैक्षवैन रसेन च ।	४-८-१४५	स्नपनमन्त्र
३०. १	मधुमात्रः	१-९०-८	श्री सूक्तं मधुमात्रश्च मधुनक्तमितीति च ।	१-९०-८	सहस्रकल शस्नापन
३०. २	मधुमात्र इति	१-९०-८	मधुमात्र स्नानं नरिकेलराम्बुनापुनः ।	४-८-१४६	स्नापनमन्त्र
३१. ३	मधुवातेति	१-९०-६	मधुवातेति मन्त्रेण मधुना स्नपयेदगुरुः ।	३-२७-६३	वास्तुपूजा स्नपन
३१. ४	मधुवातेति	१-९०-६	मधुवातेति मन्त्रेण स्नपनं मधुविद्विपः ।	४-८-७३	स्नपनमन्त्र
३१. ५	मधुवातेति	१-९०-६	मधुवातेति कोणेषुमन्त्रकल्पति	४-९-१२३३. १६	सहस्रकल शस्नपन

			रुदाहुता ॥		
३१. ६	मधुवातेति	१-९०-६	मधुवातेतिमन्त्रेण स्नपनं गुलवारिणा ।	४-८-१४५	मध्यपस्नप न
३२	मानस्तोंकेति	१-११४-८	मानस्तोंकेत्युच्चा तोयैरुष्णैश्चैवामिषे चनम् ।	३-२७-६४	स्नपन
३३. १	मूर्धानं दिव इति	६-७-१	मूर्धानं दिव इत्येतामृचमुच्चारये चक्षुभैः ।	३-२७-५७	वास्तुपूजा स्नपन
३४	यज्ञायज्ञ (न सामना	१-१६८-१	यज्ञायज्ञेति मन्त्रेण कषायम्भौमिषेचनम् ।	३-२७-६३	स्नपन
३५	यस्मिन् विश्वानि	७-१०१-४ ८-४१-६	यस्मिन् विश्वानि विद्या ऋ पर्जन्यायेति लक्षितः ।	४-९-१०८	सहस्रकल शस्नपन
३६	या ओषधीः (पूर्वा)	१०-९७-१	या ओषधीति मन्त्रेण मूलोषधिजलैस्ततः ।	४-८-१६	उत्तमस्नप न
	या ओषधीः (सोमराज्ञीर्बह वी)	१०-९७-१८	या ओषधीति मन्त्रेण मूलौषधिजलैस्ततः ।		
	या ओषधीः (सोमराज्ञी र्विष्ठिता)	१०-९७-१९			
३७	युवासुयुवासा	३-८-४	युवायुवासा इत्यादि ब्रुवन् विषवक्चतुर्मुखम् ॥	३-२७-८३	स्नपन

३९. १	वषट् वे विष्णवित्यादि वषट् वे विष्णुरिति	७-९९-७ ७-९९-७	वषट् ते विष्णवित्यादि- मन्त्रेण मणिवारिणा ॥ वषट् ते विष्णुरित्येतत् तिस्त्रोवच इतीदृशः ।	३-२७-६४ ४-९-१०७	स्नपनम् स्नपनम्
	वेदाहम्	७-१००-७	वेदाहमिति मन्त्रेण	४-८-१४६	स्नपनद्रव्य

	(अस्य निभृतम्) इति		शान्तिद्वयघटा- म्बुभिः ।		
	वेदाहमिति (अस्य निभृतम्) इति	२-१४-१०	हिरण्यपाणीरिति च वेदाहमिति च क्रमात् ।	४-९-१२६	सहस्रकल शस्नपन
३९. २	वषट् ते विष्णुरिति	७-९९-७	वषट् ते विष्णुरित्येतत् तिस्रोवाच इतीदृशः ।	४-९-१०७	सहस्रकल शस्नपन
४०	विश्वतश्चक्षुः	१०-८१-३	इदं विष्णुरिति प्रोच्य विश्वतश्चक्षुरित्यपि ॥ ।	३-२७-८०	स्नपन
४१. १	विष्णोर्नुकमि ति	१-१५४-१	कार्यं विष्णोर्नुकमिति मन्त्रेणामलकादिक म् ।	४-३-१५२	स्नानासन
४१. २	विष्णोर्नुकमि ति	१-१५४-१	विष्णोर्नुकमिति प्रोच्य स्नापयेन्मङ्गलाभ्य सा ।	४-८-१६६	उत्तमस्नपन
४१. ३	विष्णोर्नुकमि ति	१-१५४-१	विष्णोर्नुकमिति स्वच्छैर्नलैः प्रोक्षणमिष्यते ।	४-१७-४८	सम्प्रोक्षण
४२	शतधारा (मुत्सम) इति	३-३६-९	शतधारेति मन्त्रेण स्नानं स्याद्यववारिभिः ।	४-८-७७	स्नपनमन्त्र
	शतधारा (म्वायुम्) इति	१०-१०७-४			
४३. १	शं नो देवी	१०-९-४	शं नो देवीति स्नानं मन्त्रितैर्मार्जना- म्बुभिः ।	३-२७-६६	स्नपन
४३. २	शं नो देवीरिति	१०-९-४	शं नो देवीरिति स्नानं मन्त्रितैर्मार्जना- म्बुभिः ।	४-८-७५	स्नपनमन्त्र
४३.	शं नो	१०-९-४	अष्टाक्षराहवयो	४-९-१२४	सहस्रकल

३	देवीरिति		मन्त्र शं नो देवीरितिस्मृतः ।		शस्नपन
४३. ५	शं नो देवीरिति	१०-९-४	शं नो देवीरसीत्येय यासो राजैति मन्त्रतः	४-९-११२	सहस्रकल शस्नपन
४४	सत्त्वं नौग्नि (ःयग्रे) इति	४-१-५	मन्त्रश्च तावाति इत्येय स त्वं नौग्निनरित्युवा ।	४-९-११६	सहस्रकल शस्नपन
४५	समुद्रज्येष्ठ समुद्रमिति	७-४९-१ ८-१-३४	समुद्रज्येष्ठ मन्त्रेणं यासं देवेतिविद्यया । घटयां समुद्रमित्युक्त्वा महिर्न चैव सुमङ्गलम् ।	४-९-११३ ३-५-७५	सहस्रकल शस्नपन होम
४६. १	हिरण्यगर्भ	१०-१२१-१	हिरण्यगर्भमन्त्रेण स्नाप्येद् लोहवारिणा ।	३-५-५७	इष्टक्राधि वासस्नपन
४६. २	हिरण्यगर्भ	१०-१२१-१	हिरण्यगर्भमन्त्रेण स्नाप्ये हि वारिणा ।	३-२७-६५	स्नपन
४६. ३	हिरण्यगर्भ	१०-१२१-१	हिरण्यगर्भमन्त्रेण आप्यायस्वेति विद्यया ।	४-९-१२०	सहस्रकल शस्नपन
४७	हिरण्यपाणीरि ति	१-३५-९	हिरण्यपाणीरिति च वेदाहमिति च क्रमात् ।	४-९-१२५	सहस्रकल शस्नपन
११. ३	इमं वे वरुण	१-२५-१९	इमं वे वरुण इत्येव तथा च मनवारिणा ॥	३-२७-६०	प्रतिष्ठा स्नपन
११. ४	इमं वे वरुण	१-२५-१९	ऐते शतमृचाः स्नानमिमं मे वरुणेति च ।	४-९-१२२	सहस्रकल शस्नपन
२४. २	पवित्रं ते	९-८३-१	पवित्रं तेति मन्त्रेण प चगव्याभिषेचनम् ।	३-२७-६१	प्रतिष्ठास्न पन
१	अग्नआयहि	६-१६-१०-	इषे त्वा इति धृतेन अग्न आयाहित इति	४-२०-९६	नृपाभिषेक

			ब्रुवन्		
६.३	आपोहिष्ठेति	१०-९-१	सर्वतीर्थोम्बुबा स्नानमापो हिष्ठेति विद्यया	४-८-१२२	नृपाभिषेक
८.	आ हार्ष चेति	१०-१६१-५	आ हार्ष चेति मन्त्रेण तथा कर्पूरवारिणा ।	४-२०-९८	नृपाभिषेक
९. १२	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	इदं विष्णुरिति प्रोच्य कुडकुमक्षेदवारिणा ॥	४-२०-९७	नृपाभिषेक
१०	इन्द्रमरुत्व	३-५१-७	इन्द्रमरुत्वमन्त्रेण तन्तुना परिवेष्टयेत् ॥	४-८-३४	महाभिषेक
१६	चात्वारि शृङ्ग	४-५८-३	चत्वारि शृङ्ग इत्युच्चार्य तथा सर्वफलोदकैः ।	४-२०-९९	नृपाभिषेक
४३. ४	शं नो देवीरिति	१०-९-४	शं नो देवीरिति पयः स्नानं दध्नाभिषेचनम् ।	४-२०-९५	उत्सव नृपाभिषेक
११. १	इमं मे वरुण	१-२५-१९	आसनं तेति च तथा इमं मेत्यादि वारुणैः ।	३-२७-२०१	प्रतिष्ठा होम
११. २	इमं वे वरुण	१-२५-१९	अलैरिमं मे वरुण इत्युच्चार्य समूर्तिपः ।	३-२७-५७	प्रतिष्ठा स्नपन
१८	तमीशानमिति	१-८९-५	तमीशानमिति तैस्तैर्मन्त्रैरिन्द्रादिदे वता ।	३-२७-२०२	प्रतिष्ठा होम
१९.	त्रातारंत्वा इति	२-२३-८	त्रातारमित्ययाश्चग्नै यदुलूका इति क्रमात् ।	३-२७-२००	प्रतिष्ठा होम
	त्राताम् इन्द्रम् इति	६-४७-११			
२७	भद्रादि (अश्वा)	१-११५-३ ४-६-६	भद्रादि मन्त्रमाचार्यः स्वयमुच्चार्य	३-२७-५५	प्रतिष्ठा वास्तुपुरुष

	भद्रादि (तेअग्ने) भद्रादि (ते हस्ता) भद्रादि (दृक्ष) भद्रादि (वस्त्रा) भद्रादि (अग्ने)	४-२१-९ ६-६४-२ ९-९७-२ १०-६९-१	मन्त्रवित्।		पूजा
	युञ्जि (युञ्ज) तेति अनुवाक	५-८१-१	युञ्जि तेत्यनुवाकेन समानाहय जनार्दनम्।	३-२९-९	नृसिंह प्रतिष्ठा
२.	अग्निमीडे(ले)	१-१-१	अग्निमीडेति मन्त्रेण चुल्लीष्वग्निं निधापयेत्	३-३०-१६६	बलिपीठ- स्थापन
९.४	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	धान्यराशिषु मन्त्रेण इदं विष्णुरितिस्वयम्।	३-२७-९१	द्वारदेवाता दिन्यास
९.९	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	उत्थप्या शयनादेवं तां इदं विष्णुरितिस्पृचा।	४-११-४७	महोत्सवदे वस्य उत्थापन
३८	रक्षोहणेति	१०-८७-१	रक्षोहणेति मन्त्रेण रक्षां कुर्यात्समन्ततः अरोपयेदनिर्वाणान् प्रदीपान् बहुवार्धसः।	३-२६-३८	कलशदेवा तापूजन
५	आत्वा हार्षमिति	१०-१७३-१	आत्वा हार्षमित्येतत्सूक्तं च सहमूर्तिः।	३-२८-२८-	वास्तुहोम
९. १०	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	इदं विष्णुरिति प्रोच्य पूर्णाहुतिमयाचरेत्।	४-११-८८	महोत्सवहो म
२२	ध्रुवाद्यैरिति	१०-१७३-४	ध्रुवाद्यैरिति मन्मणे पठेयुर्गुवनुज्ञाया ॥ -	३-२८-२८	वास्तुहोम
२८.	भद्रं कर्णेति	१-८९-८	भद्रं कर्णे मन्त्रेण	४-११-१०३	महोत्सवहो

१			यानमारोपयेतदा ।		म यानारोहण
९.६	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	इदं विष्णुरिति श्रुत्या लेपन वपुषिस्मृतम् ।	४-३-१६१	अलंकारा सन
९.७	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	इदं विष्णुरिति प्रोच्य प्रणवेन प्रसाधनम् ।	४-६-१५	आवाहनप्र कार
९. ११	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	इदं विष्णुरिति प्रायैमन्त्रैः परमपावनैः ।	४-१७-५०	संप्रोक्षण
१२	इरावती (धेनुमती) ति	७-९९-३-	इरावतीति मन्त्रेण पादयोरक्षतान क्षिपते ।	४-३-१६३	अलंकारा सन
१७. ३	तद्विष्णोरिति	१-२२-२०	पुष्पाणि दद्यात्तद्विष्णोरिति मन्त्रेण मन्त्रवित् ।	४-३-१६२	अलंकारा सन
१७. ४	तद्विष्णोरिति	१-२२-२०	तद्विष्णोरिति पुष्पाणि जितन्त इति धूपकम् ।	४-६-१५	आवाहनप्र कार
१७. ५	तद्विष्णोरिति	१-२२-२०	तद्विष्णोरिति मन्त्रेण स्नानमष्टाम्बुधारया ।	४-८-७४	स्नपनमन्त्र
	त्रीणि पदेति	१-२२-१८	तदर्घ्यं विष्णुगायत्र्या दद्यात्त्रीणि पदेत्यृचा ।	४-६-१२	आवाहनप्र कार
२६. १	फलनीति	१०-९७-१५	फलनीत्यनुवाकेन स्नापयेत्फलवारिणा ॥	३-५-५६	इष्टकाधि वास
३१. १	मधुवातेति	१-९०-६	स्नापयेद् इक्षुतोयेन मधुवाते ति मन्त्रतः ।	३-५-५६	इष्टकाधि वास
३१. २	मधुवातेति-	१-९०-६	मधुवातेति मन्त्रेण मधुस्नानं समाचरेत् ।	३-५-५९	इष्टकाधि वास
३३. २	मूर्धानं दिव	६-७-१	धूमेनागुरुजेनार्द्रा मूर्धानं दिव इत्यृचा ।	४-३-१६०	अलंकारा सन

यज्ञायज्ञ - (वः अग्नेय)	६-४८-१			
यज्ञेन यज्ञं (यष्टव्यम्) यजनम् इति	१-१६४-५०	यज्ञेन यज्ञं यष्टव्यं यजना इति च श्रुतिः।	१-१-३६	शास्त्रावत- रणम्

श्रीप्रश्न संहिता

श्रीप्रश्नसंहिता में ऋग्वेद के मन्त्रों से अभिषेक और उसके अन्तर्गत स्नपनविधि के लगभग २७ उद्धरणवैदिक-विधि के अनुक्रम को दर्शाते हैं। अभिषेक-विधि श्रीप्रश्नसंहिता के २७वें अध्याय में स्नपनभेद के अन्तर्गत विस्तार से वर्णित है, जिसमें गर्भगृह के समीप प्रतिमा-स्नान की व्यवस्था होती है, और मन्दिर के अग्रभाग में अनेक प्रतिमाओं की स्नपन विधि के लिए स्नपन वेदिका निर्माण तथा घट-स्थापना की जाती है।

१०८ और १००८ सहस्रकलशस्नपन आदि से महाभिषेक किया जाता है। अतः महाभिषेक में विशिष्ट संख्या युक्त घटों पर माङ्गलिक सामग्री को रखते हुए घटों की स्थिति का निर्णय विधि पूर्वक किया जाता है। स्थापित घटों का पश्चिम दिशा में स्नान के जल को प्रवाहित करने का विधान होता है। उसी स्थान पर शंख चक्रादि पात्रों का परिकल्पन किया जाता है। पञ्चकाल पर्यन्त कलशादि के संप्रोक्षण से नित्य पूजा विधि, पुण्याहवाचन आदि वैदिक-सूक्त मन्त्र-पाठ करते हुए द्वार पूजा होती है, और बाहर नर्तकी-जनों द्वारा गायन वादन करते हुए इसी अध्याय में भगवत-मूर्ति को श्रीभूमि देवी सहित स्नान-मण्डप में लाते हैं।

पुण्याहं वाचयेत् पूर्वपञ्चकालपरायणैः।

संप्रोक्ष्य कलशादीनि द्वारपूजामुपक्रमेत् ॥ २६ ॥ १

निषद्वाराश्च सूक्तानिपठेयुर्वैष्णवोत्तमाः।

बर्हिवाद्यापि गायेयुर्नृत्येयुर्नर्तकीजनाः ॥ २७ ॥ २

घटों के पूर्व स्थान में देशिक द्वारा विधिपूर्वक पुष्पाङ्कुरण कुण्ड में अथवा स्थण्डिल में करते हैं। पुनः दिव्याग्नि की स्थापना होती है।

हवनविधि होती है। निर्दिष्ट संख्या में चरु की षोडश आहुति और घृत की १०८ आहुतियाँ विष्णु-गायत्रीमन्त्र से (सर्पिष्टोत्तरशतं विष्णुगायत्रिया हुते ॥ ३१ ॥ ३) वैदिकपरम्परा के अनुरूप यज्ञ-विधि से हवन कुण्ड में शेष हवन सामग्री डालते हुए मध्य-कुम्भ से सिंचन होता है। तथा अग्नि स्थित परमात्मा का चिन्तन करते हुए, अग्नि देव के स्नपनार्थ आचार्य द्वारा यज्ञ में अर्घ्य देते हुए; स्नान-शाटी को समर्पित किया जाता है, और देवों का रक्षासूत्र बन्धन करते हैं। पुनः स्नपन सिंचन करते हुए, कुम्भों में द्रव्यों का निक्षेपण करते हुए मन्त्र पूर्वक कुम्भादि देवता का निर्णय करते हैं तत्पश्चात् सहस्त्रधारस्नपन कराते हुए ब्राह्मणों द्वारा पुरुषसूक्त से हरि को प्रसन्न किया जाता है।

सहस्त्रधारया स्नान मेव कुर्याद्रमापतेः ।

द्विजाः पुरुषसूक्तेन तोषयेयुस्तदा हरिम् ॥ ४४ ॥ ४

पुनः विभवादि देवों की सर्पया विविधता से गन्ध, पुष्प, मधु, पञ्चगव्य, तुलसीदल, इत्यादि द्रव्यों से की जाती है।

वस्त्र; अलंकारादि विधिवत् देवों को समर्पित किया जाता है। पुनः स्नपन सेचन करते हुए; कुम्भों में द्रव्यों का निक्षेपण करते हुए; मन्त्रपूर्वक कुम्भादि देवता का निर्णय करते हैं। इस अभिषेक विधि में तद्विष्णोरिति; गन्धद्वारेति; मधुवातेति; शं नो देवीति आदि मन्त्रों से; और विष्णुगायत्री से पूजन-क्रम चलता जाता है यथा-त्वं विष्णुरिति यजुषा स्नानमुष्णाम्बुधारया । (२७-९५) पुरुषसूक्त; विष्णोः कर्मेति; और द्वादशाक्षर मन्त्र; एवं विष्णुगायत्री विशेष रूप से देशिक आचार्य और सहदेशिकों द्वारा निरन्तर पूजन क्रम में सस्वर उच्चरित किये जाते हैं। ८१; ४९; ३२५; २१-१७; १६-१७; ९-५-१ इतनी संख्याओं से घटों से वैदिकसूक्तों से अभिषेक कराते हुए; घटों का स्थान प्रकल्पन कराते जाते हैं। उसके बाद प्रक्षेपणीय द्रव्य का निर्णय; मुहूर्त-काल में स्नपन सम्पूर्ति-निर्णय; और अभिषेक-विधि में उपस्थित भक्त-जनों द्वारा विभवादि देवों का गुणगान; कीर्तन उत्सवपूर्वक करते हुए इस महोत्सव को सम्पन्न करते हैं। यद्यपि

श्रीप्रश्नसंहिता की इस अभिषेक-विधि को अत्यन्त संक्षिप्त में उल्लिखित किया गया है।

श्रीप्रश्न संहिता ऋग्वेदमन्त्रप्रतीक वर्णानुक्रम सूची

क्र.	मन्त्र प्रतीक	मण्डल-सूक्त-मन्त्र	श्रीप्रश्नसंहिताध्वरण	अध्याय श्लोक	विनियोग विषय
	गन्धद्वारेति	५-८७-९	गन्धद्वारेति वै मन्त्रमुच्चरन् गन्धवारिभिः	२७-९०	अभिषेक विधि
	गन्धद्वारेति	५-८७-९	गन्धद्वारेति मन्त्रेण गोमयानुलेपयेत्।	२१-२१	प्रतिष्ठा कुम्भस्थाप
	गन्धद्वारेति	५-८७-९	गोमूत्रं विष्णुगायत्र्या गन्धद्वारेति गोमयम्।	२१-५५	प्रतिष्ठा पञ्चगव्यप्रो क्षण
	गन्धद्वारेति	५-८७-९	वस्त्रयुग्मं समर्प्याय गन्धद्वारेति देशिकः।	२८-२६०	परिवारपूजा
	तच्छंयोरिति	१०-१९१-१ ५	तच्छंयोरिति मन्त्रेण शुद्धवस्त्रेण शोधयेत्।	२८-३१	नित्ययागोप कम्
	गन्धद्वारेति	५-८७-९	गन्धद्वारेति मन्त्रेण निघर्षेन्मृदमुत्तमाम्।	१६-१२५	पञ्चसंस्का उर्ध्वपुण्ड्र
	हिरण्यवर्णा हरिणीम्	५-८७-९	हिरण्यवर्णा हरिणीमूलवेरात् समागताम्	२९-१४६	वीरलक्ष्मी समाराधन

श्रीप्रश्न संहिता ऋग्वेदमन्त्रप्रतीक वर्णानुक्रम सूची

क्र.	मन्त्र प्रतीक	मण्डल-सूक्त-मन्त्र	श्रीप्रश्नसंहिताध्वरण	अध्याय श्लोक	विनियोग विषय
६.२	आप्यास्वेति	१-९१-१६ ९-३१-४	आप्यायस्वेति मन्त्रेण गोक्षीरेणाभिषेचयेत्।	२७-८८	स्नपन
६.३	आप्यास्वेति	१-९१-१६ ९-३१-४	आप्यायस्वेति दुग्धेन दध्ना च तदन्नतरम्।	२८-२५६	अभिषेक
८	इदं मे गङ्गा	१०-७५-५	उदधृतासीति मृत्तोयैरिमं मे गङ्गा मन्त्रतः।	२७-९७-	स्नपन

१२. २	तद्विष्णोरिति	१-२२-२०	तद्विष्णोरिति मन्त्रेण स्नापयेदर्घ्यवारिणा ।	२७-८७	स्नपन
१४. १	अधिक्राव्योति	४-३९-४ -४०-१	दधिक्राव्योतिमन्त्रेण स्नापयेद् गन्धवारिणा । वा -दधिकावणेति यजुषा दध्ना स्नानं प्रकल्पयेत् ।	६-४१	स्नपन
१७	न तो विष्णो इति	७-९९-२	न ते विष्णो इति मनुं वदन्नाचामवारिणा ।	२७-८७	स्नपन
१९. १	फलनीति अनुवाक	१०-९७-१५	फलनीत्यनुवाकेन स्नापयेत्फलवारिणा ॥	६ ३ ९	स्नपन
१९. २	फलनीति	१०-९७-१५	फलनीत्यनुवाकेन स्नापयेत्फलवारिणा ।	२७-९०	स्नपन
२२. १	मधुवातेति	१-९०-६	स्नापयेद्विष्णु तोयेन मधुवातेति मन्त्रतः ।	६-३८	स्नपन
२२. २	मधुवातेति	१-९०-६	मधुवातेति मन्त्रेण मधुस्नानं समाचरेत् ।	६-४१	स्नपन
२२. ३	मधुवातेति	१-९०-६	मधुवातेति वै मधु सविराजेति वै घृतम् ।	२४-६१	स्नपन
२२. ४	मधुवातेति	१-९०-६	मधुवातेति मन्त्रेण मधुपर्कणै वै विभुम् ।	२७-८९	स्नपन
२२. ५	मधुवातेति	१-९०-६	मधुवातेति मन्त्रेण स्नपनं गुलवारिभिः ।	२७-९२	स्नपन
२३. १	मूर्धनमिति	६-७-१	मूर्धनमिति मन्त्रेण बीजानि छादयेन्मृदा ।	२२-९८	बीजन्विक्षे प
२४	या ओषधीः (पूर्वा) या ओषधीः (सोमराज्ञीबर्ह वी) या ओषधीः (सोमराज्ञीर्वि ष्टिता)	१०-९७-१ १०-९७-१८ १०-९७-१९	या ओषधीति मन्त्रेण स्नापयेत्पत्रवारिभिः ।	२७-९१-	स्नपन
२७	विश्वेत्ता ते ति	८-१००-६	विश्वेत्तातेति मन्त्रेण	३३-४५-	महोत्सव

			मूलवेरस्य दक्षिणे ।		
२८	विष्णोः कर्मेति	१-२२-१९	विष्णोः कर्मेति मन्त्रेण पञ्चगव्याभिषेचनम् ।	२७-९	स्नपन
२९	विष्णोर्नुकेति	१-१५४-१	विष्णोर्नुकेति मन्त्रेण दद्यादचमनं हरेः ।	२८-२५४	अराधनक्रम
३१. २	शं नो देवीति	१०-९-४	शं नो देवीति मनुना स्नापयेनमार्जनाम्बुभिः ।	२७-९१	स्नपन
३४	हिरण्यगर्भ	१०-१२१-१	हिरण्यगर्भमन्त्रेण स्नापयेल्लोहवारिणां ।	६-३९	स्नपन
१.	अग्निमूर्धेति	८-४४-१६	अग्निमूर्धेति मन्त्रेण शुष्कवस्त्रेणशोधयेत् ।	२८-२६६	अभिषेक
७.२	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	इदं विष्णुरिति श्रुत्या चन्दनेन सुगन्धिना ।	२८-२७०	अभिषेक
१०	इरावती धेनुमती	७-९९-३	इरावतीति मन्त्रेण पाठयोरक्षतान्क्षिपेत् ।	२८-२७४	अभिषेक
१३	दधिक्रावुण्णमन्त्र	४-३९-४	दधिक्रावुण्णमन्त्रेण गायत्र्या विष्णुपूर्वया ।	२८-२५९	अभिषेक
२३. २	मूर्धानमिति	६-७-१	मूर्धानमित्याद्रकेशान् शोधयेद् गन्धधूपकैः ।	२८-२६६	अभिषेक
२५	युवायु(सु)वासा	३-८-४	युवायुवासामन्त्रेण वस्त्रयुग्मं समर्पयेत् ।	२३-२८	बिम्बाभिषेक
	वेदाहम्	२-१४-१०	कषायाहभिः शान्ति तो- यैर्वेदाहमिति मन्त्रतः ।	२७-९७	स्नपन अभिषेक- विधिः
३०	शतधारा (मुल्सम) इति शतधारा (मवायुम) इति	३-२६-९ १०-१००-४	सावित्र्याक्षततोयेन शतधारेति मन्त्रतः ।	२७-९३	कलशा- भिषेक

२.२	अजस्यनाभा - विति	१०-८२-६	अजस्य नामाविति च सामगाश्चार्चतेति च	२४-२०५	प्रतिष्ठा
५	अपो हिष्टेति अर्चतद्गार्च (त)	१०-९-१	आपो हिष्टेति मन्त्रेण इमं मे वरुणेत्यूचा ।	२२ ९ २३	प्रतिष्ठा बीजनिक्षेप

				८-१५४	
९.	इमं मे वरुणेति	१-२५-१९	आपो हिष्टेति मन्त्रेण इमं मे वरुणे तृप्या ।	२२-९९	प्रतिष्ठा बीजनिक्षेप
२६	(यो) विश्वतश्चक्षु रिति	१०-८१-३	यो विश्वतश्चक्षुरिति पतिं विश्वस्य इत्यृचा ।	२४-१०४	प्रतिष्ठा देवातावाह न
	प्रतिष्ठा सीति	३-८-३	प्रतिष्ठासीति मन्त्रेण दृढीकुर्याद् गुरुतमः ।	१०-३०-	मूलबेर- प्रतिष्ठा
	प्रतिष्ठासीति	३-८-३	प्रतिष्ठासीति वै साम पठेयुश्च समन्ततः ॥	२०-४१-	बिम्बप्रतिष्ठा
३	एतो देवेति	१-२२-१६	द्वासुपर्णेति तदनु एतो देवेति वै मनुम् ।	२४-२०४	
१८	पवित्रं ते ति	९-८३-१	मन्त्राभ्यां शङ्खचक्राभ्यां पवित्रं ते ति मन्त्रतः ।	१६-१४४	दीक्षा
२०	भद्रं कर्णम् इति	१-८९-८	भद्रं कर्णं पठन् देवि हरधाम प्रदक्षिणम् ।	२१-१२-	अंकुरार्पण
२१. १	भद्रं कर्णेति	१-८९-८	भद्रं कर्णेति वै मन्त्रं घोषयन् वेदपारगैः ।	४-२८	आलनिर्मा णमूपरिग्रह
१५	द्वा सुपर्णेति	१-१६४-२०	द्वा सुपर्णेति तदनु एतो देवेति वै मनुम् ।	२४-२०४	प्रतिष्ठा देवतावाह न
२१. २	भद्रं कर्णेति	१-८९-८	पठद्भिः शाकुनं सूक्तं भद्रं कर्णेति मन्त्रतः ।	२४-१८३	प्रतिष्ठा नदीतीरग मन
२१. ३	भद्रं कर्णेति	१-८९-८	देवीभिर्देवेदेवेशं भद्रं कर्णेति मन्त्रतः ।	२४-१८३	प्रतिष्ठा देवतावाहन
१६-	धन्वानामेति	६-७५-२	धन्वानामेति मन्त्रेण दभैरुध्वं परिसारेन् ।	२१-२३	प्रतिष्ठा कुम्भस्थपन
३१. १	शं नो देवीति	१०-९-४	शं नो देवीति मन्त्रेण शतपत्रं लिखेत्सुधी ।	२१-२३	प्रतिष्ठा कुम्भस्थपन
४	अदितैत्यादि	२-२७-१४	आपूर्य कुण्डं परितः अदितैत्यादिभिस्त्रिभिः - ।	२९-३४	नित्यहोम
१२. १	तद्विष्णोरिति	१-२२-२०	तद्विष्णोरिति मन्त्रेण शतमष्टोत्तरं घृतैः ।	१६-११३	दीक्षाहोम

	निषद्वरम् (निषिध्वरीरो)	८-५९-२	भद्रं कर्णं दक्षिणस्यामुत्तरस्यां निषद्वरम्।	२४-३६	नित्यहोम
	निषद्वरम् (निषिध्वस्त)	३-५५-२२			
३२	शं नो मित्रादि (उपनिषद)	१-९०-९	शं नो मित्राद्युपनिषदं पठन्तस्तूर्यघोषवत्।	२४-२०८	नित्यहोम
३३. १	शुचीव	७-५६-१२	प्राकारेषु च सर्वत्र शुचीव इति मन्त्रतः पायाग्निकरणं कुर्यात् तेन शुद्धिर्ध्रुवा भवेत्।	२१-१४	अंकुरार्पण पर्याग्निक रण
३३. २	शुची वो	७-५६-१५	शुचीव इति मन्त्रेण प्रथमं मार्जयेद्ऽ गुरुः।	२८-२६	नित्ययाग
२.१	अजस्य नामावध्ये- कमिति	१०-८२-६	अजस्य नामावध्येकमिति मन्त्रेण देशिकः।	६-५७	इष्टकान्यास
६.१	आप्यायस्वेति	१-९१-१६ ९-३१-४	आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राणोति वै दधि।	२१-५५	पञ्चगव्य
१४. २	दधिक्रव्योति	४-३९-४ -४०-१	आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्रव्योति वै दधि।	२१-५५-	पञ्चगव्य
७.१	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	इदं विष्णुरिति ध्यायेत्पादुकारोहणे विभोः।	२८-२५१ -	आराधन क्रम
११	उत्तिष्ठ ब्रह्मणे ओषध्य(धय) इति	१-४०-१ १०-९७-२२	उत्तिष्ठब्रह्मणेत्येवं देवमुत्थापयेद् गुरुः स्नापयेत् बीजतोयेन ओषध्य इति मन्त्रतः।	२८ २७- -९३	आराधनक्र म स्नपनम्
१२. ३	तद्विष्णो- रिति	१-२२-२०	तद्विष्णोरिति काष्ठेन रदनान् शोधयेततः ॥	२८-२५४	आराधन क्रम
१२. ४	तद्विष्णोरि ति	१-२२-२०	पुष्पमालादिभिर्देवं तद्विष्णोरिति मन्त्रतः ॥	२८-२७३	आराधन क्रम
२१. ४	भद्रं कर्णेति	१-८९-८	भद्रं कर्णेति मन्त्रेण नयेत् स्नपनविष्टरम्।	२८-२५२	भद्रं कर्णेति

श्रीसनत्कुमार संहिता

सनत्कुमार संहिता में चर्याक्रम में अभिषेक विधि सम्पन्न करते हुए अध्याय ८ में १४ बार स्नपन संस्कार का उल्लेख वैदिक विधि और वैदिक मन्त्रों के साथ किया गया है। जिसमें प्रमुख मन्त्र है। अग्नआयाहि वीत्ये, अग्निमीले, आत्वा वहन्त्विति, आत्वा वहन्त्विति, आपो अस्मन्, आप्यायस्वेति, इदं विष्णुरिति, किमित, दधिक्राबाण्णेते, मधुवातेति, मानस्तोक, विश्वे, विष्णोर्नुकमिति, शं नो देवेरिति, सदसस्पति आदि ऋग्वेदीय ऋचाओं के आधार पर स्नपन सपर्या सम्पन्न की जाती है। इसी के नवें अध्याय में ब्रह्मकूर्म विधि का भी उल्लेख वैदिक कर्मकाण्ड और वैदिक ऋचाओं के आधार पर वर्णित है। ऐसा प्रतीत होता है कि संहिता में चर्याभाग पूर्णरूपेण वैदिक आधार पर ही सम्पन्न होता था।

श्रीसनत्कुमार संहिता ऋग्वेदमन्त्रप्रतीक वर्णानुक्रम सूची

क्र.	मन्त्र प्रतीक	मण्डल-सूक्त-मन्त्र	सनत्कुमारसंहिताध्वरण	अध्याय श्लोक	विनि-योग विषय
१.	अग्नआयाहि वीत्ये	६-१६-१०-	अग्न आयाहित वीतयेति दद्याद्रत्नोदकं ततः	८-१४५	स्नपन
२.	अग्निमीले	१-१-१ ५-१४-५ १०-२०-२	इपे त्वेति च लोहाम्मक्षग्निमीले कुशोदकम्	८-१४५	स्नपन
३.	आत्वा वहन्त्विति	१-१६-१	आत्वा वहन्त्वित्यध्यं तु ततो दद्याद्विचक्षणः	८-१४०	स्नपन
४.	आपो अस्मन्	१०-१७-१०	शुद्धोदकं तते दद्यादापो अस्मानिति तृचा	८-१४६	स्नपन
६.१	आप्यायस्वेति	१-९१-१६-१७-९-३१-४	आप्यायस्वेति च क्षीरं मधुवातेति वै मधु	८-१४२	स्नपन
७	इदं विष्णुरिति	१-२२-१७	पूर्व पाद्यं तु वै दद्याद् इदं विष्णुरिति तृचा	८-१३९	स्नपन
८	किमित	७-१००-६	सूक्तदकं ततो दद्यात्	८-१४६	स्नपन

			किमित इति चैव हि		
१०	दधिक्राबाण्णे ते	४-३९-४	दधिक्राण्णेति मन्त्रेण दधि दद्याद्विचक्षणः	८-१४१	स्नपन
११	मधुवातेति-	१-९०-६	आप्यायस्वेति च क्षीरं मधुवातेति वै मधु	८-१४२	स्नपन
१२	मानस्तोक	१-११४-८	तातो गन्धेदकादीनि मानस्तोकेर्निवेदयेत्	८-१४७	स्नपन
१३	विश्वे	१०-३५-१३	विश्वेन याम्यमागे तु न्यसेदाचमनी यकम	८-१२७	स्नपन
१४	विष्णोर्नुक- मिति	१-१५४-१	विष्णोर्नुकमिति प्राज्ञः स्नापयेन्मङ्गलाम्मसा	८-९९	स्नपन
१५	शं नो देवेरिति	१०-९-४	मार्जनं तु ततो दद्यात् शं नो देवेरिति ब्रुवन्	८-१४३	स्नपन
१६	सदसस्पति	१-१८-६	दद्यात्कषायतोयं च सदसस्पति मित्युवा	८-१४३	स्नपन
५	आपो हिष्ठेति	१०-९-१	आपो हिष्ठेति मन्त्रेण विष्णुगायत्रियापि वा	९-३२	ह्य- कथ- विधि
६.२	आप्यायस्वेति	१-९१-१६- १७- ९-३१-४	आप्यायस्वेति यजुषा मृहणीयात् क्षीरमुतमम्	९-२०	ह्य- कथ- विधि
९	दधिक्राबाणम्	४-३९-४	दधि पश्चात्प्रगृहणीयाद्दधिक्रा बाणमुच्चरन्	९-२१	ब्रह्ममकू र्थविधि

लक्ष्मीतन्त्र ऋग्वेदमन्त्रप्रतीक वर्णानुक्रम सूची

क्र.	मन्त्र प्रतीक	मण्डल-सूक्त-मन्त्र	लक्ष्मीतन्त्रोद्धरण	अध्याय श्लोक	विनियो ग विषय
१.	आर्द्राम् (पुष्करिणीम्) इति	५-८७-१३	आर्द्रामिति च मत्स्नानं कर्दमेनेति चाम्बरम् ॥	५०-३३	श्री सूक्त विधि
२.	आर्द्राम् (यः करिणीम्) इति	५-८७-१४	आर्द्रामिति च मत्स्नानं कर्दमेनेति चाम्बरम् ॥	५०-३३	श्री सूक्त विधि
३.	उपैतु	५-८७-७	गन्धद्वारेति गन्धाः स्यु उपैतु स्यादलङ्कृतिः ।	५०-३३	श्री सूक्त विधि
४.	कर्दमेनेति	५-८७-११	आर्द्रानिति च मत्स्नानं कर्दमेनेति चाम्बरम् ।	५०-३३	श्री सूक्त विधि
५.	कां सोऽस्मि	५-८७-४	कां सोऽस्मि धूपदीपौ च षष्ट्याचैवोपहारकम् ।	५०-३४	श्री सूक्त विधि
६.	गन्धद्वारेति	५-८७-९	गन्धद्वारेति गन्धाः स्यु उपैतु स्यादलङ्कृतिः ।	५०-३३	श्री सूक्त विधि
७.	मनसः काममिति	५-८७-१०	मनसः काममित्येवं मधुपकं प्रकल्पयेत् ॥	५०-३४	श्री सूक्त विधि



‘उपसंहार

भारतीय आचार और विचार की घनिष्ठ रूप से परस्पर सम्बद्ध परम्परा बहुत प्राचीन है। वैदिक वाङ्मय को प्रस्तुत करने वाले ऋषि इसके साक्षात् प्रतिनिधि हैं। आचार और विचार को मिलाकर मानव के उदात्त रूप की उपलब्धि को धर्म की अवधारणा का आधार माना गया। इसलिए ऋषि-समुदाय को इन धर्मों का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाला, साक्षात्कृत धर्माणः ऋषयः बभूवः कहा गया। वर्ण, आश्रम, यज्ञ आदि इसी के अनुरूप और इसी की अभिव्यक्ति के लिए प्रवर्तित हुए। आचार और विचार की यह अनुस्यूत विकास यात्रा निरन्तर गतिशील रही। उसका प्रभाव भारतीय वाङ्मय के प्रत्येक प्रकार पर पड़ा। समय-समय पर उसका निराकरण भी किया गया है। भारतीय दर्शन प्रस्थानों की ओर ध्यान दें तो यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाती है। अधिकारी विषय सम्बन्ध और प्रयोजन के संरचानात्मक आधार का पालन प्रत्येक प्रस्थान ने किया है। इसमें अधिकारी और प्रयोजन मुख्यतः आचार, विषय और सम्बन्ध मुख्यतः विचार के साथ निकट से सम्बद्ध हैं। वैचारिक उन्मेष इन मर्यादाओं, अपेक्षाओं तथा विविधता के साथ अभिव्यक्त हुआ भाष्यकारों और टीकाकारों ने इस विचार-क्रम को गति दी तथा उनकी संवर्धनशील विकास-यात्रा सम्पन्न की। पाश्चात्य विचारों के इतिहास में यह बात नहीं मिलती। वहाँ प्रत्येक विचारक की तरह उसका विचार भी अकेला है। कभी कोई साथी उसमें अपवाद स्वरूप जुड़ गया हो पर न तो उसमें निरन्तरता थी और न आचार के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध की रक्षा का भाव भारतीय और भारतेतर चिन्तन-परम्परा का यह गहरा एवं विभाजक अन्तर है।

वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में यह यत्किञ्चित् परोक्ष रूप से उपलब्ध है, किन्तु उपनिषद्-वाङ्मय इसका प्रत्यक्ष एवं आधार-भूत

उदाहरण है। उपनिषदों में प्राप्त संवाद और संवादकर्ता के विचार और आचार सम्पन्न प्रतिनिधित्व करते हैं।

आगम-परम्परा ने इसी आचार और विचार के आत्मीय सम्बन्ध को बहुत अन्तरङ्गता के साथ उपस्थित किया है। अन्य आगम-परम्परा के समान वैष्णव आगमों ने भी आचार को प्रधान महत्त्व दिया है। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि इन आगम संहिताओं में उपासना और अचार को क्रमशः एक यान्त्रिक परिणति तक पहुँचाने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी, तो भी गहराई से देखें तो विचार की उत्क्रान्ति उनमें पर्याप्त मात्रा में थी। उदाहरण के लिए, सृष्टि-प्रक्रिया जैसे अपेक्षाकृत स्थूल विषय की ओर ध्यान दें तो शुद्ध और उससे भिन्न अशुद्ध, प्राधानिक या मिश्र सर्ग के विकास का विवरण उपलब्ध है। उपनिषद् और तदाधारित दर्शन प्रस्थानों में सृष्टि को या तो मिथ्या माना गया या सर्वथा जड़ चतुर्व्यूह-विचार को प्रस्तुत करते हुए परात्पर वासुदेव से व्यूह वासुदेव और उनसे अन्तर और बाह्य-सृष्टि की उत्पत्ति का सिद्धान्त रखते हुए वैष्णव आगमों ने अन्य प्रस्थानों के समान सृष्टि को जड़ न मानते हुए चिन्मय विग्रह का अङ्ग माना है। वासुदेव और सृष्टि, कारण कार्य के नियम के अनुसार अभिन्न हैं, अन्तर केवल इतना है कि सृष्टि की जड़ता का कारण त्रिगुणों का उदित क्षुभित या प्रकट होना है।

बुद्धि मन और अहंकार इसी सृष्टि के अभिन्न अङ्ग हैं, आधारतः एक रूप हैं। सांख्य और कुछ सीमा तक विज्ञानवादी बौद्ध भी सृष्टि से उनके सम्बन्ध में ऐसी ही दृष्टि रखते हैं। सांख्य प्रकृति को स्वतन्त्र और सत्य मानता है, अतः सम्पूर्ण सृष्टि उसकी दृष्टि से सत्य ही है, जबकि बौद्ध विचारक उसे मिथ्या मानते हैं। पर बुद्धि मन और अहंकार जैसे आन्तरिक उपकरणों का अविभाज्य आधार के रूप ग्रहण और उपयोग एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। आगम-परम्परा में आचार बहुलता काल-गत एवं समाज-गत परिवर्तनों के कारण भी हुई है; फिर भी विचार के साथ आचार की घनिष्ठता इनमें निरन्तर बनी हुई है।

यह धारणा कुछ विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गई कि वेद और आगम एक-दूसरे के विरुद्ध हैं। वेद सम्पन्न सुसंस्कृत समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं तो आगम लोक का विशेष रूप से आदिवासी वर्ग का। इसके पक्ष में पौराणिक साक्ष्य के आधार परद तर्क भी दिए गए हैं। यहाँ उनका खण्डन-मण्डन करना अभिप्रेत नहीं हैं। केवल यह देखना प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है कि वैष्णव-आगम परम्परा के स्रोत के रूप में वैदिक वाङ्मय का अवलोकन। साथ ही यह भी देखना कि अपनी आचार-बहुल पद्धतियों में वैष्णवागम ने कितनी दूर तक वेद-वाङ्मय का आश्रय लिया है। इस प्रसङ्ग में संहिताओं के अभिमत एवं प्रयोगों की अवधारणाओं को अपेक्षाकृत विस्तार से विवेचित किया गया है।

पुरोवाक् में पीठिका के रूप में वैष्णव आगम के महत्वपूर्ण पक्षों को उद्घाटित करते हुए यजुर्वेदीक काण्व-शाखा के अन्तर्गत एकायन सम्बन्धी तथ्य प्रस्तुत किया गया है। एकायन पाञ्चरात्र परम्परा का अत्यन्त महत्वपूर्ण आधार है। इसी भाँति पाञ्चरात्र शब्द की व्याख्या-सर्वेश्वर के प्रति सर्वात्म एवं सर्व विध सम्पूर्ण स्वीकार कर लेने पर विष्णु के परात्पर वासुदेव के रूप में विकास को सहज ही ग्रहण किया जा सकता है। पाञ्चरात्र की अन्य व्याखाएं वैदिक सम्बद्धता के अतिरिक्त उपासना की ओर भी इङ्गित करती हैं। इसी भाँति वेद के अन्य सम्बद्ध विषयों के परिचय में वेद के अपौरुषेय और ज्ञानात्मक स्वरूप को ध्यान में रखना आवश्यक है। यहाँ अपौरुषेय से लोकोत्तर पुरुष लोकधिष्ठातृ पुरुष यह अभिप्राय भी आगम परम्परा द्वारा ग्रहण किया गया है। जब सभी ज्ञान और सब कुछ सत्तावान वासुदेव ही है, जब भास्वर अक्षर वर्ण भगवदंश है तब वेद-वचन की स्वतः सिद्ध है। यह भी कहा गया कि वासुदेव-विष्णु श्रुतिशिरस है श्रुति शीर्ष ही हैं। व्यक्तित्व के सर्वोत्तम अंश के रूप में वासुदेव के शीर्ष के रूप में वेद की प्रतिष्ठा वैष्णव आगम में स्वीकार्य है।

वैष्णव आगम के अन्तर्गत भागवत वैखानस सात्वत और पाञ्चरात्र में से वैखानस परम्परा प्रत्यक्ष रूप से वेद से सम्बद्ध ही है। उपलब्ध आगम संहिताओं के लेखन का कार्य परिवर्ती होने के कारण

अन्ततः सभी एक होकर पाञ्चरात्र में समाहित हो गई। इन सभी में वैखानस का सम्मिलित होना वेद का प्रत्यक्ष रूप से समरस होना ही है। पाञ्चरात्र के वैदिक उल्लेख भी इस अन्विति को प्रमाणित करते हैं।

भज् धातु से विष्णु भक्ति या अन्य अनेक शब्द ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक साहित्य में बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त होते हैं। वे यद्यपि भक्ति के उस अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुए हैं जिस अर्थ में वैष्णव आगम में प्रयुक्त हैं; फिर भी वेद के मन्त्र में ऋषि, छन्द के साथ देवता की अनिवार्यता, सूक्तों में भक्ति का प्राण शरणागति का प्राचीन रूप वेद-वचनों में स्पष्टतः देखा जा सकता है।

वेद - वाङ्मय के आधारभूत एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्ग मन्त्र हैं। मन्त्रों की ही संहिताएं हैं, व्यख्यान ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, दर्शन उपनिषद् हैं। मन्त्र में भी अक्षर वर्ण का निवेश है। ऐसी दशा में मन्त्र और उसके भी अक्षर एवं वर्ण इतने महत्त्वपूर्ण हो गए कि उन्हें भी शब्द-ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया। वैष्णव आगम भी मैत्रायणी उपनिषद् का अनुसरण करते हुए यह मानता है कि शब्द-ब्रह्म में निष्क्रान्त होने पर ही पर-ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है। मन्त्र की महत्ता के वक्तव्य प्रत्येक वैष्णव संहिता में अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध हैं। ऐसा वैष्णव आगम में कोई अनुष्ठानिक विधान नहीं है जिसमें वेद-मन्त्रों का प्रयोग न किया जाता है।

प्रणवाक्षर ॐ तथा कुछ अन्य अक्षर अथवा वर्ण, ब्राह्मण और उपनिषद् वाङ्मय में प्रतीक के रूप में वर्णित हैं इन प्रतीक ध्वनियों का महत्त्व बार-बार वेद-वाङ्मय में प्रतिपादित किया गया है। यही कारण है कि वैष्णव आगम में मन्त्र के अङ्गभूत इन अक्षरों की प्रतीकात्मक व्याख्या के निमित्त सृष्टि, आचार, उपासना तथा दार्शनिक तत्त्वों को प्रस्तुत किया गया है। आगम ग्रन्थों की वर्णान्नाय की यह प्रतीकात्मक व्याख्या विविध व्यापक तथा रहस्यात्मक होने के कारण विलक्षण है।

विष्णु के अतिरिक्त पुरुष, हिरण्यगर्भ तथा अन्य अनेक देवता जो परवर्तीकाल में वासुदेव से एकीकृत हो गए अथवा सङ्कर्षण में समाहित हो

गए। विष्णु से वासुदेव और रुद्र से सङ्कर्षण का एकीकरण उल्लेखनीय है। वैदिक देव-तत्त्व के सम्बन्ध में ऐसे अनेक सन्दर्भ मिलते हैं इन्द्र, वरुण, रुद्र, सविता, मित्रावरुण, अर्यमा, विश्वकर्मा तथा अन्य कई सूक्त हैं जिन्हें उन्हें ही एक मात्र महत्त्वपूर्ण नियन्ता एवं सृष्टिकर्ता, सर्वाधिक बलशाली आदि गुणों से युक्त बताया गया है। इसी तरह के सन्दर्भों के आधार पर अध्येताओं में वेद में एकेश्वरवाद की प्रस्थापना की है। इन सन्दर्भों में जो दृष्टि ब्रह्म के रूप में प्राप्त होती है वहीं वैष्णव आगम में वासुदेव के रूप में 'यह एकेश्वरत्व की धारणा' इसी तरह विकसित हुई षाड्गुण्य सिद्धान्त इसी का स्वाभाविक प्रतिफलन है।

वैदिक ऋषियों के व्यक्तित्व के आकलन के लिए जैसे बृहदेवता, सर्वानुक्रमणिका एवं पुराण महत्त्वपूर्ण हैं वैसे ही वैष्णव आगम की संहिताएं भी हैं और इनमें नारायण, लक्ष्मी, सङ्कर्षण आदि से ज्ञान प्राप्त कर वितरित करने वाले आचार्यों को यह प्रस्तुत करती है। इन सभी आचार्यों में, उनका मूल वैदिक रूप तो प्राप्त होता है; इनमें साथ में आगमिक दृष्टि से उनके व्यक्तित्व का विकास भी दृष्टि गोचर होता है।

यह ग्रन्थ वस्तुतः दो महासागरों के परस्परिक सम्बन्ध के आकलन का एक असम्भव कार्य है। वैदिक वाङ्मय ऐसी विशाल-विराट् ग्रन्थ राशि है, कि उसके उपलब्ध साहित्य के ही प्रति पाठ में इतना नया मिलता है, कि उसे समेटना असम्भव ही है। इसके अतिरिक्त उसमें निहित ज्ञान-रत्नों की प्राप्ति की सम्भावनाएं तो अनन्त हैं। इसका प्रभाव भारत के प्रत्येक वाङ्मयीन, तकनीकी, वैज्ञानिक एवं कला रूपों में प्रत्यक्ष दृश्य है। विश्व में सम्भवतः ऐसा कोई वाङ्मय नहीं है जो इतने दीर्घकाल तक इतने विविध क्षेत्रों को प्रभावित करता रहा हो। अतः आगम परम्परा पर उनका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ना सहज स्वाभाविक है।

उस तरह जब आगम-ग्रन्थ राशि की ओर ध्यान देते हैं तो एक विशाल जन भण्डार का उद्घाटन होता है। वैष्णव आगम भी इसी संग्राहक प्रकृति के हैं। दार्शनिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त उपासना, अनुष्ठान,

देव-मन्दिर और देव-प्रतिमा से सम्बद्ध जानकारीयाँ इतने विपुल परिमाण में हैं कि उनको पूरी तरह देख और समझ पाना कथमपि सम्भव नहीं है। अतः यह प्रयत्न केवल अङ्गुलि-निर्देश तक सीमित है। उसी दृष्टि से इस में सामग्री सङ्कलन और विवेचन हो पाया है। विराट् रूप सम्पन्न दोनों वाङ्मयों का पूरी तरह अध्ययन करके तुलनात्मक प्रभाव का आकलन करना किसी व्यक्ति के लिए तो सम्भव ही नहीं है। संस्थागत प्रयत्न को भी बहुत बड़ी समय सीमा लगेगी।

वैदिक-वाङ्मय के सम्बन्ध में विविध दृष्टियों से पर्याप्त काम हो चुका है, हो रहा है और आगे भी निरन्तर होने की सम्भावना भी है। परन्तु आगम-ग्रन्थों, विशेषतः वैष्णव आगम में, अभी आधार भूत कार्य भी सम्पन्न नहीं हुआ है। दार्शनिक सिद्धान्तों तथा अन्य उपासना परक पक्षों के अतिरिक्त मन्दिर-निर्माण एवं प्रतिमा स्थापनादि की दृष्टि से अभी बहुत कार्य शेष है। साथ ही, पाञ्चरात्र की अङ्ग-भूत सभी वैखानस, भागवत, सात्वत आदि धाराओं की ऐतिहासिक स्थिति खोजना भी दुराराध्य कार्य है जो अभी भी अवशिष्ट है। इसके अतिरिक्त संहिताओं को अलग-अलग अध्ययन भी अभी प्रतीक्षित है। विष्णु-वासुदेव के महत्त्वाधान का यह प्रयत्न प्रारम्भिक उपक्रम की दृष्टि से विद्वज्जन द्वारा दृष्टव्य है।

परिशिष्ट क्रं. १

पारभाषिक शब्द

१.	प्रतिमा-रत्नजा-(त्रिविधा)	१. सौम्या २. आग्नेयी ३. समा
२.	प्रतिमाकर्म (त्रिविधम्)	१. चित्रम् २. अर्धचित्रम् ३. चित्राभासम्
३.	मूर्तयः (तिस्रः)	१. विश्वरूपमूर्ति २. यज्ञमूर्तिः ३. वेदमूर्तिः
४.	वर्णसंयोगः (त्रिविधः)	१. वर्णः २. अनुवर्णः ३. संकरः
५.	शयनम् (त्रिविधम्)	१. क्षौमम् २. कार्पासकम् ३. ऊर्णामयम्
६.	शिला (चतुर्विधा)	१. वारुणी २. माहेन्द्री ३. आग्नेयी ४. वायवी
७.	उत्सवः (पञ्चविधः)	१. ब्राह्मः २. शैव ३. ऐन्द्रः

		४. आर्षकः ५. दैविकः
८.	वर्णाः (पञ्च)	१. श्वेतः २. पीतः ३. रक्तः ४. हरितः ५. कृष्णः
९.	विमानम् (पञ्चविधम्)	१. मन्दरम् २. निषधम् ३. नागरम् ४. द्रविडम् ५. वेसरम्
१०.	आचनीयाङ्गनि (षट्)	१. कर्पूरः २. जातिः ३. कक्कोलः ४. पुष्पम् ५. एला ६. लवङ्ग
११.	परार्थपूजाकालाः (षट्)	१. प्रातः २. मध्याह्न ३. सायाह्न ४. प्रदोषः ५. अर्धरात्रम् ६. उषस्
१२.	पाद्याङ्गनि (षट्)	१. तुलसी २. पद्मम् ३. दूर्वा ४. श्यामाकः

		५. विष्णुपर्णिका ६. बिल्वपत्रम्
१३.	प्रतिमाः (षट्)	१. मूलबेरम् २. कर्मार्चा ३. नित्योत्सवः ४. महोत्सवः ५. स्नपनार्चा ६. तरुणालयार्चा
१४.	अग्निजिह्वाः (सप्त)	१. काली २. कराली ३. मनोजवा ४. लोहिता ५. सुधूम्रा ६. स्फुलिङ्गिनी ७. विश्वरूपा
१५.	विष्णुमातरः (सप्त)	१. वागीश्वरी २. क्रिया ३. कीर्तिः ४. लक्ष्मीः ५. सृष्टिः ६. विद्याः ७. कान्तिः
१६.	अक्षतोदकाङ्गानि (अष्टौ)	१. नीवारः २. वैणवः ३. यवः ४. सर्षपः ५. माषः ६. प्रियङ्गुः

		७. तण्डुलः ८. ब्रीहिः
१७.	अर्घ्याङ्गानि (अष्टौ)	१. यवः २. गन्धः ३. फलम् ४. पुष्पम् ५. सिद्धार्थः ६. अक्षतः ७. कुशग्राणि ८. तिलः
१८.	फलोदकाङ्गानि (अष्टौ)	१. बिल्वम् २. आमलकम् ३. नारिकेलम् ४. आमलकम् ५. नारिकेलम् ६. ह्वयम् ७. बीजपूरकम् ८. पनसम् ९. आम्रम्
१९.	मङ्गलानि (आष्टौ)	१. शङ्खः २. चक्रम ३. पताका ४. श्रीवत्सः ५. दर्पणः ६. वृषः ७. मत्स्ययुग्मम् ८. कुम्भः
२०.	विद्येश्वराः (आष्टौ)	१. वाराहः

		२. नारसिंह ३. श्रीधर ४. ह्यशीर्षक ५. जामदग्न्य ६. रामः ७. वामनः ८. वासुदवः
२१.	समिधः (अष्टौ)	१. पलाशः २. खदिरः ३. अश्वत्थः ४. प्लक्ष ५. न्यग्रोधः ६. बिल्व ७. उदुम्बरः ८. कार्शमर्यः
२२.	लोहोदकाङ्गानि (आष्टौ)	१. सुवर्णः २. रजतः ३. ताम्र ४. आयसः ५. त्रपुकम् ६. फलम् ७. कनकचूर्णम् ८. पित्तलम्
२३.	रत्नानि (नव)	१. वज्रम् २. मौक्तिकम् ३. वैदूर्यम् ४. शङ्ख ५. स्फाटिकम्

		६. चन्द्रकान्तम् ७. महानीलम् ८. माणिक्यम्
२४.	रत्नानि (नव)	१. इन्द्रनीलम् २. मरतकम् ३. स्फटिकम् ४. वज्रम् ५. पद्मरागम् ६. प्रवालम् ७. वैडूर्यम् ८. मुक्ता ९. माणिक्यम्
२३.	अर्घ्याङ्गानि (दश)	१. ब्रीहः २. तण्डुलः ३. सिद्धार्थः ४. गन्धः ५. पुष्पम् ६. फलम् ७. पयः ८. तिलः ९. यवः १०. कुशः
२४.	मार्जनोदकाङ्गानि (दश)	१. शिरीषम् २. कुशः ३. राजववर्तनी ४. सूर्यववर्तनी ५. भूस्तृणम् ६. सदाभद्रा

		७. असनम् ८. तुलसीद्वयम् ९. तुलसीद्वयम् १०. सहदेवी
२५.	मूर्तयः (दश)	१. मत्स्यः २. कूर्मः ३. वराहः ४. नारसिंह ५. वामनः ६. जामदग्निः ७. रामः ८. बलरामः ९. कृष्णः १०. कल्कीविष्णुः
२६.	रत्नोकाङ्गनि (दश)	१. वज्रम् २. प्रवालम् ३. मुक्ता ४. वैदूर्यम् ५. मरकतम् ६. मणिः ७. पुष्यकम् ८. ब्रह्मरागम् ९. इन्द्रनीलम् १०. गारुडम्
२८.	उपचारः (एकादश)	१. आवाहम् २. आसनम् ३. अर्घ्यम् ४. पाद्यम्

		५. आचमनम् ६. गन्धः ७. पुष्पम् ८. धूपः ९. दीपः १०. निवेदनम् ११. उद्घासनम्
२९.	अङ्कुरबीजानि (द्वादश)	१. तिलः १. मुद्गः २. माषः ३. निम्बः ४. निष्पावः ५. शालिः ६. यवः ७. श्यामाकः ८. नीवारः ९. कुलुत्थः १०. कङ्कुः ११. सर्षपाः
३०.	कषायोदकाङ्गानि (द्वादश)	१. न्यग्रोधः २. अश्वत्थः ३. शमी ४. प्लक्षः ५. जम्बू ६. कपित्थ ७. खादिरः ८. उदुम्बर ९. मधूकः

		१०. विकङ्कतः ११. बिल्वः १२. पलाशः
३१.	गन्धोदकाङ्गानि (द्वादश)	१. दशीरम् २. कुष्ठम् ३. कुडकुमम् ४. चन्दनम् ५. अगरुः ६. देवदारुः ७. मांसीरम् ८. मुरम् ९. हरिबेरः १०. कर्पूरम् ११. नाटरम् १२. मुक्ता
३२.	फलोकदाङ्गानि (द्वादश)	१. पनसम् २. आम्रम् ३. कपित्थम् ४. कदली ५. आमलकम् ६. बिल्वम् ७. ह्वयम् ८. मातुलुङ्गम् ९. नालिकेरम् १०. दाडिमम्

परिशिष्ट क्रं. २

श्रीपाञ्चरात्रे पाद्मसंहितायां स्नपनविधिः

त्रैविध्यम् स्नपनविधिः

(1) उत्तमोत्तमस्नपनविधिः

मध्य ब्रह्मपदे ८१ कलशाः तत्परितः दिव्यपदे अष्टदिक्षु प्रतिदिशं ४९ कलशाः। ब्रह्मपदे स्थितेषु कलशेषु, द्रस्यकलशाः सप्तदश (१७); दिव्यपदे अष्टासु दिक्षु प्रतिदिशं वर्तमानेषु ४९ कलशेषु एकैकः द्रव्यकलशः। एवं द्रव्यकलशाः (१७+८) २५; शुद्धोदक कलशाः ४४८ आहत्य कलशाः (४४८ + २५) ४७३। एतदुत्तमोत्तमम्।

पूर्वोक्त २५ द्रव्यकलशै सह, शुद्धोदक कलशेषु अर्धहीने सति (२२४+२५) २४९ कलशः उत्तममध्यमम्। शुद्धोदककलशान् विहाय, केवलं २५ द्रव्यकलशस्थापने उत्तमाधमम्।

(2) मध्यमोत्तमस्नपनविधिः

मध्य ब्रह्मपदे ८१ कलशाः; तत्परितः चतसृषु दिक्षु प्रत्येक ४९ कलशाः एषु ब्रह्मपदे १७ द्रव्यकलशाः। चतसृषु दिक्षु ४ द्रव्यकलशाः। शुद्धोदक कलशाः २५६। आहत्य (२५६ + १७ + ४) २७७ कलशाः। इदं मध्य-मोत्तमस्नपनं।

शुद्धोदक कलशेषु अर्धहीने सति (१२८+२१) १४९ कलशाः। इदं मध्यममध्यमम्। शुद्धोदक कलशान् विहाय केवल २१ द्रव्यकलश स्थापने मध्यमाधमम्।

(3) अधेमोत्तमम्

मध्ये ब्रह्मपदे ८१ कलशाः। अत्र १७ द्रव्यकलशाः। अन्ये ६४ शुद्धोदककलशाः। (६४+१७) = ८१ कलशाः इदं अधेमोत्तमम्। चतुष्पष्टि शुद्धोदकेषु अधिहीने (३२+१७)४९ कलशाः अधममध्यमम्।

सर्वत्र शुद्धोदककलश हीने, केवलं १७ द्रव्यकलशस्थापने अधमाधमम्।

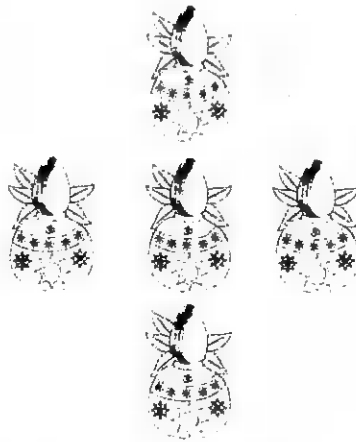
स्नपनविधिः

क्रं.	संहिता नामानि	अध्यायः
१.	अनिरुद्ध संहिता	१९
२.	ईश्वर संहिता	१५
३.	कपिञ्जल संहिता	१३
४.	नरदीय संहिता	२०
५.	पञ्च प्रश्न संहिता	पटक ८
६.	परम संहिता	२१
७.	पाद्म संहिता (चर्या)	८, ९
८.	पारमेश्वर संहिता	१४
९.	पुरुषोत्तम संहिता	२९
१०.	भार्गवतन्त्र	२०
११.	विश्वामित्र संहिता	१९, २०
१२.	विष्णुतत्त्व संहिता	३८
१३.	विष्णु तन्त्र	५१, ५२, ५३
१४.	विष्णु संहिता	२६
१५.	विष्वक्सेन संहिता	२२
१६.	मार्कण्डेय संहिता	२७
१७.	श्री प्रश्न संहिता	२८
१८.	सनत्कुमार संहिता (शिवरात्र)	८

१९.	हयशीर्ष संहिता (प्रतिष्ठा काण्ड)	८४
२०.	हयशीर्ष संहिता (आदिकाण्ड) (सौरकाण्ड)	३६ ३७

(1) पञ्चकलशस्नपनविधि:

पञ्चोपनिषदा पञ्चगव्यस्नपनं



क्रं.	पञ्चत्रानि	पञ्चद्रव्ययाणि	पञ्चगव्यानि	पञ्चलाहं
१.	प्रवालः	दधि	दधि	रजतं
२.	मुक्ता	पयः	क्षीरं	ताम्रं
३.	वज्रं	मधु	गोमूत्रं	कांस्यं
४.	वैदूर्यं	गुडं, फलं वा	शकृत्	अयः
५.	मणिः	आज्यं	आज्यं	स्वर्णं

क्र.	स्नपनमन्त्राणि	आह्वन देवताः
१.	दधिक्राविष्णो	विष्णुः
२.	आप्यायस्वेति	मधुसूदनः
३.	विष्णुगायत्री	त्रिविक्रमः
४.	गन्धद्वारां	वामनः
५.	घृतस्नातेति	वासुदेवः

(४) षोडशकलशस्नपनविधिः

क्र.	छव्याणि	देवताः	स्नपनमन्त्राः
१.	रत्रोदकं	पुरुषः	चन्द्रमामनसो + वायुरजायत
२.	लोहतोर्यं	सत्यः	नाभ्या असीत् + अकल्पयन्
३.	गन्धेदकं	अच्युतः	सप्तास्यासन् + पुरुषं पशुं
४.	टाज्यं	अनन्तः	यज्ञेन यज्ञं + सन्ति देवाः
५.	पाद्यं	केशवः	सहस्रशीर्षा + दशाङ्गुलं
६.	अर्घ्यं	नारायण	पुरुष एवेदं + अतिरोहिति
७.	आचमनं	माधवः	एतावानस्य + अमृतं दिवि
८.	पञ्चगव्यं	गोविन्दः	त्रिपादूर्ध्वः शने अभि
९.	अमृतोदकं	विष्णुः	तस्माद्विगडजायत + अथोपुर
१०.	मार्जनोदकं	मधुसूदनः	यत्पुरुषेण हविषा + शरद्विः
११.	कषायं	त्रिविक्रम	ते यज्ञं बर्हिषि + ऋषयश्च ये
१२.	कुशोदकं	वामनः	तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः + ग्राम्याश्च ये
१३.	दधि	श्रीधरः	तस्माद्यज्ञात् अजायत
१४.	क्षीरं	हृषीकेशः	तस्मादश्वा अजायन्त + अजावयः
१५.	मधु	पद्मनाभः	यत्पुरुषं व्यदधुः + पादवुच्येते
१६.	यवोदकं	दामोदरः	ब्राह्मणोऽस्य मुख + शूद्रो अजायत

(7) एकोत्तराशीतिकलशस्नपनविधिः

क्र.	द्रव्याणि	स्नपनमन्त्राः	आह्वनदेवताः
१.	घृतं	घृतस्नातेति	वासुदेवः
२.	उष्णोदकं	ताद्विष्णोरिति	पुरुषः
३.	फलोदकं	याःफलिनीरिति	सत्यः
४.	मार्जनोदकं	शन्नोदेवीरिति	अच्युतः
५.	अक्षतोदकं	सावित्री	अनन्तः
६.	रत्रोदकं	त्रातारमिन्द्र इति	केशवः
७.	लोहतोयं	अष्टाक्षरी	नारायणः
८.	गन्धोदकं	गन्धद्वारेति	माधवः
९.	यवोदकं	शतधारेति	गोविन्दः
१०.	पादं	विष्णुगायत्री	विष्णुः
११.	अर्घ्यं	तद्विष्णोरिति	मधुसूदनः
१२.	आचमनं	न ते विष्णुरिति	त्रिविक्रमः
१३.	पञ्चगव्यं	विष्णोः कर्माणि	वामनः
१४.	दधि	दधिक्राविष्णोरिति	श्रीधरः
१५.	क्षीरं	आप्यायस्व	हृषीकेशः
१६.	मधु	मधुवाता ऋतापते	पद्मनाभः
१७.	कषायाम्बु	ओषध्य इति	दामोदरः

द्रव्यकलशाः सप्तदश एव । इतर ६४ कलशः शुद्धोदकः नारायणदेवाता
अष्टाक्षरी मन्त्रश्च ।

अष्टोत्तरशतकलशस्नपन द्रव्याणि आहूतदेवताश्च

क्र.	द्रव्याणि	स्नपनमन्त्राः	आहूतदेवताः
१.	घृतं	घृतस्नातेति	वासुदेवः
५.	उष्णोदकं	ताद्विष्णोरिति	पुरुषः
९.	फलोदकं	याःफलनीरिति	सत्यः
१३.	मार्जनोदकं	शन्नोदेवीरिति	अच्युतः
१७.	अक्षतोदकं	सावित्री	अनन्तः
२१.	रत्रोदकं	त्रातारमिन्द्र इति	केशवः
२५.	लोहतोयं	अष्टाक्षरी	नारायणः
२९.	गन्धोदकं	गन्धद्वारेति	माधवः
३३.	यवोदकं	शतधारेति	गोविन्दः
३७.	पादं	विष्णुगायत्री	विष्णुः
४६.	अर्घ्यं	तद्विष्णोरिति	मधुसूदनः
५५.	आचमनं	न ते विष्णुरिति	त्रिविक्रमः
६४.	पञ्चगव्यं	विष्णोः कर्माणि	वामनः
७३.	दधि	दधिक्राविष्णोरिति	श्रीधरः
८२.	धीरं	आप्यायस्व	हृषीकेशः
९१.	मधु	मधुवाता ऋतापते	पद्मनाभः
१००.	कषायाम्बु	ओषध्य इति	दामोदरः

इतर एकोत्तर नवति शुद्धोदककलशानां देवता नारायणः अष्टाक्षरी मन्त्रः ।

परिशिष्ट 3

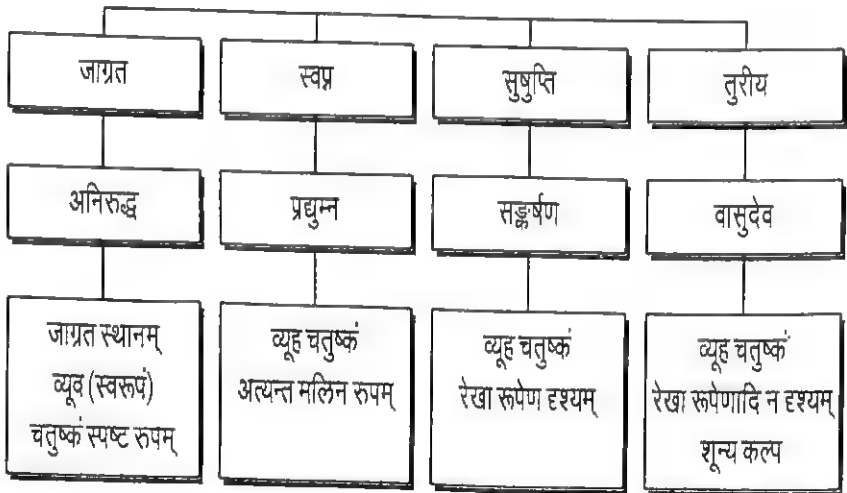
सात्वत, अहिर्बुध्न्य एवं लक्ष्मीतन्त्र में विभवादि के नाम

संख्या	सात्वत संहिता	अहिर्बुध्न्य संहिता	लक्ष्मी तन्त्र
१.	पद्मनाभ	पद्मनाभ	पद्मनाभ
२.	ध्रुव	ध्रुव	ध्रुव
३.	अनंत	अनंत	अनंत
४.	शक्त्यात्मा	शक्त्यात्मन्	शक्तीशः
५.	मधुसूदन	मधुसूदन	मधुसूदन
६.	विद्याधिदेव	विद्याधिदेव	विद्याधिदेव
७.	कपिल	कपिल	कपिल
८.	विश्वरूप	विश्वरूप	विश्वरूप
९.	विहगंम	विहगंम	विहगंम
१०.	क्रोडात्मा	क्रोडात्मा	क्रोडात्मा
११.	बडवावक्त्र	बडवावक्त्र	बडवावक्त्र
१२.	धर्म	धर्म	धर्म
१३.	वागीश्वर	वागीश्वर	वागीश्वर
१४.	एकार्णाववश	एकार्णाबशायिन	एकार्णावान्तः शायी
१५.	कूर्म	कमठेश्वर	कमठ
१६.	वाराह	वराह	यज्ञवराह
१७.	नरसिंह	नारसिंह	नृसिंह
१८.	अमृताहरण	पियूषाहरण	अमृताहरण
१९.	श्रीपति	श्रीपति	श्रपति

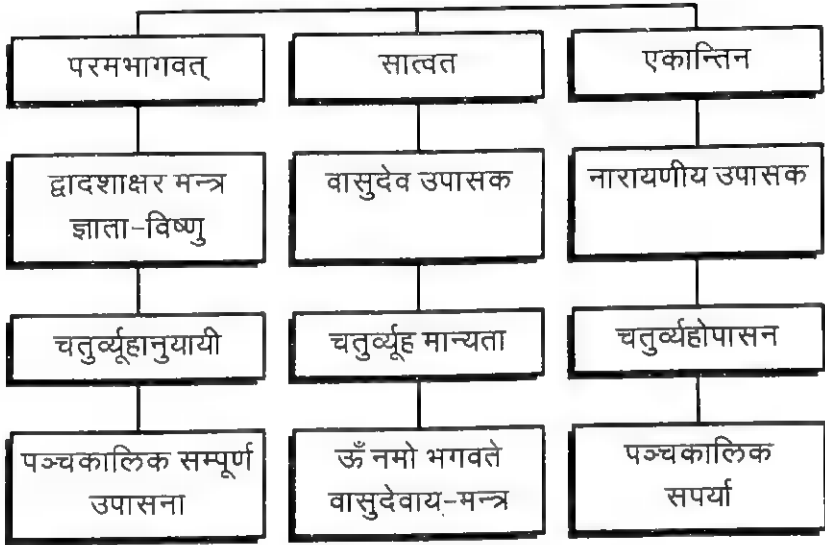
२०.	कान्तात्मा	कान्तात्मन्	कान्तात्मा
२१.	राहुजित्	राहुजित्	राहुजित्
२२.	कालनेमिध्न	कालनेमिध्न	कालनेमिध्न
२३.	पारिजातहर	पारिजातहर	पारिजातहर
२४.	लोकनाथ	लोकनाथ	लोकनाथ
२५.	शान्तात्मा	शान्तात्मन्	
२६.	दत्तात्रेय	दत्तात्रेय	दत्तात्रेय
२७.	न्यग्रोधशायी	न्यग्रोधशायिन्	न्यग्रोधशायी
२८.	एकाशृंगतनु	एकाशृंगतनु	एकाशृंगतनु
२९.	वामनदेह	वामनदेह	वामनः
३०.	त्रिविक्रम	थत्रविक्रम	त्रिविक्रम
३१.	नर	नर	नर
३२.	नारयण	नारयण	नारयण
३३.	हरि	हरि	हरि
३४.	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण
३५.	परशुधृगराम	परशुराम	परशुराम
३६.	रामधनुर्धर	रामधनुर्धर	श्रीराम
३७.	वेदविद्	वेदविद्	कल्कि
३८.	कल्की	कत्विन्	कल्कि
३९.	पातालशयन	पातालशयन	पातालशयनः

परिशिष्ट 4

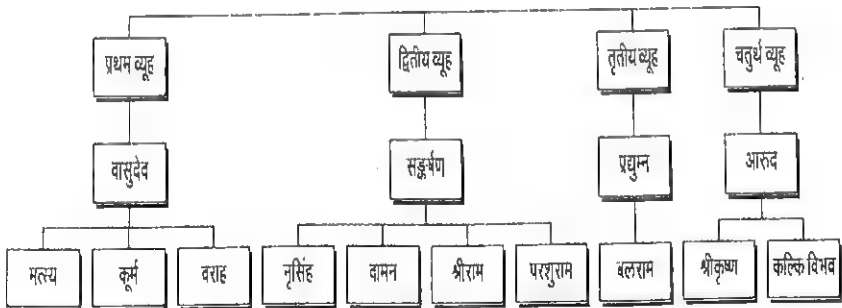
विशाखयूप



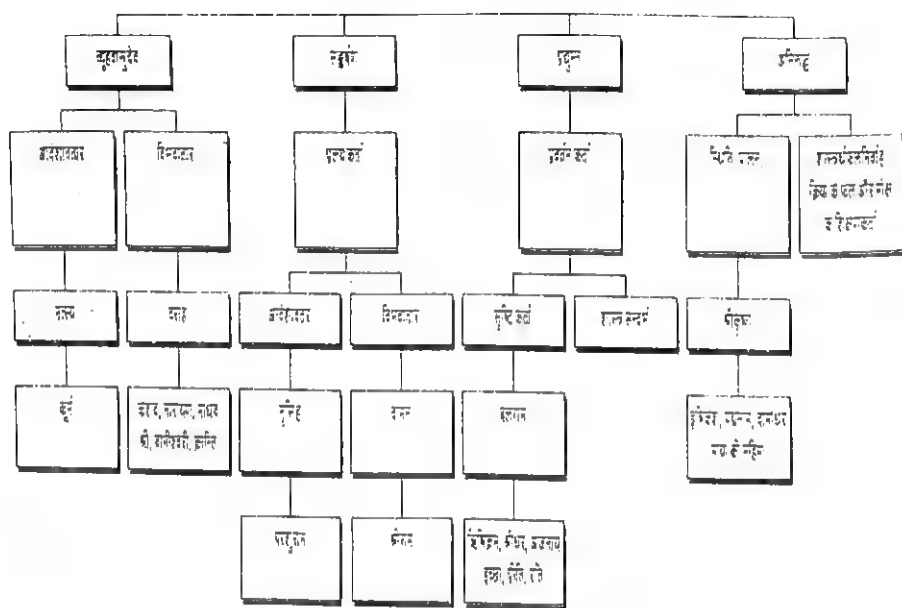
पाञ्चरात्र सम्प्रदाय के अनुयायी



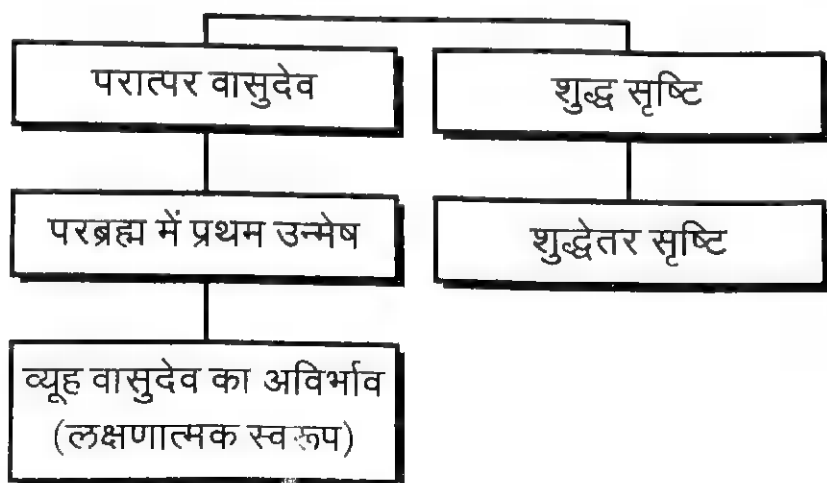
विशाखयूप की स्फूर्ति



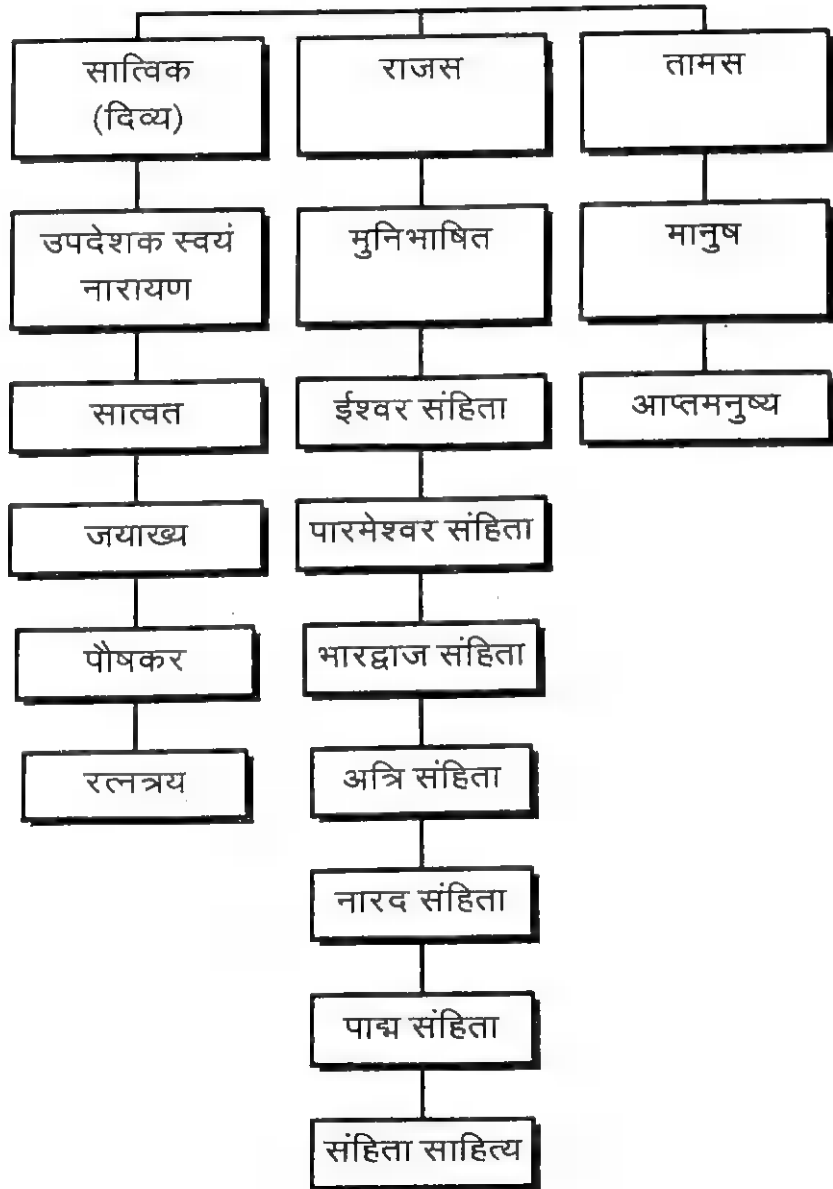
विश्वव्यूह



चातुरात्म्य व्यवस्था

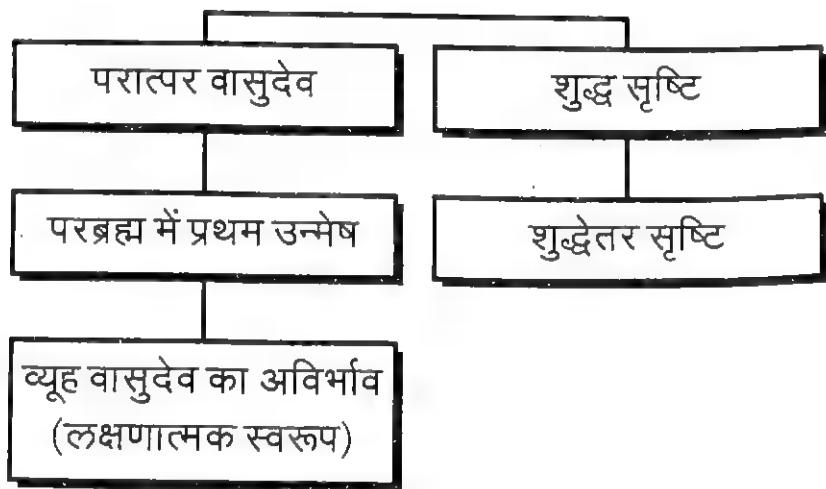


पाञ्चरात्र शास्त्र के भेद

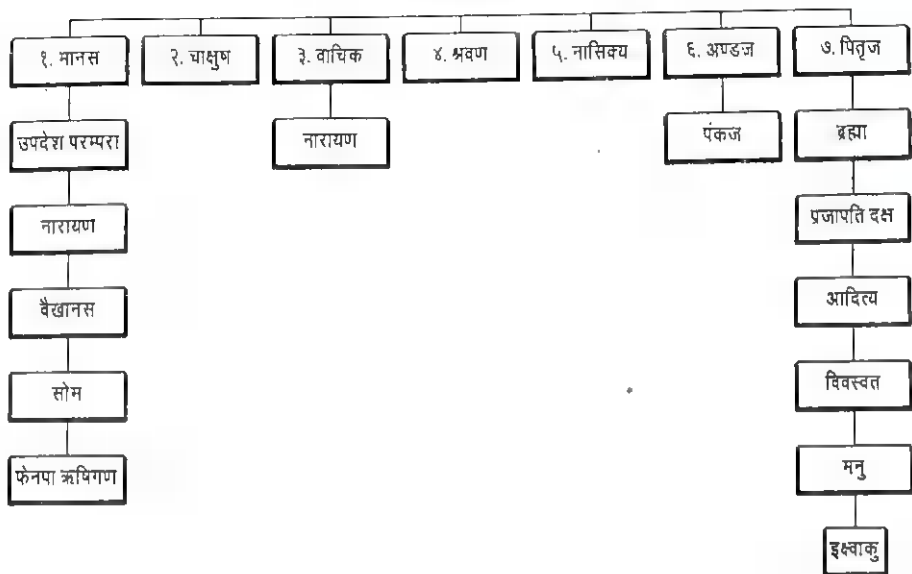


चतुरात्म चतुर्व्यूह

चातुरात्म्य व्यवस्था



ब्रह्मा के सात जन्म



सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

वैदिक वाङ्मय

ऋग्वेद	(क) सायण भाष्य, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना १९९३-३५ (ख) हिन्दी भाषान्तर रामगोविन्द त्रिवेदी, प्रयाग १९५४ (ग) सुबोध भाष्य, दामोदर सातवलेकर, स्वध्याय मण्डल, पारडी (सूरत), १९५०
अथर्ववेद	सुबोध भाष्य, दामोदर सातवलेकर, स्वध्याय मण्डल, पारडी (सूरत), १९५०
यजुर्वेद	सुबोध भाष्य, दामोदर सातवलेकर, वैदिक स्वध्याय मण्डल, पारडी (सूरत)
ईशोपनिषद्	शांकर भाष्य सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०१६
ऐतरेय ब्राह्मण	टांगल-अनुवाद, यमहाग, बम्बई, १८६३
कठोपनिषद्	शांकर भाष्य सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०१६
कौषीतकि ब्राह्मण	टै. बी. कॉवेल, कलकत्ता, १८६१
छन्दोग्योपनिषद्	हरिनारायण आप्टे, अनन्दाश्रम, पूना, १९१३
बृहदारण्यक-उपनिषद्	शांकर भाष्य सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०२५
महानारायण उपनिषद्	द्वारिका दास शास्त्री, प्राच्य भारती प्रकाशन, वाराणसी १९६५

शतपथ ब्राह्मण	सायण तथा हरिस्वामी भाष्य सहित, बम्बई, १९५०
श्वेताश्वतर उपनिषद्	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३९
बृहद्देवता	चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६३

महाकाव्य, पुराण

महाभारत	(क) गीताप्रेस, गोरखपुर (ख) श्रीपाद बेलवलकर, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना
भगवद्गीता	गीताप्रेस, गोरखपुर
अग्निपुराण	सम्पादक - हरिनारायण आप्टे, आनन्दश्रम प्रेस, पूना, १९००
गरुडपुराण	सम्पादक - रामतेज पाण्डेय, पंडित पुस्तकालय, काशी १९६३
पद्मपुराण	सम्पादक - हरिनारायण आप्टे, आनन्दश्रम प्रेस, पूना, १८९३-९४
ब्रह्मवैवर्त पुराण	टानन्दश्रम संस्कृत ग्रन्थावली
भगवत् पुराण	गीता प्रेस, गोरखपुर
मार्कण्डेय पुराण	सम्पादक - के. एम. बनर्जी, बिंबिलओथिका इंडिका सीरीज, कलकत्ता, १९६२
वराह पुराण	सम्पादक - पंडित हृषीकेश शास्त्री, कलकत्ता
वायु पुराण	सम्पादक - राजेन्द्र लाल मित्र, कलकत्ता, १८८८
विष्णु पुराण	सम्पादक - मुनिलाल गुप्त, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०१४
विष्णु धर्मोत्तर पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं. १९६९

शिवपुराण	गीता प्रेस, गोरखपुर
स्कन्द पुराण	क्षेमराज कृष्णदास प्रेस, बम्बई, १९०९
नारद-स्मृति	सम्पादक-जाली, कलकत्ता, १८८५
मनुस्मृति	सम्पादक-पी.एच.पण्ड्या, निर्णय सागर, प्रेस, बम्बई, १९१३
याज्ञवल्क्य-स्मृति	सम्पादक-वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री, बम्बई १९२६
विष्णु-स्मृति	सम्पादक- एम.एन.दत्त, कलकत्ता, १९०९

पाञ्चरात्र संहिताएं

अगस्त्य-संहिता	सम्पादक-वैष्णवरामनारायण, प्रकाशक-सेठ छोटीलाल लक्ष्मीचन्द बुकसेलर, अयोध्या, मुद्रित-जैन प्रेस, लखनऊ १८९८
अनिरुद्ध-संहिता	सम्पादक-अ. श्रीनिवास आर्यंगर, प्रकाशक-सम्पादक स्वयं, मैसूर, १९५६
अहिर्बुध्न्य-संहिता	(पाञ्चरात्रागम, दो भागों में) द्वितीय संस्करण, सम्पादक एम.डी. रामानुजाचार्य, प्रकाशक-अड्यार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर, मद्रास, १९८६
ईश्वर-संहिता	सम्पादक-पी.वी. अनन्ताचार्य स्वामी, सुदर्शन प्रेस, कांजीवरम्, १९२३
कश्यप-संहिता	सम्पादक-श्री यतिराज सम्पतकुमार मुनि, मेलेकोटे; प्रकाशक सम्पादक स्वयं, कबीर प्रिंटिंग वर्क्स, त्रिपली केन, मद्रास, १९३३
जयाख्य-संहिता	(द्वितीय संस्करण, पुनर्मुद्रित), सम्पादक-एम्बारकृष्णमाचार्य, प्रकाशक-ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, बडौदा, १९६७
नारदीय-संहिता	सम्पादक-राघवप्रसाद चौधरी,

	प्रकाशक-केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति, १९७१
नारद-पाञ्चरात्र	सम्पादक-श्रीनाथ चन्द्र शिरोमणि, प्रकाशक-सम्वाद ज्ञान, रत्नाकर प्रेस, कलकत्ता, १८८७
परम-संहिता	अनुवादक एवं सम्पादक, एस. कृष्णास्वामी आयंगर, प्रकाशक-ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, १९४०
पाद्म-संहिता	(भाग-१), सम्पादक-श्रीमती सीता पद्मनाभन तथा आर. एन. सम्पत्, प्रकाशक-पाञ्चरात्र परिशोधन परिषद्, मद्रास, १९७४
पाद्म-संहिता	(भाग-२), सम्पादक-श्रीमती सीता पद्मनाभन तथा डॉ. वी. वरदाचारी, प्रकाशक-पाञ्चरात्र परिशोधन परिषद्, मद्रास, १९८२
पारमेश्वर-संहिता	श्री यू. के. गोविन्दाचार्य, प्रकाशक-सम्पादक स्वयं, मुद्रित-श्रीविलासम् प्रेस, श्री वंगय, १९५३
पौषकर-संहिता	सम्पादक-एच. एच. श्री मंतिराज सम्पत् कुमार रामानुज मुनि, मेलकोटे, प्रकाशक -ए. श्रीनिवास तथा एम. सी. थिरूमल चैरियर, बंगलौर, १९३४
बृहद् ब्रह्म-संहिता	सम्पादक-बेन गावकर शंकर शास्त्री, प्रकाशक-आनन्दाश्रम प्रेस, पूना, १९१२
भारद्वाज-संहिता	सम्पादक-पंचनदीय वेदान्त गोविन्दाचार्य मिश्र, प्रकाशक सम्पादक स्वयं, कलकत्ता, १९२२
मार्कण्डेय-संहिता	सम्पादक-सी. वी. शेषचर्युल, प्रकाशक-देवस्थानम् प्रैस, तिरुपति, १९७५
लक्ष्मी-तन्त्र	सम्पादक-वी. कृष्णमाचार्य, प्रकाशक-अड्यार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर, मद्रास, १९६९
विश्वामित्र-संहिता	सम्पादक-यू. शंकर भट्ट, प्रकाशक-केन्द्रीय

विष्णु-संहिता	संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति, १९७० सम्पादक- टी. गणपति शास्त्री, प्रकाशक-त्रिवेन्द्रक यूनिवर्सिटी, त्रिवेन्द्रम, १९२५
विष्णुसेन-संहिता	सम्पादक-लक्ष्मी नरसिंह भट्ट, प्रकाशक-केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति, १९७२
शाण्डिल्य-संहिता	सम्पादक-अनन्त शास्त्री फडके, प्रकाशक-गवर्नमेंट लाइब्रेरी, बनारस, १९३५-१९३६
शेष-संहिता	सम्पादक-एल. श्री निवासाचार्य, प्रकाशक-मैसूर धर्म संस्था, मैसूर, १९३५
श्री प्रश्न-संहिता	सम्पादक-श्रीमती सीता पद्मनाभन्, प्रकाशक- केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति, १९६९
सनत्कुमार-संहिता	सम्पादक-वी. कृष्णामाचार्य, प्रकाशक- आड्यार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर, मद्रास १९६९
सात्वत-संहिता	(अलशिङ्ग भट्ट) सम्पादक - ब्रजबल्लभ द्विवेदी, प्रकाशक सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९८२
हयशीर्ष-संहिता	(पाञ्चरात्रम्) प्रथम खण्ड-आदिकाण्ड, सम्पादक - पी. भुवन मोहन सांख्य तीर्थ, प्रकाशक-वारेन्द्र रिसर्च इन्टीट्यूट, राजशाही (बङ्गलादेश) १९५२
ज्ञानामृतसार-संहिता	(नारद पाञ्चरात्र) सम्पादक-के. एम. बनर्जी, प्रकाशक-एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, बिब्लोथिक इण्डिका सिरीज, भाग ३८, कलकत्ता, १८६५

पाञ्चरात्र सम्बद्ध वाङ्मय

आगम प्रमाण्य	सम्पादक-डॉ. एम. नरसिंहाचार्य, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९७६
उत्सव-संग्रह	सम्पादक-सम्पत कुमार रामानुज, मुनि, मैसूर, १९५६
काश्यप-संहिता (ज्ञान काण्ड)	सम्पादक-पंडित रो. भ. पार्थसारथिभट्टाचार्य, तिरुपति, १९४८
तत्त्वत्रय-भाष्य	बरवर मुनिकृत, सम्पादक-रामचन्द्र शास्त्री चौखम्भा, संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९२८
श्री पाञ्चरात्र-रक्षा	श्री वेदान्तदेशिक, सम्पादक-पं. एम. दुरैस्वामी आयंगर तथा टी. वेणुगोपालाचार्य, आड्यार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च मद्रास, १९६७
वैखानस-आगम	मरीचि प्रोक्त, सम्पादक के. साम्ब शिव शास्त्री
शक्ति-संगम-तन्त्र	सम्पादक-डा. वी. भट्टाचार्य तथा पं. ब्रजबल्लभ द्विवेदी, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा
स्पन्द-प्रदीपिका	उत्पल कृत, सम्पादक-वामन शास्त्री, मेडिकल हाल, मुद्रणालय, काशी, १८९८

सहायक ग्रन्थ

आयंगर, एम. के.	अर्ली हिस्ट्री ऑफ वैष्णविज्म इन साउथ इण्डिया, १९२०
उपाध्याय बलदेव	वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त, चौखम्भा
कविराज, गोपीनाथ	तान्त्रिक साहित्य, हिन्दी समिति, लखनऊ, १९९२

- काणे, पी. वी. धर्मशास्त्र का इतिहास, हिन्दी समिति, उ. प्र. लखनऊ, १९७३
- कालिया, अशोक लक्ष्मी तन्त्र : धर्म और दर्शन, अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, लखनऊ, १९७७
- कुमार
- गोयल, श्रीराम प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, जयपुर, १९८२
- चतुर्वेदी, वैष्णव धर्म, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
- परशुराम
- जयसवाल, वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, मैकमिलन, नई सुवीरा दिल्ली, १९७६
- त्रिपाठी, गयाचरण वैदिक वेदता: उद्भव और विकास (दो भागों में) भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९८२
- द्विवेदी, आगम और तन्त्र शास्त्र, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९८४
- ब्रजवल्लभ
- मिश्र डॉ. रामप्यारे वैष्णव पाञ्चरात्र आगम कतिपय पक्ष, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, १९९४ प्रथम संस्करण
- पं. भगवदत्त वैदिक वाङ्मय का इतिहास, वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट पंजाब, १९३५
- मिश्र, विद्यानिवास हिन्दू धर्म जीवन में सनातन की खोज, नई दिल्ली
- विंटरनित्ज प्राचीन भारतीय साहित्य, दिल्ली, १९६६
- सिंह, महाभारत के शान्ति पर्व में हिन्दु धर्म के प्रमुख धार्मिक एवं दार्शनिक सम्प्रदाय (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध), गोरखपुर १९८०
- हृदयनारायण
- कालैण्ड डब्लू प्रीफेस आफ वैखानस-श्रोत सूत्रम्, रायल एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, कलकत्ता, १९४१
- खोंदा जे. विष्णुईज्म एण्ड शिविज्म
- खोंदा जे. आस्पेक्ट्स आफ अर्ली वैष्णविज्म, १९५४

- गोस्वामी के. जी. ए स्टडी आफ वैष्णविज्म, ओरियंटल बुक एजेन्सी, कलकत्ता, १९५६
- चट्टोपाध्याय, इवोल्युशन आफ हिन्दु सेक्ट्स, मुन्शीराम सुधाकर मनोहरलाल, नई दिल्ली, १९७०
- मट्ट एस. आर. दि फिलासफी आफ पाञ्चरात्र, बुटाला एण्ड कम्पनी, दिल्ली, १९८०
- एम. नरसिंहाचारी आगम प्रामाण्य आफ यामुनाचार्य, ओरियंटल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९७६
- श्रेडर, आफ. इन्ट्रोडक्शन टू दि पाञ्चरात्र एण्ड दि आहिर्बुध्न्य आफ. आट्टो सेंटर, संहिता, दि आड्यार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च १९१६
- सिंह एम. वी. वेदान्त देशिक - हिज लाइफ, वर्क्स एण्ड फिलासफी- ए स्टडी, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९५८
- स्मिथ, एच. वैष्णव आइक्नोग्राफी, पाञ्चरात्र परिशोधन परिषद् डेनियल मद्रास-५, १९१६
- स्मिथ, एच. ए डिस्क्रिप्टिव बिबलियोग्राफी आफ दि प्रिंटेड डेनियल टैक्सटस् आफ दि पाञ्चरात्रागम वाल्यूम १. ओरियण्टल इन्स्टी. बड़ौदा, १९७५
- स्मिथ, एच. ए डिस्क्रिप्टिव बिबलियोग्राफी आफ दि प्रिंटेड डेनियल टैक्सटस् आफ दि पाञ्चरात्रागम वाल्यूम २. ओरियण्टल इन्स्टी. बड़ौदा, १९८०

कोश, व्याकरण एवं सूची-ग्रन्थ

- अमर कोश सम्पादक- हरगोन्दि शास्त्री, वाराणसी, १९७०
- उपनिषद् वाक्य गजानन शम्भु साधले, वाराणसी १९४०
- महाकोश

प्राचीन चरित्र कोश	प्रकाशक-सिद्धेश्वरी शास्त्री चित्राव, कार्यवाह, भारतीय चरित्रकोश मण्डल, मुद्रक-विद्याधर नीलकण्ठ पटवर्धन, साधना प्रेस
ए कन्साइज एटीमोला	एम. मरहाफर, हेडेलवर्ग, १९५६
पतंजलि महाभाष्य	सम्पादक- एफ. कीलहार्न, बम्बई १८९२
वाचस्पत्यम् वैदिक इण्डेक्स आफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स वैदिक कोश वैदिक पदानुक्रम-कोश	सम्पादक- तारानाथ भट्टाचार्य, वाराणसी, १९६२ मैकडानल एवं कीथ वाराणसी, १९५८ डॉ. सूर्यकान्त, वाराणसी, १९६३ सम्पादक-विश्वबन्धु, होशियारपुर, १९१५

शोध-पत्र

आप्टे, पी. पी.	पाञ्चरात्र-नेम एण्ड ओरिजिन, सी. ए. एस. स्टीडीज, सं. २ पूना १९७२
आप्टे, पी. पी.	मण्डलाराधन (डाइग्राम वर्शिप इन आगम), ज. ओ. आई. वाल्यूम नं. २२ नं. ४ पूना १९७७
स्मिथ, एच डेनियल	ए टाउपोलाजिकल सर्वे आफ डिफनिसन्स-द नेम पाञ्चरात्र, जनरल आफ ओरियण्टल रिसर्च, मद्रास





MAHARSHI SANDIPANI RASHTRIYA VEDAVIDYA PRATISHTHANAM GRANTHMALA, UJJAIN

- अमूर्त वैदिक देवता - डॉ० लक्ष्मी मिश्रा**
Demy 1/8 Press
अश्वमेधवेवेकः - डॉ० दिवाकर महापात्रः
Demy 1/8 pp 164 2005 Rs.150.00
अथर्ववेदीय परिशिष्ट ग्रन्थों का परिशीलन
प्रधान सम्पादक : प्रो० ओम्प्रकाश पाण्डेय
लेखिका : डॉ० अंजु दुबे
Demy 1/8 pp 212 2005 Rs.175.00
चार शुल्बसूत्र
(बौधायन, मानव, आपस्तम्ब और कात्यायन शुल्बसूत्रों
के हिन्दी अनुवाद)
अनुवादक- डॉ० रं० पु० कुलकर्णी
Demy 1/8 pp 334 2003 Rs.320.00
THE CONCEPT OF PURUSĀRTHAS
- DR. S.C. CHARKABARTI
pp 100 2003 Rs.185.00
गौतम ऋषियों का वैदिक वाङ्मय में
योगदान - वेदाचार्य : डॉ० केशव प्रसाद मिश्र
Demy 1/8 pp 186 2003 Rs.120.00
ISSUES IN VEDA AND ASTROLOGY
- DR. HARIBHAI PANDYA
Demy 1/8 pp 200 1995 Rs.150.00
ज्योतिषां ज्योतिः (हिन्दी टीका)
- डॉ० जगन्नाथ वेदालंकार (हिन्दी रुपान्तरकार)
Demy 1/8 pp 274 1998 Rs.250.00
काण्व-शतपथम् (मूल संस्कृत)
- डॉ० जी० डब्ल्यू० पिम्पलापुरे
Crown 1/4 2005 Rs.1500.00
**LAYOUT OF DIFFERENT SACRIFICES
ACCORDING TO DIFFERENT
SRAUTASUTRAS**
- DR. R.P. KULKARNI
Demy 1/8 pp 248 1997 Rs.200.00
नाटय शास्त्र का वैदिक आधार
- डॉ० नीहारिका चतुर्वेदी
Demy 1/8 pp 228 2005 Rs.175.00
**सामवेदीय साहित्य, संस्कृति, कला और
धर्म-दर्शन - प्रो० ओम्प्रकाश पाण्डेय**
Demy 1/8 pp 440 2005 Rs.250.00
सर्ववेदरुद्राध्याय - संग्रह
- प्र० सम्पादक : प्रो० ओम्प्रकाश पाण्डेय,
सं० एवं व्याख्याकर्ता - डॉ० प्रज्ञा पाण्डेय
Demy 1/8 Press

- श्रीसायणाचार्य एवं पण्डित श्री पाददामोदर
सातवलेकर कृत वेदभाष्यों का तुलनात्मक
अनुशीलन - डॉ० मीनाक्षी श्रीवास्तव**
Demy 1/8 Press
**VEDAS : THE SOURCE OF ULTI-
MATE SCIENCE - SHRI RAM VERMA**
Demy 1/8 pp 468 2005 Rs.300.00
वेदकालीन प्रौद्योगिकी (कुछ आयाम)
**SOME ASPECTS OF TECHNOLOGY
IN VEDIC PERIOD**
सम्पादक- प्रो० ओम्प्रकाश पाण्डेय
डॉ० श्यामसुन्दर निगम
Demy 1/8 pp 158 2003 Rs.110.00
वैष्णव आगम के वैदिक आधार
- प्र० सम्पादक : प्रो० ओम्प्रकाश पाण्डेय,
- डॉ० श्रीमती चन्द्रा चतुर्वेदी
Demy 1/8 pp 280 2005 Rs.200.00
वेद मीमांसा
मूल लेखक - श्री अनिराज
हिन्दी अनुवादक - छविनाथ मिश्र
VOLUME - III Press
Demy 1/8 pp 964 (2 Vols) 2003 Rs.465.00
वैदिक अनुष्ठानों का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन
सम्पादक - प्रो० ओम्प्रकाश पाण्डेय
Demy 1/8 pp 208 2004 Rs.140.00
**वैदिक इतिहास एवं पुरातत्त्व की अद्यतन
प्रवृत्तियाँ (Recent Trends in History
and Archaeology in Vedic Prespective)**
सम्पादक - प्रो० ओम्प्रकाश पाण्डेय
- डॉ० श्यामसुन्दर निगम
Demy 1/8 pp 220 2003 Rs.135.00
वैदिक खिलसूक्त-मीमांसा
- प्रो० ओम्प्रकाश पाण्डेय
हिन्दी अनुवादक - छविनाथ मिश्र
Demy 1/8 pp 424 2004 Rs.225.00
वैदिक शिक्षा पद्धति - डॉ० भास्कर मिश्र
Demy 1/8 pp 281 2003 Rs.270.00
**वैदिक वाङ्मय में महर्षि कात्यायन का
योगदान - डॉ० अनूप मिश्र**
Demy 1/8 pp 280 2004 Rs.175.00
वैदिक वाङ्मय में विज्ञान - रामेश्वर दयाल गुप्त
SCIENCE'S IN VEDIC LITERATURE
Demy 1/8 pp 324 1997 Rs.200.00
वैदिक यज्ञ संस्था और वेद विज्ञान
सम्पादक- प्रो० ओम्प्रकाश पाण्डेय
Crown 1/4 pp 362 Rs.500.00



नाग पब्लिशर्स NAG PUBLISHERS

11 A (U.A.), Jawahar Nagar, (Post Office Building) Delhi - 110007 (INDIA)

Tel : 011-23857975, 23855883 E-mail : nagpublishers@rediffmail.com